जो अपनी स्वर्गीया जननीके ही समान
निष्कपट और साधु-चरित था,
जिसने ज्ञानकी विविध शाखाओंका
विशाल अध्ययन और मनन किया था,
जो शीघ्र ही भारती माताके चरणोंमें
अनेक भेंट चढ़ानेके मनसूबे बाँध रहा था,
परन्तु जिसे दैवने अकालमे ही उठा लिया,
अपने उसी एकमात्र पुत्र

स्व० हेमचन्द्रको

मुद्रण-कथा

सन् १९०५ म जब मैंने स्वर्गीय गुरुजी (प० पन्नालालजी बाकलीवाल) की आज्ञा और अनुरोधसे बना·सीविलासका सम्पादन सशोधन किया और उसके प्रारभम कविवर बनारसीदासजीका विस्तृत परिचय लिखा, तब उसकी बड़ी प्रशसा हुई और स्व० आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसे विद्वानोंने उसकी लम्बी लम्बी समालोचनाएँ लिखीं। कविवरका उक्त परिचय एक तरहसे इस 'अर्ध कथानक' का ही गद्यानुवाद था। उसे पढकर और उसके बीच बीचमें 'अर्ध कथानक' के जो पद्य उद्धृत किये गये थे, उनपर मुग्ध होकर कई मित्रोंने अनुरोध किया कि यह मूल ग्रन्थ भी ज्योंका त्यों प्रकाशित हो जाना चाहिए, अनुवादकी अपेक्षा मूलका मूल्य बहुत अधिक है।

मुझे भी यह बात ठीक जँची और मैंने उसी समय इसके प्रकाशित करनेका निश्चय कर लिया; परन्तु वह निश्चय कार्यरूपमें अब ३८ वर्षके बाद परिणत हो रहा है और पाठक यह जानकर तो और भी आश्चर्य करेगे कि इसकी प्रेस-कापी मैंने अपने सहयोगी देवरीनिवासी प० शिवसहाय चतुर्वेदीजीसे सन् १९१२-१३ के लगभग तैयार करा ली थी, फिर भी यह ३० वर्ष तक प्रेसमे न जा सकी।

गत वर्ष अप्रैलमें इसी तरह बरसोंसे पड़े हुए 'जैन साहित्य और इतिहास' के कामसे निपटा ही था और लगे हाथ इस पुस्तकसे भी निबट लेनेकी सोच ही रहा था कि अचानक ता० १० मईको मुझपर ऐसा वज्रपात हुआ जिसकी कभी कल्पना भी न की थी। मेरे एकमात्र सुयोग्य और विद्वान् पुत्र हेमचन्द्रका चालीसगाँवमें देहान्त हो गया और उसके साथ ही मेरे सारे सकल्प और सारी आशायें धूलमें मिल गईं। इस पुस्तकके छपानेकी चर्चा करनेपर स्व० हेमचन्द्रने चालीसगाँवमें ही कहा था कि "दादा यों तो तुम्हें कभी अवकाश मिलनेका नहीं, इसे प्रकाशित करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि मूल पुस्तकको आँख बन्द करके प्रेसमें दे दिया जाए। ऐसा करनेसे यह कभी न कभी पूरी हो ही जाएगी।"

लगभग चार महीने बाद शोक और उद्वेग कुछ कम हुआ, तब अपने प्रिय पुत्रकी उक्त सूचनाके अनुसार पूर्वोक्त प्रेस-कापी प्रेसमें दे दी गई और

उसके चार फार्म २०-२५ दिनमें छप भी गये। उसके बाद शब्द-कोश, परिशिष्ट आदि तैयार किये जाने लगे और उनके भी दो फार्म फरवरीके प्रारंभ तक छप गये। परन्तु अचानक उसी समय लगभग चार महिनेके लिए मुझे बम्बई छोड़नी पड़ी और इतने समयके लिए फिर यह काम रुका पड़ा रहा।

यद्यपि मानसिक उद्वेग, अनुत्साह और शरीरकी शिथिलताके कारण पुस्तकका सम्पादन जैसा मैं चाहता था वैसा न हो सका। परन्तु सन्तोष यही है कि पुस्तक किसी न किसी प्रकार पूरी हो गई और इतने लम्बेके समयके बाद भी मेरी एक इच्छा पूरी हो गई। त्रुटियोंके लिए विद्वान् पाठक मेरी वर्तमान अवस्थाका खयाल करके क्षमा कर ही देंगे।

पुस्तकके अन्तमें शब्दकोश, नामसूची आदिके जो १२ परिशिष्ट जोड़े गये हैं वे इस पुस्तकका ठीक ठीक मर्म समझनेके लिए आवश्यक हैं। इन परिशिष्टोंमे नं० ६-७ ८ प्रायः वही हैं जो बनारसीविलासकी भूमिकामें दिये गये थे और जिन्हें जोधपुरके स्व० इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीने मेरे अनुरोधसे लिख दिये थे।

अपने श्रद्धेय मित्र प्रो० हीरालालजी जैनका मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने 'अर्ध कथानककी भाषा' पर विचार करके पुस्तककी उपयोगिताको बढ़ा दिया है।

तीन प्रतियोंके आधारसे इस पुस्तकका सम्पादन संशोधन किया गया है—

अ—भोलेश्वर (बम्बई) के पंचायती मन्दिरकी प्रति जो वि० सं० १८४९ की लिखी हुई है। यह प्रति अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा शुद्ध है और प्रेस-कापी इसीपरसे तैयार कराई थी।

ब—जैनमन्दिर धरमपुरा देहलीकी प्रति, जो आषाढ वदी ७ सं० १९०२ की लिखी हुई है।

स—वैदवाड़ा, देहलीके मन्दिरकी प्रति। लिखनेका समय नहीं दिया है और यह बहुत ही अशुद्ध है। इसमे सब मिलाकर ६६२ पद्य ही हैं, ३९२, ५५९-६६, ६२२, ६२३, ६६५ और ६७१ नम्बरके १३ पद्य नहीं हैं।

पिछली दोनों प्रतियाँ देहलीके लाला पन्नालालजी जैनकी कृपासे प्राप्त हुई थीं जिसके लिए मैं उनका अतिशय कृतज्ञ हूँ।

१५ जून १९४३

—नाथूराम प्रेमी

द्वितीय संस्करण

पहली बार जिन तीन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे अर्ध-कथानकके मूल-पाठका सशोधन किया गया था, उनके सिवाय अबकी बार नीचे लिखी दो प्रतियोंका उपयोग और भी किया गया है—

ड—एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ताके ग्रन्थसग्रहकी ७१७६ नम्बरकी, विना लेखनतिथिकी प्रति जो बाबू छोटेलालजी जैनकी कृपासे प्राप्त हुई है।

ई—स्याद्वादविद्यालय बनारसकी स० १९४८ की लिखी हुई प्रति। लेखक, अमीचन्द श्रावक। यह प्रति प० कैलासचन्द्रजी शास्त्रीने भेजनेकी कृपा की है।

पहली बार जो ३२ पृष्ठोंकी भूमिका थी वह सबकी सब फिरसे लिखी गई है और अब उसकी पृ० स० ९४ हो गई है। इसी तरह अन्तके परिशिष्ट ४० की जगह अब ७६ पृष्ठके हो गये हैं और उनमें बहुतसे नये तथ्य प्रकाशमें लाये गये हैं। 'शब्दकोश' पहले पद्योंके क्रमसे था, अबकी बार वह वर्णानुक्रमसे कर दिया गया है और उसका सशोधन शब्दशास्त्रके सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० वासुदेव शरणजी अग्रवालसे करा लिया है। उन्हींकी सूचनाके अनुसार नाटक समयसारक-तथा बनारसीविलासकी समस्त रचनाओंका परिचय भी दे दिया है।

माननीय डा० मोतीचन्दजीका मैं अतिशय कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस मध्य-कालीन असफल व्यापारी और सफल साहित्यिकके सच्चे और रोचक आत्म चरितपर अपना वक्तव्य लिख देनेकी कृपा की है।

मेरे कृपालु मित्र प० बनारसीदासजीचतुर्वेदीने अपने 'हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित' लेखको कुछ सशोधित और परिवर्तित कर दिया है और डा० हीरालालजी जैनने 'आत्मकथाकी भाषा' में 'द्वितीय सस्करणकी विशेषता'का अश और जोड़ दिया है।

अध्यात्ममतके विरोधमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके म० धर्मवर्धन और ज्ञानसारके तथा दिगम्बर सम्प्रदायके प० बखतराम आदि तीन चार लेखकोंके ग्रन्थ मिले हैं जो अध्यात्ममतको ही 'तेरापथ' कहते हैं। भूमिकामें उनकी विस्तृत चर्चा कर दी गई है और उससे इस निश्चय पर पहुँचा जा सकता है कि अध्यात्ममत ही स० १७२० के कुछ पहले 'तेरापन्थ' कहलाने लगा था।

जिन जिन सज्जनोंके लेखों या ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है उनका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। सबसे अधिक सहायता बीकानेरके श्री अगरचन्दजी नाहटासे मिली है जिनकी प्राचीन ग्रन्थोंकी जानकारी अद्भुत है और जिनके निजी संग्रहमें कई हजार ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

जयपुरके प० कस्तूरचन्दजी शास्त्री एम ए. ने भी जो राजस्थानके शास्त्र-भण्डारोंकी ग्रन्थसूचियाँ तैयार कर रहे हैं—समय समय पर अनेक ग्रन्थ और उनके उद्धरण भेज कर बहुत सहायता की है। इसके लिए उक्त दोनों सज्जनोंका विशेष रूपसे आभारी हूँ।

दो ढाई वर्षसे शय्याशायी हूँ, अस्वस्थ हूँ। इसी अवस्थामें इसका सम्पादन हुआ है। इसलिए इसमें अशुद्धियों और स्खलनाओंकी कमी नहीं होगी। फिर भी मुझे सन्तोष है कि यह काम किसी तरह पूरा हो गया और अब पाठकोंके हाथोंमे जा रहा है।

२५-९-५७] नाथूराम प्रेमी

विषय-सूची

परिशिष्ट

पूरी पृष्ठसंख्या—८+४+२८+९६+१५२=२८८

शुद्धिपत्र और संशोधन

भूमिका

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३	२१	वि० सं० १६५७	वि० स० १७५७
४६	२	गुजराती	राजस्थानी
४७	३	१७५७	१७७३
४७	२	गुजराती	राजस्थानी
८४	२१	एक बदर्श (१) भागा	एक अर्ध भागा अर्थात् स० १६०० या १६०१

पृष्ठ ४९ और ५३ में तेरापथकी उत्पत्तिका समय जो प० बखतरामजीके मिथ्यात्वखडनके आधारपर सं० १७७३ वतलाकर लिखा है, वह गलत है। मि० ख० की वह पक्ति शुद्ध रूपमें इस प्रकार है—

सतरैहसे रु तिडोत्तरै साल, मत थाप्यौ ऐसैं अघजाल।

यहाँ तिड़ोत्तरैका अर्थ तिड़ = तीन, उत्तरै = ऊपर करनेसे १७०३ ही होता है और यह समय भ० नरेन्द्रकीर्तिके समयके साथ सगत हो जाता है।

परिशिष्ट

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	२१	वि० स० १६८४	वि० सं० १६८०
९३	१९	स० १७७२	स० १७९२
९५	७	स० १९२६	सं० १८२६
९८	१	उपाध्याय क्षमाकल्याण	रूपचन्द (रामविजय)

९८	१२	जिनवल्लभसूरि	जिनलाभसूरि
१०९	७	मीष	मेष
११०	१४	ओसवाल श्रीमाल	ओसवाल
११३	१८	(नं० १४५०)	(नं० १४५१)
११७	३	६६ पद	६५ पद

पृ० ९६-९७ में सुखवर्धनको 'वाणारसगुणवन' और दयासिंहको 'वाणारसविरुदाल' कहा है, सो श्री नहटाजीके अनुसार 'वाचक' पदको 'वाणारस' भी कहा जाता है। अन्यत्र भी वाचक या वाचनाचार्यके लिए 'वाणारस' पद प्रयुक्त हुआ है। बनारसीदाससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

पृ० १०१-२ में 'जेसलमेरुमध्ये पुण्यप्रभावक सा कुंवरजी पठनार्थ' लिखा है, सो ये आगरेवाले वे कुंवरपाल नहीं जो अमरसीके पुत्र थे।

पृ० १०३-४ में धरमसीकी जो 'गुरुशिष्यकथनी' कविता दी है, वह बनारसीदासके साथी धरमदासकी नहीं है। धरमदास और धरमसी अलग अलग हैं। वर्धमानवचनिकामें जिनका उल्लेख है, वे मुलतानके हैं।

एक असफल व्यापारीकी आत्मकथा

जब प्रेमीजी द्वारा सपादित अर्ध-कथानकका पहला संस्करण पढनेका अवसर मिला तो मैं उस ग्रथसे अतीव प्रभावित हुआ। उसका कारण यह था कि बनारसीदासने साहित्यके उस अगको जिसे हम आत्मकथा कहते हैं और जिसका प्रयोग सारे प्राचीन भारतीय साहित्यमें बहुत सीमित रूपसे हुआ है केवल अपनाया ही नहीं उसे एक बहुत निखरा हुआ रूप दिया। प्राचीन भारतीय साहित्यका उद्देश्य स्वार्थ न होकर परमार्थ था जिसमें भिन्न भिन्न जनोंकी अनुभूतियाँ मिल कर अनुश्रुतिका रूप ग्रहण कर लेती थीं और यही अनुश्रुतियॉ एकीभूत होकर भारतीय जीवन और सस्कृतिका वह रूप निर्माण करती थीं जिसके बाहर निकल कर स्वानुभवसे विचार करना और नवीन दिशाकी ओर सकेत देना कुछ दुस्तर हो जाता था। इसके यह माने नहीं होते कि भारतीय सस्कृतिमें नवीन विचार-धाराओंकी कमी थी। समयान्तरमें अनेक विचारधाराएँ इस देशमें प्रस्फुटित हुई पर वे सब अनेक विवादोंके होते हुए भी भारतीय सस्कृतिकी बृहद् अनुश्रुतिका एक अग बनकर रह गईं। प्राचीनताके प्रति भारतीय जनका इतना बड़ा सम्मोह देखकर ही कालिदासने ‘ पुराणमेतन्न हि साधु सर्वम् ’ का उपदेश किया तथा प्रसिद्ध जैन तार्किक सिद्धसेन दिवाकरने स्वतन्त्र रूपसे उस बातकी पुष्टि की, पर फल कुछ विशेष न निकला।

समष्टि और समवेतको लेकर साहित्य निर्माण करनेकी भारतीय भावनाका फल यह हुआ कि जीवनकी अनेक अनुभूतियॉ जिन्हें लेखक अपने ढगसे व्यक्त कर सकते थे समष्टिमें मिल गईं और अनेक अनुभवोंके आधार साहित्यका और विशेष-कर कथा-साहित्यका एक रूढिगत रूप खड़ा होता गया जिसके निर्माणमें एकका हाथ न होकर बहुतोंका हाथ दीख पड़ता है। पर भारतीय तत्त्वचिन्तनका उद्देश्य परलोकप्राप्ति था तथा जीवनसबधी दूसरे विषय जैसे इतिहास, सामाजिक व्यवस्था, व्यापार, खेल, कुतूहल इत्यादि गौण ही रह गए। भारतीय कथासाहित्यका अवलोकन करनेसे इस बातका पता चलता है कि उसमें जीवन, समाज, लौकिक धर्म, व्यापार इत्यादि सबधी ऐसी सामग्री मिलती है जिसका इकट्ठा करना एकका काम न

होकर अनेकोंका काम है और इस दृष्टिसे जातक कथाओं, जैन कथाओं तथा वृहत् कथा और उससे निकले कथासाहित्यमें हम अनेक भारतीयोंके आत्मचरितोंका संकलन देख सकते हैं, पर ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे हम यह नहीं कह सकते कि कहानियोंको रूप देनेवाले वे आत्मचरित किसी विशेष समयके थे अथवा नहीं।

आत्मचरित-साहित्यके इतिहासमें बौद्ध साहित्यके 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' के नाम सबसे पहले आते हैं। थेरगाथा खुद्दकनिकायका आठवॉ अध्याय है जिसमें बुद्धकालीन अनेक बौद्ध भिक्षुओंने अपने जीवनवृत्त और अपनी नई पाई हुई आत्मस्वतन्त्रताका छन्दोबद्ध वर्णन किया है। उसी तरह खुद्दकनिकायके नवें अध्यायमें भिक्षुणियोंके छन्दोबद्ध आत्मचरित हैं। इन आत्मचरितोंमें एक नवीनता है और आत्मनिवेदन करनेका एक नया ढग, फिर भी वे आत्मचरित इतने छोटे हैं कि जीवनके अनुभवोंकी उनमें थोड़ी-सी ही झलक मिलती है।

सस्कृत साहित्यमें आत्मचरित लिखनेकी शैलीका कबसे विस्तार हुआ यह कहना सभव नहीं। यों तो कथासाहित्यका आधार वास्तविक घटनाओंपर ही अव ंवित है पर आत्मचरितकी श्रेणीमें तो बाणभट्टकृत हर्षचरित ही आता है। बाणभट्टके अनुसार हर्षचरित आख्यायिका है जिसमें ऐतिहासिक आधार होना चाहिए। आख्यायिकाके अनुरूप हर्षचरितमें हर्ष (६०६-६४८) की जीवनसम्बन्धी घटनाओंका वर्णन है जिनमें कुछ बाणद्वारा स्वयं अनुभूत और कुछ सुनी सुनाई हैं। पर ग्रंथके आरभमें बाणने अपने आत्मचरितके कुछ पहलुओंका वर्णन किया है जिससे उनके देशातरभ्रमण, वस्तुओंकी जानकारी प्राप्त करनेकी उत्सुकता तथा चित्रग्राहिणी बुद्धिका पता चलता है। हर्षचरितमें इतिहास, साहित्य और आत्मचरितका कुछ ऐसा अपूर्व मेल है कि जिसका जोड़ साहित्यमें नहीं मिलता। प्राचीन सस्कृत-साहित्यमें केवल हर्षचरित ही एक ऐसा ग्रथ है जिससे हमें एक महान् साहित्यकारके परिवार, बधुबाधवों, इष्टमित्रों तथा जीवनके और पहलुओंका पता लगता है।

आत्मचरित और इतिहासके अपूर्व सम्मिश्रणका पता हमें बिल्हणकृत 'विक्रमाकदेवचरित' से चलता है। बिल्हण प्रकृतिसे ही घुमक्कड थे। कश्मीरके राजा

कलशके युगमें उनकी घुमक्कड़ी शुरू हुई और उन्होंने मथुरा, कनौज, और डाहलकी यात्रा की तथा कुछ दिनोंतक डाहलके कर्ण, अणहिलवाडके कर्णदेव त्रैलोक्यमल्ल (१०६४–११२७) तथा कल्याणके विक्रमादित्य छठे (१०७६–११२७) के यहाँ रहे तथा सन् १०८८ में विक्रमाकदेवचरितकी रचना की। उनके ग्रथका विषय तो इतिहास है पर रह रहकर हम कविकी आत्मकथाकी, जिसमें कोरी तीखी बातें सुनाना भी आ जाता है, झलक पाते हैं।

(मुसलमानोंके उत्तर भारतमें अधिकार पानेके बाद फारसीमें एक ऐसे साहित्यका सृजन हुआ जिसमें इतिहास और आत्मकथाका मेल है। ऐसे साहित्यकारोंमें अमीर खुसरोका नाम अग्रणी है। खुसरो (१२५५–७२५ हि०) कवि, सिपाही, सगीतज्ञ और सूफी थे। उनका प्रभाव काव्यक्षेत्रमें इतना चढा कि उनके पहलेके कवियोंके नामतक लोग भूल गए। उन्होंने अपने जीवनमे सात सुल्तानोंके राज्य देखे, उनमेंसे कइयोंके साथ वह लड़ाइयोंपर गए और पाच सुल्तानोंकी सेवामें ओहदेदार रहे। अपने जीवनमें उन्होंने अनेक उतार-चढाव देखे, सुल्तानोंकी विलासिता और रागरग देखा तथा तत्कालीन बर्बरताओं-पर आँसू बहाए। अपने दीवानोंके दीबाचोंमें खुसरोने खुलकर अपनी रामकहानी कही है और उनकी ऐतिहासिक मसनवियोंमें भी आँखों देखी अनेक घटनाओंका जिक्र है। ऐजाज खुसरवीमें उनके पत्रोंका सग्रह है जिनसे मध्यकालीन जीवनके अनेक छोटे छोटे अगोंपर भी अच्छा प्रकाश पडता है। यह सच है कि खुसरोने कोई अलगसे अपना आत्मचरित नहीं लिखा, पर दीवानोंके दीबाचों और ऐतिहासिक मसनवियोंमें उसने अपनी रामकहानी इतनी छोड़ दी है कि उसके आधारपर ही मध्यकालके इस महान पुरुषका पूरा आँखों देखा चित्र खड़ा हो जाता है।

मुसलमान बादशाहोंमें तो आत्मचरित लिखनेकी परिपाटी ही चल पड़ी थी और इसमें सदेह नहीं कि बाबर और जहाँगीरके आत्मचरितोंमें उस मनुष्यताका दर्शन और आसपासकी दुनियाका विवरण मिलता है जिसका पता मध्यकालीन साहित्यमें कम ही दिखलाई पडता है। मध्य एशियाने हमें तैमूरलग, बाबर, हैदर और अबुल गाजीके आत्मचरित दिए हैं। फारसके शाह तहमास्पका आत्म-चरित हमें आकर्षित करता है, तथा भारतके गुलबदन बेगम और जहाँगीरके आत्मचरित प्रसिद्ध हैं।

बादशाहोंके इन आत्मचरितोंकी अपनी विशेषता है। तत्कालीन इतिहास प्रशंसात्मक है और जहाँ प्रशंसाकी आवश्यकता नहीं भी होती वहाँ भी लेखक अपने पासकी दुनियाकी चकाचौंधसे घबराकर ऐसा चित्र खींचते हैं जिससे चित्रित व्यक्ति अपनी असलियत खो बैठता है। पर बादशाहोंकी दूसरी बात थी। उन्हें न चकाचौंध होनेकी आवश्यकता थी न किसीसे डरनेकी, और इसीलिए उन्होंने अपने समसामयिकोंकी निर्दय होकर धज्जियाँ उड़ाई हैं और उनकी कमजोरियोंको हमारे सामने रखा है। पर उनमें भी मनुष्यसुलभ कमजोरी मिलती है। यही कारण है कि वे अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं। पर जहाँगीरके आत्मचरितमें हमें उसकी कमजोरियाँ भी दीख पड़ती हैं जिन्हें पढ़ने पर हमें एक ऐसे मनुष्यका दर्शन होता है जिसमें भले, बुरे और एक कला-पारखीका सम्मिश्रण था। शिकार बहक जानेपर वह नरहत्या कर सकता था पर साथ ही साथ वह न्यायका भी प्रेमी था। शिकारी होते हुए भी वह पशु-पक्षियोंका प्रेमी था तथा फूलोंसे उसे विशेष प्रेम था। बाबरका हृदय बारबार मध्य एशियाके लिए छटपटाता था और भारतीय वस्तुओंके लिए उसके मनमें आदरभावकी कमी थी पर जहाँगीर वास्तवमें भारतीय था। भारतीय पुष्प पलाश, बकुल और चंपा उसके मनको लुभा लेते थे और उसके अनुसार भारतीय आमके सामने मध्य एशियाके फलोंकी कोई हस्ती न थी।

अकबरयुगीन इतिहासमें मुल्ला बदायूनीके 'मुनखाब उत् तवारीख' का भी अपना स्थान है। इसमें इतिहास और आत्मचरितका खासा मेल है। मुल्ला थे तो धर्मोंके प्रति सहनशील अकबरके नौकर, पर वे थे कट्टर मुसल्मान। रह रहकर वे हिन्दुओंको कोसते हैं और ऐसी घटनाओंका वर्णन करते हैं जिनके बारेमें पढ कर हँसी रोके नहीं रुकती। अकबरके 'दीन इलाही'को वे कुफ्र मानते थे। सामने कहनेकी हिम्मत तो थी नहीं, पर मौका मिलने पर वे उसकी हँसी उड़ानेमें चूकते न थे। दीन इलाही चलते ही कुछ लोग विश्वाससे और बहुत-से बादशाहकी खुशामदसे उसमें जा घुसे। बदायूनी (मुनखाब, भा० २, पृ० ४१८-४१९ लो द्वारा अनूदित) ने इस सम्बन्धकी एक मजेदार घटनाका उल्लेख किया है। बनारसके एक मौजी मुसल्मान गोसालखाँ १००४ हि० में दीन इलाहीमें शामिल हो गए। उन्होंने अपनी दाढी और सिर सफाचट करवा दिए तथा अबुलफ़ज़्लकी कृपासे बादशाहकी

सेवामें जा घुसे। आदमी चलते पुरजे थे, किसी तरह बनारसके करोड़ी बन गए और दरबार छोड़ दिया। बदायूनीके अनुसार आप एक वेश्यापर फिदा थे। आगरेसे रवाना होनेके पहले आपने उसे काफी रम्म पिलाई और एक सरपरस्त भी मुकर्रर कर दिया। जब वेश्याओंके दारोगाने बादशाह सलामतसे इस बातकी शिकायत की, तो गोसाला बनारससे पकड़ मँगाए गए। इसके बाद उनपर क्या गुजरी इसका पता नहीं। पर बनारसी हथकडे दिखलाकर निकल भागे होंगे, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी ही मजेदार बातोंसे बदायूनीकी तवारीख भरी पड़ी है जो उनके आत्मचरितके अंग हैं, इतिहाससे उनका सम्बन्ध नहीं।

पर बनारसीदासका आत्मचरित उपर्युक्त आत्मचरितोंसे निराला है। उसमें न तो बाणभट्टका सूक्ष्म चित्रण है न बिल्हणकी खुशामद। शायद फारसी उन्होंने पढी नहीं थी, इसलिए बाबर इत्यादिकी उनके आत्मचरितमें वर्णित बादशाही आन बान शानका उसमें पता नहीं चलता। बनारसीदास एक अध्यातमी और व्यापारी थे। इन दोनोंका क्या सयोग, पर खाली अध्यातमसे तो रोटी चलनेकी नहीं थी, व्यापार करना जरूरी था, पर उनके आत्मचरितसे पता चलता है कि वे कच्चे व्यापारी थे। समय समय पर उनकी व्यापारिक बुद्धि ऊपर उठनेकी कोशिश करती थी, पर उनके अतरमानसमें अध्यातमकी बहती धारा उसे दबा देती थी। पर वे थे आदमी जीवटके, और जीवनकी कठिनाइयोंसे वे हँसकर भिडनेको सदा तयार रहते थे। अगर उनके ऐसा कोई दूसरा ज्ञानी उस युगमें अपना आत्मचरित लिखता तो वह आत्मज्ञान और हिदायतोंसे इतना बोझिल हो उठता कि लोग उसकी पूजा करते, पढते नहीं। एक सच्ची आत्म-कथाकी विशेषता है आत्म ख्यापन, आत्म-गोपन नहीं। बनारसीदासने अपनी कमजोरियाँ उधेड़ कर सामने रख दी हैं और उनपर खुद हँसे हैं और दूसरोंको हँसाया है। अन्ध विश्वासोंकी, जिनके वे खुद शिकार हुए थे, उन्होंने बड़ी ही खूबीसे हँसी उडाई है। १७ वीं सदीके व्यापारकी चलन कैसी थी, लेन देन कैसे होता था, कारवा चलनेमें किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था, इन सब बातोंपर अर्ध कथानकसे जितना प्रकाश पडता है उतना किसी दूसरे स्रोतसे नहीं। यात्राके समय अनेक विपत्तियोका सामना करते हुए भी बनारसीदास अपने हँसोड़ स्वभावको भूले नहीं और आफतोंमें भी उन्होंने हास्यकी सामग्री पाई। बनारसीदास अध्यामती और व्यापारी दोनों थे,

इसलिए यह सोचा जा सकता है कि उनमें कठोरता अधिक मात्रामें रही होगी पर उनके आत्मचरितसे यह बात साफ झलकती है कि मृदुता उनमें कूट कूट कर भरी थी। अकबरकी मृत्युके समाचारसे उनका बेहोश होकर गिर पड़ना तथा अपने मित्र नरोत्तमकी मृत्युसे मर्माहत हो उठना उनकी कोमलता और भावुकताके द्योतक हैं। आत्मचरितमें पारिवारिक सम्बन्धों और रीति-रिवाजोंका भी खासा वर्णन है। भाषा भी उन्होंने विषयके अनुरूप चुनी है और व्यर्थके शब्दाडम्बर और अलंकारोंसे उसे बोझिल होनेसे बचाया है। ग्रंथकी भाषा अपनी स्वाभाविक गतिसे बढ़ती है और उसका पैनापन सीधा वार करता है। वे जो बात कहते हैं सीधी सादी भाषामें, जिसे लोग समझ सकें। पर वह भाषा इतनी मँजी, अर्थप्रवण और मुहाविरेदार है कि पढनेवालेको आनद मिलता है। उसमें अनेक परिभाषिक शब्द भी हैं जिन्हें समझनेमें अब कठिनाई पड़ सकती है पर १७ वीं सदीमें तो यह भाषा व्यापारियोंमें प्रचलित रही होगी, इसमें सदेह नहीं। थोड़े से शब्दोंमे एक चित्र खींच देना उनकी भाषाकी विशेषता है। व्यर्थके विस्तारका तो अधकथानकमें पता ही नहीं चलता। इसमें सदेह नहीं कि भाषा, भाव, सहृदयता और उपयोगी विवरणोंसे भरा अर्धकथानक न केवल हिन्दी साहित्यका ही वरन् भारतीय साहित्यका एक अनूठा रत्न है। बनारसीदासकी आत्मकथाका सबध राजमहलोंसे न होकर मध्यम व्यापारीवर्गसे है जिसे पगपगपर कठिनाइयों और राजभयसे लड़ना पड़ता था। इसमें साहसकी आवश्यकता थी और बनारसीदास, और जिस वर्गमें वे पले थे उसमें, यह साहस था और इसी लिए उन्हें कोई कुचल न सका।)

जैसा हम ऊपर कह आए हैं अर्धकथानक एक व्यापारीकी आत्मकथा है। जहाँ तक भारतीय साहित्यका सबध है ऐसी कोई पुस्तक नहीं है जिसमें भारतीय दृष्टिकोणसे १७ वीं सदीके व्यापारी जीवनका इतने सुदर ढगसे वर्णन हो। इस सदीमें अनेक युरोपीय यात्री जिनमें व्यापारी, डाक्टर, राजदूत, पादरी, सिपाही, जहाजी तथा साहसिक सभी थे, जल और स्थलमार्गोंसे इस देशमें आए, पर उनमें अधिकतर यात्रियोंका ज्ञान सीमित था। उनका भारतके भूगोल और प्रकृतिविज्ञानका ज्ञान अधिकतर गतानुगतिक होनेसे परिसीमित था तथा वे भारतीय रीतिरिवाज, जिनको विदेशी समझनेमें असमर्थ थे, उनके लिए हास्यास्पद थे। फिर भी उन्होंने अपने ढगसे सत्रहवीं सदीके भारतीय रस्मरिवाज, वेषभूषा, खानपान

इत्यादिका वर्णन किया है। बाजारकी गप्पोंपर आधारित उनका इतिहासका ज्ञान भी अधूरा होता था। पर भारतीय पथोंके बारेमें उनका ज्ञान अधिक बढ़ा चढ़ा था। अपने यात्रा-विवरणोंमें उन्होंने सड़कोंके बारेमें अपने अनुभव लिखे हैं। उनमें सड़कोंके नाम, उनपर पड़नेवाले पड़ाव, मिलनेवाले आदमी, दर्शनीय वस्तुएँ, आराम और कष्ट सभी बातें आ जाती हैं। उन दिनों सवारियाँ तेज नहीं थीं तथा सड़कोंपर ठहरनेके ठिकाने भी ठीक न थे तथा यूरोपीय यात्रियोंको बन्दरगाहोंकी शुल्क-शालाओंपर भी भारी तकलीफें उठानी पड़ती थीं। खाने पीने और ठहरनेकी भी असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। आगरासे लाहोर तक चलनेवाली सड़क काफी अच्छी हालतमे थी पर दूसरी सड़कोंकी हालत अच्छी न थी। जगलोंसे होकर गुजरनेवाली सड़कोंपर तो बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ता था। रक्षाके लिए काफिले रक्षकोंकी देखरेखमें चलते थे। बीच बीचमें व्यापारी सुरक्षाके लिए इन काफिलोंके साथ हो लेते थे जिससे काफिले बहुत बड़े हो जाते थे। रास्तेमें चोर डाकुओंका भय बना रहता था तथा सुदूर प्रान्तोंमें छोटे मोटे सामन्त और जमींदार काफिलोंसे कर वसूल करनेमें न चूकते थे। इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी ग्रामीण और नागरिकोंका काफिलोंके प्रति व्यवहार अच्छा होता था पर कभी कभी उनसे तनातनी हो जानेपर काफिलोंको हुज्जत तकरारका भी सामना करना पड़ता था।

अर्धकथानकमें बनारसीदासने तत्कालीन सड़कों और व्यापारियोंकी कठिनाइयोंका जो वर्णन दिया है उससे युरोपियन यात्रियोंकी बातोंकी पुष्टि होती है। इतना ही नहीं, अर्धकथानकमें भारतीय व्यापारियोंकी शिक्षा, लेन देन, व्यापारपद्धति इत्यादिके भी ऐसे अनुभूत विवरण हैं जिनका पता सत्रहवीं सदीके भारतीय साहित्यमें मुश्किलसे मिलता है। बनारसीदासके व्यापारी परिवारका इतिहास उनके दादा मूलदाससे प्रारम्भ होता है। वे हिन्दी और फारसी पढ़े थे। वणिक वृत्तिके लिए वे मुगलोंके मोदी बनकर मालवेमें आए और वहाँ नरवरके मुगलकी जागीरदारीमें उसके मालसे उधार देनेका काम करने लगे। सन् १५५१ में बनारसीदासके पिता खरसेनका जन्म हुआ। कुछ दिनों बाद पिताकी मृत्यु हो गई और खरगसेनको एक नई आफतका सामना करना पड़ा। मुगलने जैसे ही यह समाचार सुना उसने तत्कालीन प्रथाके अनुसार मूलदासके घरपर मुहर छाप लगा कर कब्जा

कर लिया और माल भी ले लिया। माता पुत्र अशरण हो गये और अनेक कष्ट उठाते हुए पूरबमें जौनपुरकी ओर चल दिये।

उस युगमें भी जौनपुर एक बड़ा शहर था। बनारसीदासके अनुसार गोमतीके तटपर बसे इस नगरमे चारों वर्णके लोग बसते थे तथा उसमें अनेक तरहकी दस्तकारीके काम होते थे। शीशा बनानेवाले, दरजी, तबोली, रगरेज, ग्वाले, बढई, सगतरास, तेली, धोबी, धुनियाँ, हलवाई, कहार, काछी, कलाल, कुम्हार, माली, कुदीगर, कागदी, किसान, बुनकर, चितेरे, मोती आदि बींधनेवाले, बारी, लखेरे, ठठेरे, पेसराज, पटुवा, छप्पर बाँधनेवाले, नाई, भड़भूंजे, सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर (आतिशबाजी बनानेवाले), धीवर, और चमार वहाँ रहते थे। नगर मठ, मडप और प्रासादों तथा पताकाओं और तंबुओंसे युक्त सतखडे घरोसे भरा था। नगरके चारों ओर बावन सराएँ थीं और बावन बाजार। अगर कविसुलभ अतिशयोक्ति दूर कर दी जाय तो १६ वीं सदीके जौनपुरका रूप हमारे सामने खड़ा हो जाता है।

खरगसेन अपनी माताके साथ १५५६ मे हीरा और लालके व्यापारी अपने जौहरी मामा मदनसिंह श्रीमालके यहाँ पहुँचे और उन्होंने उनकी बडी आवभगत की। जब खरगसेन आठ बरसके हुए तो वे पढनेके लिए चटसाल भेजे गए जहाँ उनकी एक व्यापारीके बेटेकी तरह शिक्षा हुई। वे सोने चाँदीके सिक्के परखने लगे, घरमें रेहनका हिसाब रखने लगे और जमाका हिसाब१। वे लेने-देनेका हिसाब विधिपूर्वक रखने लगे और हाटमे बैठकर सराफेके काम सीखने लगे। आजसे कुछ दिन पहले भी एक व्यापारी बालककी शिक्षाका यही क्रम था, और कुछ पुराने शहरोंमें तो यह प्रथा अब भी चली आती है यद्यपि नोट चल जानेसे रुपए परखनेकी कला अब समाप्तप्राय है। पर व्यापारीकी शिक्षा घूमघाम कर बिना किस्मत लड़ाए पूरी नही मानी जाती थी। चार बरसबाद खरगसेन बगाल पहुँचे और वहाँ सुलेमानके साले लोदीखाँके दीवान धन्ना श्रीमालके एक पोतदार बन गए। वह सब पोतदारोंका विश्वास करता था और बिना लेखा जाँचे फारकती लिख देता था। खरगसेनके जिम्मे चार परगने थे और वे दो कारकुनोंकी मददसे तहसील वसूल करते थे और लोदीखाँके पास खजाना भेज देते थे। पर उनके दुर्भाग्यने उनका पीछा न छोड़ा। धन्नाकी

एकाएक मृत्यु हो गई। चारों ओर शोर मच गया और बेचारे खरगसेन जान बचाकर पुनः जौनपुर लौट आए। पुन. वे १५६९ मे आगरेमें अपने चाचाके सीरमें सराफी करने लगे। बाईस वर्षकी अवस्थामे उनका विवाह हुआ और चाचीसे न बनने पर अलग रहने लगे। चाचा-चाचीकी मृत्युके बाद पचनामेसे प्राप्त सब धन अपनी चचेरी बहनके ब्याहमें खर्च कर जौनपुर लौट आये और रामदास अग्रवालके साझेमें सराफीका काम आरभ करके मोती और मानिकके चुन्नीका व्यापार करने लगे। १५७६ में पुत्रजन्मके लिए सतीकी जात पर रोहतक गए, पर रास्तेमें ही लुट गए।

१५८६ में बनारसीदासजीका जन्म हुआ। आठ वर्षकी उमरमें वे चटसाल भेजे गए और एक बरसमें अक्षराभ्यास हो गया। बारहवे वर्ष (१५९७)में उनका विवाह हो गया। उसी साल जौनपुरके जौहरियोंपर बड़ी विपत्ति गुजरी जो मध्य कालमें बहुधा व्यापारियोंपर गुजरती थी। जौनपुरके हाकिम चीन कुलीचने कोई गहरी भेंट न पाने पर जौहरियोंको पकड़ कर कोड़े लगवाए और अपनी रक्षाके लिए वे सब भागे। खरगसेन रोते विलखते अँधेरी बरसाती रातमे सहजादपुर पहुँचे। किस्मत अच्छी थी, करमचद बनिएने उनकी आव-भगत की और परिवारके रहनेकी व्यवस्था कर दी। घरमें कलसे और माट, चादर, सौर, दुलाई, खाट, अन्नसे भरा एक कोठार और भोजनके अनेक पदार्थ थे। मरतेको और क्या चाहिए था। दस माम वहाँ रहकर खरगसेन इलाहाबाद व्यापारको गए और बनिकपुत्र बनारसीदास सहजादपुरमें ही रहकर कौड़ियाँ बेचकर एक दो टके पैदा करके दादीको देने लगे। बेचारी दादीने पोतेकी पहिली कमाईसे नुकतीके लड्डू और सीरनी बॉटी और सतीकी जात मानी। कुछ ही दिनोंके बाद खरगसेनके आदेशानुसार बनारसीदास दो डोलियॉ और चार मजदूर लेकर सकुटुब फतेहपुर पहुँचे और वहाँ कुछ दिन रहकर अपने पिताके साथ इलाहाबादमें लेना-देन तथा रेहन-उधारका काम करने लगे। बादमे खबर आनेपर कि किलीच आगरे वापिस चला गया सन् १५९९ में सब जौहरी जौनपुर लौट आए। पर उनकी विपत्तिका अत नही था। १६०० में लघु किलीचको अकबरका हुक्म आया कि वह सलीमको कोल्हूबन शिकार खेलनेसे रोके। अपने बादशाहका हुक्म मानकर चीन किलीचने गढ़बदी कर ली। रास्ते बद कर दिए गए, गोमती पार करनेसे नावे रोक दी गईं, पुलपरके दरवाजे बद कर दिए गए। पैदल और

सवार तयार हो गए और चारों ओर चौकीदार रखवाली करने लगे और कंगूरों पर तोपें चढा दी गई। गढमें अन्न-वस्त्र, जल, जिरहबख्तर, जीन, बन्दूकें, हथियार तथा गोला बारूद इकट्ठा कर लिए गए। समरकी तैयारी देख प्रजा व्याकुल हो उठी और लोग भागने लगे। बेचारे जौहरी एक जगह इकट्ठा हुए और किलीचके पास पहुँचे, पर उससे ढाढ़स न पाकर सब भागे। खरगसेन भी जंगलमें छिपे रहे और छह महीने बाद जब मामला सुधरा तो जौनपुर वापिस आए।

अब बनारसीदास चौदह सालके हो चुके थे तथा नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष और अलङ्कारके साथ साथ उन्होंने लघुकोकशास्त्र भी पढा। कोकशास्त्र पढनेसे नतीजा जो होना था सो हुआ। लगे मानिकोंकी चोरी करने और आशिकी इतनी बढी कि रोजगार एक तरफ धरा रह गया। बुरेका बुरा फल निकला। उन्हें उपदंश हो गया और वे अपनी सास और स्त्रीकी सेवा और एक नापितकी दवासे किसी तरह अच्छे हुए, पर आशिकी और पढनेके बीच उनका जीवन-क्रम चलता रहा। सन् १६०४ में खरगसेन यात्राको गये और बनारसीदासकी निरङ्कुशता बढ गई। १६०५ मे जौनपुरमें अकबरकी मृत्युका समाचार पहुँचा, पर फिर गड़बड़ी मच गई। लोगोंने अपने घरोंके दरवाजे बन्द कर दिए; सराफोंने बाजारमें बैठना छोड दिया, मालमता छिपा दिया, घरोंमें शस्त्र इकट्ठे कर लिए और मोटे वस्त्र पहरकर लोग दरिद्र बन गए। पर यह गड़बडी जल्दी ही शान्त हो गई और व्यापारी फिर जौनपुर लौटकर आनंद-मंगल मनाने लगे।

इधर बनारसीदासका मन बदला। उन्होंने अपने काव्यको झूठा मानकर गोमतीके हवाले कर दिया और नेम-धरम मानते हुए पूरे जैनी बन गए। इस तरह दुखसुखमें तीन साल बीत गए। अपने पूतके अच्छे लच्छन देखकर खरगसेन हरख उठे और सन् १६१० में उन्होंने खुले और जड़ाऊ जवाहरात इकट्ठा करके कागजमे उनके भाव लिखे। साथ ही साथ बीस मन घी, दो कुप्पे तेल और जौनपुरी कपडा इकट्ठा कर लिया। मालमें २०० रु० लगे जिसमें कुछ घरकी रकम थी और कुछ उधारकी। यह सब मालमता बनारसीदासके सुपुर्द करके उनके पिताने व्यापारसे सारे कुटुम्बके पालनपोषणकी आशा प्रकट की। बेचारे बनारसीदासने जवाहरात तो टेटमें खोंसे और सारा माल गाडियोंपर लादा। बहुत-सी और गाड़ियाँ साथ हो लीं और प्रतिदिन पाँच कोसकी यात्रा करके

काफिला इटावेके पास पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही इतना जोरसे पानी गिरा कि सारा काफिला बचनेके लिए घरोंकी खोजमें भागा। बेचारे बनारसीदास भी चादर लेकर भागते हुए सराय पहुँचे, पर वहाँ दो उमराव ठहरे हुए थे। बाजारमें तिल रखनेको जगह न थी। दौड़ते दौड़ते पैर रूई हो गए पर किसीने बैठने तकको न कहा। पैर कीचसे सन गए और ऊपरसे मूसलाधार बरसात, साथ ही साथ अगहनकी ठंडी हवा। एक स्त्रीने उनसे बैठनेको कहा तो उसका पति बाँस लेकर उठा। रोते झींकते वे एक चौकीदारकी झोपड़ीमें पहुँचे। उसने इनामकी लालचसे उन्हें और उनके साथियोंकी ठहरनेकी अनुमति दे दी और वे सब कपड़े सुखाकर पयालपर सो गए, पर बदकिस्मतीने साथ न छोड़ा। रातमें एक जोरावर आदमी आ धमका और उन्हे चाबुककी मारका डर दिखला कर भगा देना चाहा। बनारसीदास हड़बड़ाकर भगे तब उसे दया आगई। उसने उन्हें एक टाट सोनेको दिया और खुद उसपर खाट डाल कर पड़ रहा। किसी तरह ठिठुरते हुए रात बीती और सवेरे काफिला आगरेकी ओर चल पड़ा।

बनारसीदास आगरे पहुँचकर वहाँ मोतीकटरमें ठहर गए। बादमे वे अपने बहनोई बदीदासके यहाँ जा टिके और माल उधार देनेवालेकी कोठीमें रख दिया। कुछ दिनो बाद उन्होंने अपना डेरा अलग कर लिया और वहीं कपड़ेकी गठरियाँ रख लीं और नित्य नखासे आने जाने लगे। अध्यातमी व्यापारीके भाग्यमें नुकसान ही बदा था, पर घी तेल वेचकर मुनाफेके चार रुपए हाथ लगे। इस तरहसे सब चीजे बेच-खोंचकर उन्होंने हुडीको चुकता किया। जवाहरातके व्यापारमे तो और बुरी ठहरी। कुछ चीजें बिना जाने सूझे साधुकुसाधुओंको दे दीं, कुछ गिरों धर कर रकम खा गए। एक बार खुला जवाहर टेंटसे गिरकर खो गया और कुछ पैजामेंमे बँधे जवाहरात चूहे काट ले गए। एक जोड़ी जड़ाऊ पहुँची एक ग्राहकके हाथ बेची तो उसने दिवाला निकाल दिया और एक अँगूठी गिरकर खो गई। इन मुसीबतोंके बीच बनारसीदास बीमार भी पड़ गए। पिताने सब समाचार सुनकर बड़ी हाय तोबा मचाई। इधर बनारसीदास सब खो-खाकर रातमें मधुमालती और मृगावती बाँचने लगे। श्रोताओंमें एक कचौड़ीवाला था, और उससे उधार पर कचौड़ियाँ लेकर उन्होंने छह महिने गुजार दिए। दमादकी दुर्दशा देखकर उनके ससुर समझाबुझाकर अपने घर ले गए। ससुरके घर रहते हुए वे धरमदासके, जो मौजी और उड़ाऊ जीव थे, साझीदार बने, पर

किसी तरह रोजगार चल निकला। दो बरस बाद खैराबाद लौटनेकी खुशी और सब चीजें बेच-बाँचकर उन्होंने कर्ज चुका दिया। इस तरह व्यापारका पहला दौर सन् १६१३ में समाप्त हो गया।

एक दिन किस्मत खुली, रास्तेमें मोतियोंकी एक गठरी मिल गई। उससे एक तावीज बनवाया और व्यापारके लिए पूरबकी ओर चल पड़े। रास्तेमें अपनी ससुरालमें ठहरे और उनकी दुरवस्था जानकर उनकी पत्नी और सासने सहानुभूतिपूर्वक उनकी मदद की। बनारसीदासकी अवस्था कुछ सुधरी, धुले कपडे और जवाहरात इकट्ठे किए और आगरे पहुँचे। वहाँ परवेजके कटरेमे ससुरकी दूकानमें भोजन करते थे, रातमे कोठीमे पड़ रहते थे। किस्मतके खोटे थे, कपड़ेके दाममें मद्दी आगई पर जवाहरातके रोजगारमें कुछ फायदा हुआ। कुछ दिन मित्रोंके साथ हँसी खुशीमे बीता, पर व्यापारी थे, रुपए तो कमाने ही थे। दो मित्रोंके साथ पटना जानेके लिए निकल पड़े। सहजादपुर तक तो रथमें गए, पर वहाँ एक बोझिया कर लिया और सरायमें ठहर गए। अभाग्यवश डेढ पहर रात बीते लहलहाती चाँदनीमें सवेरा हुआ जानकर वे तीनों बोझियेके सिर माल लदाकर चल निकले पर रास्ता भूल जानेसे जगलमे जा धँसे। बोझिया तो रो-कलप कर बोझा फेंक चपत हुआ। अब तीनों मित्रोंको स्वय बोझा लादना पड़ा और वे रोते रोते आगे बढे। यहीं उनकी विपत्तिका अत नहीं हुआ। वे एक चोरोंके गाँवके पास जा पहुँचे। एक आदमी द्वारा अपना परिचय पूछे जाने पर उनकी जान सूख गई। बनारसीदासने ब्राह्मण बननेका बहाना करके उसे असीसा और उसने उन्हे अपने चौधरीकी चौपालमें ठहरनेको कहा, पर भयके मारे उनकी बुरी दशा थी। जान बचानेके लिए उन्होंने कपडोंसे सूत काढकर जनेऊ बना कर पहने और मिट्टीसे टीके लगाकर पूरे ब्राह्मण बन गए। चौधरी आ धमके और बनारसीदास और उनके साथियोंको ब्राह्मण जानकर सीस नवाया और उन्हें फतहपुरका रास्ता बतला दिया। इस तरह वे इलाहाबाद पहुँचे।

यों तो बनारसीदासका व्यापार चलता ही रहा, पर सन् १६१६ में अपने पिताकी मृत्युके बाद उन्होंने फिर व्यापार करनेकी सोची। पाँच सौकी हुडी लिखकर कपड़ा खरीदा, पर इसी बीच आगरेसे लेखा चुकानेके लिए सेठ सबलसिंहका पत्र आगया और बनारसीदास अपना

कपड़ेका काम दूसरेको सुपुर्द करके यात्रापर चल निकले। यात्रियोंकी पूरी जमातमें उन्नीस आदमी हो गये, जिसमें मथुरावासी दो ब्राह्मण भी थे। घाटमपुरके पास कोररा ग्राममे बनारसीदास सरायमें उतर गए और दोनों ब्राह्मण किसी अहीरके घर जा पहुँचे। एक ब्राह्मण देवता बाजार पहुँचे और एक रुपया भुना कर खाने पीनेका सामान खरीद कर डेरेपर वापिस लौटे। इतनेमें जिस सराफके यहाँ उसने रुपया भुनाया था वह वहाँ पहुँचा और रुपया खोटा कहकर उसे लौटा लेनेको कहा। इस बातको लेकर दोनोंमें तू तू मै मै हो गई और मथुरिया ब्राह्मणने सराफको पीट दिया। इसी बीच सराफका भाई आगया। उसने ब्राह्मणोंके सब रुपये जाली ठहराए और उनके गाँठबँधे रुपए घर ले जाकर नकली रुपयोंमे बदलकर कोतवालसे फरियाद कर दी। कोतवाल हाकिमकी आज्ञासे दीवानके साथ कोरराकी सरायमें पहुँचा और चार आदमियोंके सामने उनके बयान लिए। कोतवालने उनकी गिरफ्तारीका हुक्म दिया जो सवेरे तकके लिए रोक ली गई। किसी तरह रात बीती पर सबेरे ही कोतवालके प्यादे उन्नीस सूलियाँ लेकर आ धमके और कहा कि वे सूलियाँ उनके ही लिए हैं। बनारसीदास और उनके साथी पासके एक गाँवके साहूकारकी जमानत देकर किसी तरह बच गए। पहर भर दिन चढने पर बनारसीदासने छह सात सेर फुलेल लेकर हाकिमोंकी भेंट की और सराफको सजा देनेकी माँग की, पर पता चला कि वह तो चपत हो चुका था। रास्तेमें अपने मित्र नरोत्तमदासकी मृत्युका समाचार सुन कर वे बड़े दुखी हुए। दया करके उन्होंने ब्राह्मणोंको उनके खोये रुपए भी दे दिए। आगरेमे उनके साहूजी ऐश आराममें इतने फँसे थे कि उन्हें हिसाब करनेकी फुरसत ही नहीं थी। किसी तरह एक मित्रकी सहायतासे मामला निपट गया और साझा अलग हो गया। यही बनारसीदासकी व्यापारीके नाते अंतिम यात्रा थी। इसके बाद लगता है कि धीरे धीरे उनकी आध्यात्मिक उन्नतिके साथ व्यापारका सिलसिला कम हो चला।

प्रेमीजीने बनारसीदासके अध्यात्म मतके बारेमें उपलब्ध सामग्रीका विधिपूर्वक विश्लेषण किया है और उनके आत्मिक विकासपर भी प्रकाश डाला है। उस समय आगरेमे अध्यात्मियोंकी एक सैली या गोष्ठी थी जिसमें रातदिन परमार्थका चिन्तन होता था। बनारसीदास इन अध्यात्मियोंमें एक प्रमुख स्थान पा गये। बादमें राजस्थानमें अध्यात्मियोंकी और सैलियाँ बन गई। अब प्रश्न उठता है कि

इन अध्यात्म गोष्ठियोंका अकबरके दीन इलाही मतसे, जो बादशाहके अध्यात्मिक चिन्तनका परिणाम था, क्या सम्बन्ध था। अकबरने १५८२ ई० में दीन इलाहीकी स्थापना की, पर १५८७ के पहले इसके सिद्धान्तोंकी व्याख्या भी न हो सकी थी, और न इनपर कोई अलगसे ग्रथ ही लिखा गया था, यद्यपि दीन इलाहीके बाह्याचारोंके विषयमें बदायूनीने कुछ लिखा है। मोहसिन फानीने दबिस्तान-ए-मजाहिबमें लिखा है कि दीनके निम्नलिखित दस सिद्धान्त थे, यथा—(१) दान (२) दुष्टोंको क्षमा तथा शान्तिसे क्रोधका शमन, (३) सासारिक भोगोंसे विरति, (४) सासारिक बन्धनोंसे विरक्ति और परलोकचिन्तन, (५) कर्मविपाकपर ज्ञान और भक्तिके साथ चिन्तन, (६) अद्भुत कर्मोंका बुद्धिपूर्वक मनन, (७) सबके प्रति मीठा स्वर और मीठी बातें, (८) भाइयोंके प्रति अच्छा व्यवहार तथा अपनी बातके पहले उनकी बात मानना, (९) लोगोंके प्रति विरक्ति और ईश्वरके प्रति अनुरक्ति, (१०) ईश्वर-प्रेममें आत्मसमर्पण और सर्वरक्षक परमात्मासे साक्षात्कार। दीन इलाहीमें व्यक्तिके पवित्र आचरणपर ध्यान रखा गया है। पर किसी मजहबको चलानेके लिए बाह्य कर्मों और सघटनकी भी आवश्यकता पड़ती है और दीन इलाही भी इसका अपवाद नहीं है। फिर भी इसमें पुरोहितीको स्थान नहीं है।

सूफियाना मत होनेसे इसमें धर्म मन्दिरकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि एक अवस्था विशेषको पहुँचनेहीपर लोग इस मतमें प्रवेश पा सकते थे गो कि इस बातके भी प्रमाण हैं कि बादशाहको प्रसन्न करनेके लिए भी लोग दीन इलाहीमें घुस पड़ते थे। धर्मोंके प्रति सहानुभूति ही इसका मुख्य लक्ष्य था। दीक्षाके पहले बादशाहके प्रति वफादारी आवश्यक थी। प्रति रविवारको दीक्षा लेनेवाला बादशाहके चरणोंमें नत होता था। दीक्षा लेनेके बाद उसकी गिनती चेलोंमें होती थी और वह 'अल्लाहो अकबर' अकिन शस्त पहननेका अधिकारी होता था। चेले बादशाहके सामने जमीनबोस होते थे और वह उन्हें दर्शनियाँ मजिलसे दर्शन देता था। दीन इलाहीवाले मृतक-भोज नहीं करते थे, कमसे कम मास खाते थे, अपने द्वारा मारे पशुका मास नहीं खाते थे, कसाइयों मछुओं और बहेलियोंके साथ भोजन नहीं करते थे तथा गर्भिणी, वृद्धा और वन्ध्याका सहगमन उनके लिए वर्जित था। चेले दो प्रकारके होते थे, पूरा धर्म माननेवाले और केवल शस्तके अधिकारी।

दीन इलाहीका प्रभाव अकबरकालीन जन-जीवनपर कितना पड़ा, यह कहना कठिन है। उसमें इस्लामके सिद्धान्तोंका अधिकतर प्रतिपादन होनेसे शायद वह हिंदुओंके हृदयको अधिक न छू सका, पर इसमें सदेह नहीं कि तत्कालीन गोष्ठियों और सैलियोंमें उनकी झलक अवश्य दीख पड़ती है। बनारसीदासने अपने गुणोंके बारेमें जैसे क्षमा, सतोष, मिष्टभाषण, सहनशीलता, इत्यादिका उल्लेख किया है वे दीन इलाहीमें भी पाये जाते हैं, तथा अध्यात्म-चिंतनमें दोनोंका विश्वास था। पर यह पता नहीं चलता कि उनकी अध्यात्म सैलीमें दाखिल होनेके क्या नियम थे अथवा उस गोष्ठीमें गुरुशिष्यसम्बन्ध प्रचलित था या नहीं। शायद गुरुशिष्यपरम्परा जैन सैलियोंमें न रही हो, पर काशीमें टोडरमल्लके पुत्र गोबरधन, धरू अथवा गिरधारी द्वारा स्थापित एक ऐसी गोष्ठीका पता चलता है जिसके गुरु स्वय गोबरधन थे। इतिहाससे पता चलता है कि १५८५ से १५८९ के बीच गोवरधन जौनपुरमें थे। जौनपुरमें रहते हुए उन्हें बनारस आनेके बहुत-से मौके पड़ते रहे होंगे और टोडरमल्के नामसे जो मन्दिर या बावलियाँ बनारसमें बनीं उन्हें गोबरधनने ही बनवाया होगा। सन् १५८५ और १५८९ के बीच विश्वेश्वरकी पूजाके उपलक्ष्यमें शेषकृष्ण-द्वारा लिखित कसवध नाटकका अभिनय हुआ और इस अभिनयमें गोवरधन स्वयं उपस्थित थे। अभिनयके आरम्भके निम्नलिखित श्लोकसे गोवरधनके बारेमें कुछ पता चलता है :—

> तस्यास्ति तडनकुलामलमडनस्य,
> श्रीतोडरक्षितिपतेस्तनयो नयज्ञः।
> नानाकलाकुलगृह सविदग्धगोष्ठीम्,
> एकोऽधितिष्ठति गुरुर्गिरिधारि नामा।

इस श्लोकसे पता चलता है कि गुरु गिरिधारी राजा टोडरमलके पुत्र थे तथा नाना कलाओंसे भरी विदग्ध गोष्ठीके वे गुरु थे। इस श्लोकमें आए गिरिधारीसे कुछ विद्वानोंने वल्लभाचार्यके पौत्र गिरधारीका अर्थ लिया है और उन्हें गोबरधनका गुरु मान लिया है। पर गोवरधन और गिरधारी एक थे, इसमें सदेह नहीं। इस प्रसगमे बनारसकी एक प्रसिद्ध लोकोक्ति 'सबके गुरु गोवरधनदास' की ओर बरबस ध्यान आकृष्ट होता है जिसका अर्थ होता है कि

गोवरधनदास सब धार्मिक कार्योंमें अग्रणी हैं। संभव है कि यह कहावत गोवरधनके लिए ही बनारसमें चली थी। गोवरधनकी विदग्ध गोष्ठीमें क्या क्या होता था इसका पता नही, शायद इसमें कला-चर्चाके साथ साथ आध्यात्मिक विचारोंकी भी चर्चा होती रही होगी, क्योंकि राजा टोडरमल और गोवरधन धार्मिक विचारके थे। यह भी सभव है कि अकबरकी देखादेखी गोवरधनने दीन इलाहीके ढंगपर बनारसमें कोई गोष्ठी चलाई हो। पर जब तक इस सबंधमें कुछ और सामग्री न मिले कोई ठीक मत निश्चय नहीं किया जा सकता।

पडित नाथूरामजीने बनारसीदासजीके अर्धकथानकका उद्धार करके तथा अपनी बड़ी भूमिकामें उस ग्रथमें आई हुई सामग्रीका वैज्ञानिक रूपसे अध्ययन करके मध्यकालीन इतिहास और सस्कृतिके विद्यार्थियोंकी अपूर्व सेवा की है। मुझे आशा है कि भविष्यमें अर्धकथानकका अनुवाद अंग्रेजी और दूसरी देशीय भाषाओंमें भी होगा।

प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
८-११-५७

—(डॉ०) **मोतीचन्द**

हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित

सन् १६४१—

कोई तीन सौ वर्ष पहलेकी बात है। एक भावुक हिन्दी कविके मनमें नाना प्रकारके विचार उठ रहे थे। जीवनके अनेकों उतार चढाव वे देख चुके थे। अनेक संकटोंमेंसे वे गुज़र चुके थे, कई बार बाल बाल बचे थे, कभी चोरों डाकुओंके हाथ जान-माल खोनेकी आशङ्का थी, तो कभी शूलीपर चढनेकी नौबत आनेवाली थी और कई बार भयकर बीमारियोंसे वे मरणासन्न हो गये थे। गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका शिकार उन्हें कई बार होना पड़ा था, एकके बाद एक उनकी दो पत्नियोंकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके नौ बच्चोंमेंसे एक भी जीवित नहीं रहा था! अपने जीवनमें उन्होंने अनेकों रग देखे थे—तरह तरहके खेल खेले थे—कभी वे आशिकीके रगमें सराबोर रहे तो कभी धार्मिकताकी धुन उनपर सवार थी और एक बार तो आध्यात्मिक फिटके वशीभूत होकर उन्होंने वर्षोंके परिश्रमसे लिखा अपना नवरसका ग्रन्थ गोमतीके हवाले कर दिया था! तत्कालीन साहित्यिक जगत्में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किंवदन्तियोंपर विश्वास किया जाय तो उन्हें महाकवि तुलसीदासके सत्सङ्गका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि उनसे यह सर्टीफिकेट भी मिला था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है। सुना है कि शाहजहाँ बादशाहके साथ शतरज खेलनेका अवसर भी उन्हें प्रायः मिलता रहता था। सवत् १६९८ (सन् १६४१) में अपनी तृतीय पत्नीके साथ बैठे हुए और अपने चित्र-विचित्र जीवनपर दृष्टि डालते हुए यदि उन्हें किसी दिन आत्म चरितका विचार सूझा हो तो उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौं तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥ ६४३

अपने जीवनके पतझड़के दिनोंमें लिखी हुई इस छोटी सी पुस्तकसे यह आशा उन्होंने स्वप्नमें भी न की होगी कि वह कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत्में उनके यशःशरीरको जीवित रखनेमें समर्थ होगी।

कविवर बनारसीदासके आत्म-चरित 'अर्ध-कथानक' को आद्योपान्त पढनेके बाद हम इस परिणामपर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इस ग्रन्थका एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमें वह सजीवनी शक्ति विद्यमान् है जो इसे अभी कई सौ वर्ष और जीवित रखनेमें सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यमान् है, भाषा इस पुस्तककी इतनी सरल है और साथ ही साथ यह इतनी सक्षिप्त भी है, कि साहित्यकी चिरस्थायी सम्पत्तिमें इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दीका तो यह सर्वप्रथम आत्म-चरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी, और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं। और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि कविवर बनारसीदासका दृष्टिकोण आधुनिक आत्म-चरित-लेखकोंके दृष्टिकोणसे बिल्कुल मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषोंपर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबीके साथ किया है मानों कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्तिसे विश्लेषण कर रहा हो। आत्माकी ऐसी चीरफाड़ कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था और यद्यपि कविवर बनारसीदासजी एक भावुक व्यक्ति थे—गोमतीमें अपने ग्रन्थको प्रवाहित कर देना और सम्राट् अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाना उनकी भावुकताके प्रमाण हैं—तथापि इस आत्म-चरितमें उन्होंने भावुकताको स्थान नहीं दिया। अपनी दो पत्नियों, दो लड़कियों और सात लडकोंकी मृत्युका जिक्र करते हुए उन्होंने केवल यही कहा है :—

तत्त्वदृष्टिं जो देखिए, सत्यारथकी भाँति।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसाति॥ ६४४

यह दोहा पढकर हमें प्रिन्स क्रोपाटकिनकी आदर्श लेखनशैलीकी याद आ गई। उनका आत्म-चरित उन्नीसवीं शताब्दीका सर्वोत्तम आत्म-चरित माना जाता है। उसमें उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय अग्रजकी मृत्युका जिक्र केवल एक वाक्यमें किया था :—

"A dark cloud hung upon our cottage for many months."

अर्थात् "कितने ही महीनोंतक हमारी कुटीपर दुःखकी घटा छाई रही।" यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऐलेगजेण्डर क्रोपाटकिन ज्योतिर्विज्ञानके बड़े पण्डित थे, जारकी रूसी नौकरशाहीने निरपराध ही उन्हें साइवेरियाके लिए निर्वासित कर दिया था और वहाँसे लौटते समय उन्होंने आत्म-घात कर लिया था!

अपने चारित्रिक स्खलनोंका वर्णन कविवरने इतनी स्पष्टतासे किया है कि उन्हें पढ़कर अराजकवादी महिला ऐमा गौल्डमैनके आत्म-चरितकी याद आ जाती है। अँग्रेजीके एक आधुनिक आत्मचरित*में उसकी लेखिका ऐथिल मैनिनने अपने पुरुष-सम्बधोंका वर्णन निःसकोच भावसे किया है पर उसे इस बातका क्या पता कि तीन सौ वर्ष पहले एक हिन्दी कविने इस आदर्शको उपस्थित कर दिया था। उनके लिए यह बड़ा आसान काम था कि वे भी "मो सम कौन अधम खल कामी" कहकर अपने दोषोंको धार्मिकताके पर्देमें छिपा देते। *उन दिनों आत्मचरितोंके लिखनेकी रिवाज भी नहीं थी*—आजकल तो विलायतमें चोर डाकू और वेश्याएँ भी आत्मचरित लिख लिख कर प्रकाशित करा रही हैं—और तत्कालीन सामाजिक अवस्थाको देखते हुए कविवर बनारसी-दासजीने सचमुच बड़े दुःसाहसका काम किया था। अपनी इश्कबाजी और तज्जन्य आतशक (सिफलिस) का ऐसा खुल्लमखुल्ला वर्णन करनेमें आधुनिक लेखक भी हिचकिचाएँगे। मानों तीन सौ वर्ष पहले बनारसीदासजीने तत्कालीन समाजको चुनौती देते हुए कहा था, "जो कुछ मैं हूँ, आपके सामने मौजूद हूँ, न मुझे आपकी घृणाकी पर्वाह है और न आपकी श्रद्धाकी चिन्ता।" लोक-लज्जाकी भावनाको ठुकरानेका यह नैतिक बल सहस्रोंमें एकाध लेखकको ही प्राप्त हो सकता है।

कविवर बनारसीदासजी आत्मचरित लिखनेमें सफल हुए इसके कई कारण हैं, उनमें एक तो यह है कि उनके जीवनकी घटनाएँ इतनी वैचित्र्यपूर्ण हैं कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरञ्जकताकी गारटी बन सकता है। और दूसरा कारण यह है कि कविवरमे हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें पाई जाती थी। अपना मज़ाक उड़ानेका कोई मौका वे नहीं छोड़ना चाहते। कई महीनों

* Confessions and impressions by Ethel Mannin

तक आप एक कचौड़ीवालेसे दुबक्ता कचौड़ियाँ खाते रहे थे। फिर एक दिन एकान्तमें आपने उससे कहा—

तुम उधार कीनौ बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहासौं लेहु ॥ ३४१

पर कचौड़ीवाला भला आदमी निकला और उसने उत्तर दिया—

कहै कचौरीवाल नर, वीस रुपैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहा भावै तहा जाहु ॥ ३४२

आप निश्चिन्त होकर छै सात महीने तक दोनों वक्त भरपेट कचौड़ियाँ खाते रहे और फिर जब पैसे पास हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब भी साफ कर दिया। चूँकि हम भी आगरे जिलेके ही रहनेवाले हैं, इसलिए हमें इस बातपर गर्व होना स्वाभाविक है कि हमारे यहाँ ऐसे दूरदर्शी श्रद्धालु कचौड़ीवाले विद्यमान् थे जो साहित्यसेवियोंको छै सात महीने तक निर्भयतापूर्वक उधार दे सकते थे। कैसे परितापका विषय है कि कचौड़ीवालोंकी वह परम्परा अब विद्यमान् नहीं, नहीं तो आजकलके महँगीके दिनोंमे वह आगरेके साहित्यिकोंके लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध होती।

कविवर बनारसीदासजी कई बार बेवकूफ बने थे और अपनी मूर्खताओंका उन्होंने बड़ा मनोहर वर्णन किया है। एक बार किसी धूर्त सन्यासीने आपको चकमा दिया कि अगर तुम अमुक मंत्रका जाप पूरे सालभर तक बिल्कुल गोपनीय ढँगसे पाखानेमें बैठकर करोगे तो वर्ष बीतने पर घरके दर्वाजेपर एक अशर्फी रोज़ मिला करेगी। आपने इस कल्पद्रुम मंत्रका जाप उस दुर्गन्धित वायुमडलमें विधिवत् किया, पर स्वर्णमुद्रा तो क्या आपको कानी कौड़ी भी न मिली!

बनारसीदासजीका आत्मचरित पढते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हम कोई सिनेमा-फिल्म देख रहे हैं। कहींपर आप चोरोंके ग्राममें लुटनेसे बचनेके लिए तिलक लगाकर ब्राह्मण बनकर चोरोंके चौधरीको आशीर्वाद दे रहे हैं तो कहीं आप अपने साथी संगियोंकी चौकड़ीमें नगे नाच रहे हैं या जूते-पैजारका खेल खेल रहे हैं।—

कुमती चारि मिले मन मेल। खेला पैजारहुका खेल॥
सिरकी पाग लेहिं सब छीन। एक एककौं मारहिं तीन॥ ६०१

एक बार घोर वर्षाके समय इटावेके निकट आपको एक उद्दण्ड पुरुषकी खाटके नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियोंके साथ लेटना पड़ा था। उस गॅवार धूर्तने इनसे कहा था कि मुझे तो खाटके बिना चैन नहीं पड़ सकती और तुम इस फटे हुए टाटको मेरी खाटके नीचे बिछाकर उसपर शयन करो।

'एवमस्तु' बानारसि कहै। जैसी जाहि परै सो सहै।
जैसा कातै तैसा बुनै। जैसा बोवै तैसा लुनै॥ ३०६
पुरुष खाटपर सोया भले। तीनौ जनें खाटके तले।

एक बार आगरेको लौटते हुए कुर्रा नामक ग्राममें आप और आपके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयकर अपराध लगा दिया गया था और आपको तथा आपके अन्य अठारह साथी यात्रियोंको मृत्युदण्ड देनेके लिए शूली भी तैयार कर ली गई थी। उस सकटका ब्यौरा भी रोंगटे खड़े करनेवाले किसी नाटक जैसा है। उस वर्णनमें भी आपने अपनी हास्यप्रवृत्तिको नहीं छोड़ा।

सबसे बड़ी खूबी इस आत्म-चरितकी यह है वह तीन-सौ वर्ष पहलेके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य ज्योंका त्यों उपस्थित कर देता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे कुछ प्रतिभाशाली साहित्यिक इस दृष्टान्तका अनुकरण कर आत्म-चरित लिख डालें। यह कार्य उनके लिए और भावी जनताके लिए भी बड़ा मनोरजक होगा। बकौल 'नवीन' जी—

"आत्मरूप दर्शनमें सुख है, मृदु आकर्षण-लीला है।
और विगत जीवन-सस्मृति भी, स्वात्मप्रदर्शनशीला है,
दर्पणमें निज बिम्ब देखकर यदि हम सब खिंच जाते हैं,
तो फिर सस्मृति तो स्वभावत नर-हिय-हर्षणशीला है।"

स्वर्गीय कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने **चैतालि**में 'सामान्य लोक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका साराश यह हैः—

"सन्ध्याके समय कॉखमें लाठी दबाए और सिरपर बोझ लिये हुए कोई किसान नदीके किनारे किनारे घरको लौट रहा हो। अनेक शताब्दियोंके बाद यदि किसी प्रकार मत्र-बलसे अतीतके मृत्यु-राज्यसे वापस बुलाकर इस किसानको मूर्तिमान दिखला दिया जाय, तो आश्चर्य-चकित होकर असीम जनता उसे चारों ओरसे घेर लेगी और उसकी प्रत्येक कहानीको उत्सुकतापूर्वक सुनेगी। उसके

सुख दुःख, प्रेम-स्नेह, पास पड़ौसी, घर-द्वार, गाय-बैल, खेत-खलिहान इत्यादिकी बातें सुनते-सुनते जनता अघाएगी नहीं। आज जिसके जीवनकी कथा हमें तुच्छतम दीख पड़ती है वह शत शताब्दियोंके बाद कवित्वकी तरह सुनाई पडेगी।"

सन्ध्या वेला लाठी काँखे बोझा वहि शिरे।
नदीतीरे पल्लीवासी घरे जाय फिरे॥
शत शताब्दी परे यदि कोनो मते।
मन्त्र बले, अतीतेर मृत्युराज्य ह'ते॥
एई चाषी देखा देय ह'ये मूर्तिमान।
एई लाठि काँखे ल'ये विस्मित नयान॥
चारि दिके धिरि ता'रे असीम जनता।
काढाकाडि करि लवे ता'र प्रति कथा॥
ता'र सुख दुःख यत ता'र प्रेम स्नेह।
ता'र पाड़ा प्रतिवेशी, ता'र निज गेह॥
ता'र क्षेत ता'र गरु ता'र चाख बास।
शुने शुने किछु तेइ मिटिवे न आश॥
आजि जॉर जीवनेर कथा तुच्छतम।
से दिन शुनावे ताहा कवित्वेर सम!

मान लीजिए यदि आज हमारी मातृभाषाके सौ दो सौ लेखक विस्तारपूर्वक अपने अनुभवोंको लिपिबद्ध कर दे तो सन् २२५७ ईस्वीमे वे उतने ही मनोरजक और महत्त्वपूर्ण बन जावेंगे, जितने मनोरजक कविवर बनारसीदासजीके अनुभव हमे आज प्रतीत हो रहे हैं। गदरको हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। हमारे देशमें ऐसे व्यक्ति मौजूद थे जिन्होंने सन् १८५७ का गदर देखा था। इस गदरका ऑखों देखा विवरण एक महाराष्ट्रयात्री श्रीयुत विष्णुभटने किवा था और सन् १९०७ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिन्तामण विनायक वैद्यने इसे लेखकके वशजोंके यहॉ पड़ा हुआ पाया था। उन्होंने उसे प्रकाशित भी करा दिया। उसकी मूल प्रति पूनाके 'भारत-इतिहास-सशोधक मडल' में सुरक्षित है। जब विष्णुभटको पूनामें यह खबर मिली कि श्रीमती बायजाबाई सिंधिया मथुरामें सर्वतोमुख यज्ञ करानेवाली हैं तो आपने मथुरा जानेका निश्चय

किया। पिताजीसे आज्ञा माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया, "उधर अपने लोग बहुत कम हैं, मार्ग कठिन है, लोग भाँग और गाँजा पीनेवाले हैं और मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं।"

स्त्रियोंके मायावी होनेकी बात पढ़कर हँसी आए बिना नहीं रहती। दक्षिण-वालोंके लिए मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं और इधर उत्तरवालोंके लिए बंगालकी स्त्रियाँ जादूगरनी होती हैं, जो आदमीको बैल बना देती हैं और बंगालियोंके लिए कामरूप (आसाम) की स्त्रियाँ कपटी और भयंकर होती हैं। बंगालमें पूरे ग्यारह वर्ष रहनेके बाद भी हम 'बछियाके ताऊ' नहीं बने, मनुष्य ही बने रहे, यही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये बातें कोरी गप हैं। हाँ, तो विष्णुभट्को मथुराकी मायावी स्त्रियोंसे सुरक्षित रखनेके लिए उनके चाचा भी साथ हो लिये थे और इन्हीं चाचा भतीजेका यात्रा-वृत्तान्त आज सौ वर्ष बाद एक ऐतिहासिक ग्रन्थ बन गया है!

क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दीके धुरंधर विद्वान् आगे आनेवाली सन्तानके लिए अपनी अनुभूतियोंको सुरक्षित रखते।

यदि स्वर्गीय द्विवेदीजीने अपना जीवनचरित लिख दिया होता तो हमें दौलतपुरसे ३६ मील दूर रायबरेलीको आटा दाल पीठपर लादे हुए पैदल जानेवाले उस तपस्वी बालकके और भी वृत्तान्त सुननेको मिलते, जो रोटी बनाना नहीं जानता था और जो इसलिए दालहीमें आटेकी टिकियाँ डालकर और पकाकर खा लिया करता था।

संसार दुःखमय है और उसमें निरन्तर दुर्घटनाएँ घटा ही करती हैं। यदि कोई मनुष्य हृदयवेदनाको चित्रित कर दे तो वह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकती है। कोई बारह सौ वर्ष पहलेके पो चुई नामक किसी चीनी कविने अपनी तीन वर्षकी स्वर्गीय पुत्री स्वर्ण-घटीके विषयमें एक कविता लिखी थी, वह अब भी जीवित है।

जब कविवर शङ्करजीने क्वाँर सुदी ३ सम्वत् १९८१ को अपनी डायरीमें निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी थीं उस समयकी उनकी हार्दिक वेदनाका अनुमान करना भी कठिन है—

"महाकाल रुद्रदेवाय नमः

हाय आज क्वॉर सुदी ३ सम्वत १९८१ वि० बुधवारको दिनके ११ बजे पर प्यारा ज्येष्ठ पुत्र उमाशङ्कर मुझ बूढे आपसे पहले ही स्वर्गको चला गया। हाय बेटा, अब मेरी क्या दुर्गति होगी। प्यारा पुत्र पाँच मासने बीमार था। बहुतेरा इलाज किया कराया कुछ भी लाभ न हुआ। प्यारे पुत्रका क्रोध बढ़ता ही गया, बहुतेरा समझाया, कुछ फल न मिला। मरनेके दिन अच्छा भला बातें कर रहा है। यकायक शोर बढ़ने लगा। चि० हरिशंकर और रामलाल कपिने बोलते बोलते ही अचेत होनेपर जमीनपर ले लिया। केवल दो मिनट चुप रहा, दम निकल गया। हाय बेटा! उमाशंकर अब कहाँ।

> आज उमाशंकर सुत प्यारा, हाय हुआ दम सबने न्यारा।
> हे शङ्कर कविराज सुख सबद्वारा छिना।
> निरख दिवाली आज, हाय उमाशङ्कर विना॥

संसारमें न जाने कितने अभागे पिताओंपर यह वज्रपात होता है और पुत्र-विहीन कितनी दिवालियाँ उन्हें अपने जीवनमें देखनी पड़ती हैं।

जब स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने महाकवि अकबरके छोटे लड़के हाशमकी बेवक्त मौतपर समवेदनाका पत्र भेजा था तो उसके जवाबमें अकबर साहबने लिखा था:—

"अगरचे हवादसे आलम (सांसारिक विपत्तियोंकी दुर्घटनाएँ) पेशे नज़र रहते हैं और नसीहत हासिल किया करता हूँ, लेकिन हाशम मेरा पूरा कायम-मुकाम (प्रतिनिधि, कवितासम्पत्तिका सच्चा उत्तराधिकारी) तय्यार हो रहा था और मेरे तमाम दोस्तों और कद्र अफजाओंसे मुहब्बत रखता था। उसकी जुदाईका नेचरल तौरपर बेहद कलक़ हुआ है..."

उस समय अकबरने एक कविता लिखी थी, जिसका एक पद्य यह है—

> "आगोशसे सिधारा मुझसे यह कहनेवाला
> 'अब्बा, सुनाइए तो क्या आपने कहा है'।
> अशआर हसरत-आगीं कहनेकी ताब किसको
> अब हर नज़र है नौहा, हर साँस मरसिया है।"

केवल भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं दुःखके उस स्रोतका, जहाँसे ये पंक्तियाँ निकली थीं —

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौं तरवर पतझार है, रहैं ठूठसे होइ॥

Inside out (अन्तःकरणका प्रकटीकरण) नामक पुस्तकके लेखकने संसारके ढाई सौ आत्मचरितोंका विश्लेषण करके उक्त पुस्तक लिखी थी और अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे थे कि सर्वश्रेष्ठ आत्मचरितोंके लिए तीन गुण अत्यन्त आवश्यक हैं – (१) वे संक्षिप्त हों, (२) उनमें थोड़ेमें बहुत बात कही गई हो, (३) वे पक्षपातरहित हों।

अर्ध-कथानक इस कसौटीपर निस्सन्देह खरा उतरता है और यदि इसका अँग्रेजी अनुवाद कभी प्रकाशित हो तो हमें आश्चर्य न होगा।

कविवर बनारसीदासजी जानते थे कि आत्मचरित लिखते समय वे कैसा असंभव कार्य हाथमें ले रहे हैं। उन्होंने कहा भी था कि एक जीवकी चौबीस घंटेमें जितनी भिन्न भिन्न दशाएँ होती हैं उन्हें केवली या सर्वज्ञ ही जान सकता है और वह भी ठीक ठीक तौरपर कह नहीं सकता।—

एक जीवकी एक दिन दसा होइ जेतीक।
सो कहि न सकै केवली, जानै जद्यपि ठीक॥ ६६०

इसी भावको मार्क ट्वेन नामक एक अमरीकन लेखकने इन शब्दोंमें प्रकट किया था:—

What a very little part of a person's life are his acts and his words! His real life is led in his head and is known to none but himself! All day long and every day, the mill of his brain is grinding and his thoughts not those other things are his history. His acts and words are merely the visible thin crust of his world, with its scattered snow summits and its vacant wastes of water—and they are so trifling a part of his bulk—a mere skin enveloping it The most of him is hidden—it and its volcanic fires that toss and boil and never rest, night nor day These are

his life and they are not written, and can't be written. Every day would make a whole book of eighty thousand words—three hundred and sixty five books a year Biographies are but the clothes and buttons of the man The biography of the man himself can't be written."

इसका साराश यह है "मनुष्यके कार्य और उसके शब्द उसके वास्तविक जीवनके, जो लाखो करोड़ो भावनाओंद्वारा निर्मित होता है, अत्यल्प अश हैं। अगर कोई मनुष्यकी असली जीवनी लिखनी शुरू करे तो एक दिनके वर्णनके लिए कमसे कम अस्सी हजार शब्द तो चाहिए और इस प्रकार साल भरमें तीन-सौ पैंसठ पोथे तय्यार हो जावेंगे। छपनेवाले जीवन-चरितोंको आदमीके कपड़े और बटन ही समझना चाहिए किसीका सच्चा जीवन-चरित लिखना तो सम्भव नहीं।"

फिर भी छसौ पचहत्तर दोहा और चौपाइयोंमें कविवर बनारसीदासजीने अपना चरित्र चित्रण करनेमे काफी सफलता प्राप्त की है और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं उनके इस ग्रन्थमें अद्भुत सजीवनी-शक्ति विद्यमान् है। उनके साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे यह कहीं अधिक जीवित रहेगा।

यद्यपि हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि 'आत्मान विद्धि' (अपनेको पहचानो) का उपदेश सहस्रो वर्षोंसे देते आ रहे हैं पर यह सबसे अधिक कठिन कार्य है और इससे भी अधिक कठिन है अपना चरित्र-चित्रण। यदि लेखक अपने दोषोंको दबाके अपनी प्रशसा करे तो उसपर अपना ढोल पीटनेका इल्ज़ाम लगाया जा सकता है और यदि वह खुल्लमखुल्ला अपने दोषोंका ही प्रदर्शन करने लगे तो छिद्रान्वेषी समालोचक यह कहते हैं कि लेखक बनता है और उसकी आत्म-निन्दा मानों पाठकोंके लिए निमन्त्रण है कि वे लेखककी प्रशसा करें।

अपनेको तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना, उनको विवेककी तराजूपर बावन तोले पाव रत्ती तौलना, सचमुच एक महान् कलापूर्ण कार्य है। आत्म-चित्रण वास्तवमे 'तरवारकी धारपै धावनो' है, पर इस कठिन प्रयोगमे अनेक बड़े-से बड़े कलाकार भी फेल हो सकते हैं और छोटे-से छोटे लेखक और कवि अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

जो व्यक्ति अपनेको नितान्त साधारण समझते हैं वे भी यदि अपनी अनुभूतियोंको लिख सकें तो अनेक उपदेशप्रद और मनोरञ्जक ग्रन्थोंका निर्माण हो सकता है। इस अवसरपर हमें स्वर्गीय प० प्रतापनारायणजी मिश्रका एक वाक्य याद आ रहा है, जो उन्होंने आत्मचरितकी भूमिकामें लिखा था। दुर्भाग्यवश वे पुस्तकको बिल्कुल अधूरा ही छोड़ गये। मिश्रजीने लिखा थाः—

"जिन पदार्थोंको साधारण दृष्टिसे लोग देखते हैं वे कभी कभी ऐसे आश्चर्य-मय उपकारपूर्ण जँचते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि चमत्कृत हो रहती है! एक घासका तिनका हाथमे लीजिए और उसकी भूत एव वर्त्तमान दशाका विचार कर चलिए तो जो जो बातें उस तुच्छ तिनकेपर बीती हैं, उनका ठीक ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नहीं सकते, पर तो भी इतना अवश्य सोच सकते हैं कि एक दिन उसकी हरीतिमा (सब्ज़ी) किसी मैदानकी शोभाका कारण रही होगी। कितने ही क्षुधित पशु उसके खा जानेको लालायित रहे होंगे, अथवा उसको देखके न जाने कौन डर गया होगा कि शीघ्र खोदो, नहीं तो वर्षा होने पर घर कमजोर कर देगा, सुखसे बैठना कठिन पड़गा। इसके अतिरिक्त न जाने कैसी मन्द प्रखर वायु, कैसी घनघोर वृष्टि, कैसे कोमल कठोर चरण-प्रहारका सामना करता करता आज इस दशाको पहुँचा है? कल न जाने किसकी आँखोंमें खटके, न जाने किस ठौरके जल व पवनमें नाचे, न जाने किस अग्निमें जलके भस्म हो, इत्यादि। जब तुच्छ वस्तुओंका चरित्र ऐसे ऐसे भारी विचार उत्पन्न करता है, तो यह तो एक मनुष्यपर बीती हुई बातें हैं, सारग्राही लोग इन बातोंसे सैकड़ों भली बुरी बातें निकालके सैकड़ों लोगोंको चतुर बना सकते हैं।"

स्टीफन ज्विग (विश्वविख्यात कलाकार) का अनुरोध था कि मामूली आदमियोंको भी अपने ससमरण लिख डालने चाहिए; और किसीके लिए नहीं तो उनके घरवालो तथा बाल-बच्चोंके लिए ही वे मनोरजक तथा शिक्षाप्रद सिद्ध होंगे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें कुछ भीतरी या बाहरी अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं, जो लिपिबद्ध करने योग्य हैं।

१ जनवरी सन् १९५७ के टाइम्स आफ इण्डियामे यही बात श्रीयुत सी. एल. आर. शास्त्रीने अपने एक छोटे-से निबन्धमें लिखी थी। उनका कथन है—

फक्कड़शिरोमणि कविवर बनारसीदासजीने तीन-सौ वर्ष पहले आत्म-चरित लिखकर हिन्दीके वर्तमान और भावी फक्कड़ोंको मानो न्यौता दे दिया है। यद्यपि उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपनेको कीट पतंगोंकी श्रेणीमें रक्खा है ("—हमसे कीट पतंगकी बात चलावै कौन") तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे आत्म-चरित-लेखकोंमें शिरोमणि हैं।

दिल्ली,
२०-८-५७

—बनारसीदास चतुर्वेदी

अर्ध-कथानककी भाषा

[डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, एल० एल० बी०]

अर्ध-कथानकका जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणों और ऐतिहासिक वृत्तान्तके कारण है उतना ही और सभवतः उससे भी अधिक उसकी भाषाक कारण है। सत्रहवीं शताब्दि और उससे पूर्वके हिन्दी साहित्यका भाषा और व्याकरणकी दृष्टिसे अभीतक पूर्णत. वर्गीकरण नहीं किया जा सका है और इसलिए किसी एक नवीन ग्रन्थके विषयमें यह कहना कठिन है कि हिन्दीकी सुज्ञात उपभाषाओंमेंसे उस ग्रन्थकी भाषा कौन-सी है।

बनारसीदासजीने अपने अर्ध-कथानककी भाषाको स्पष्ट रूपसे 'मध्य देशकी बोली' कहा है और प्राचीन सस्कृत-साहित्यमे मध्य देशकी चतुःसीमा इस प्रकार पाई जाती है—उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें प्रयाग और पश्चिममें विनशन अर्थात् पजाबके सरहिन्द जिलेका वह मरुस्थल जहॉ सरस्वती नदीका लोप हुआ है[1]। चीनी यात्री फाहियानने (स० ४५७) मताऊल (मथुरा) से दक्षिणके प्रदेशको मध्यदेश कहा है[2] और अलबेरूनीने (स० १०८७) कन्नौजके चारों ओरके प्रदेशको मध्यदेश माना है[3]। बनारसीदासजीका क्रीड़ा-क्षेत्र प्रायः आगरासे जौनपुर तक यू० पी० का प्रदेश रहा है। अतएव इसे ही उनके द्वारा सूचित मध्यदेश माना जा सकता है।

अर्ध-कथानकके व्याकरणकी रूपरेखा इस प्रकार है—

वर्ण—इसमें देवनागरीके सभी स्वर पाये जाते हैं। विसर्गकी हिन्दीमें आवश्यकता ही नहीं पड़ती। 'ऋ' कहीं कहीं सुरक्षित पाया जाता है जैसे

---

१ मनुस्मृति २, २१। २ फाहियान (दे० पु० मा० पृ० ३०)। ३ अलबेरू-नीका भारत, भा० १, पृ० १९८।

मृषा (३७), नौकृत (२६४) और कहीं कहीं उसकी जगह अन्य स्वरादेश पाया जाता है जैसे दिष्टि (१२९) ।

व्यजनोंमें 'श' के स्थानपर प्रायः सर्वत्र 'स' आदेश पाया जाता है, जैसे पास (पार्श्व), बस (वश), हुसियार (होशियार), कवीसुर (कवीश्वर), आवस्सिक (आवश्यक) (३४७), सुद्ध (शुद्ध) (१७७)। 'ष' अनेक जगह पाया जाता है, जैसे मृषा (३७), पुरुष, दिष्टि (१२९), हरषित (३५७), विषाद (३५८), दुष्ट (४८०), भेष (४८०) आदि । किन्तु कहीं कहीं उसके स्थानपर भी 'स' का आदेश देखा जाता है जैसे बरस (वर्ष) (१८१), विसेस (विशेष) १७९ ।

सस्कृतके सयुक्त वर्णोको स्वरभक्ति या वर्णलोपके द्वारा सरल बनानेकी प्रवृत्ति देखी जाती है, जैसे—जनम (जन्म), पदारथ (पदार्थ), पारस (पार्श्व), परिगह (परिग्रह), वितीत (व्यतीत) ।

सज्ञाओंके कर्त्तावाचक और कर्मवाचक रूपके लिए, कोई विकृति या प्रत्यय नहीं पाया जाता जैसे—

ग्यानी जानै तिसकी कथा (६), बसै नगर रोहतगपुर (८), मूल्दास भी कीनौं काल (२०), मुगल गयौ थौ (२१), आयौ मुगल उतावले (२२), घनमल काल कियौ तिस ठौर (१८) आदि ।

पर जहाँ सकर्मक क्रिया सस्कृतके भूतकालिक कृदन्त परसे बनी है वहाँ कर्त्ता कारकमें 'नै' भी पाया जाता है, जैसे खरगसैनकौं रायनैं दिए परगने च्यारि (५५) ।

करण कारकमें सौं या सू प्रत्यय पाया जाता है । जैसे—सुखसौं बरस दोइ चलि गए (१८), एक पुत्रसौं सब किछु होइ (४३), लेना देना विधिसौं लिखै (४७), निज मातासौं मन्त्र करि (५२), दुहू मिलाइ दामसौं भरी (६८)। सम्प्रदान कारकमें कहीं 'सौं' और कहीं 'कौ' व 'कू' प्रत्यय पाया जाता है । जैसे—मूल्दाससौं बहुत कृपाल (१६), कहै मदन पुत्रीसौं रोइ (४३), पिता पुत्रकौं आई मीच (२०), खरगसैनकौं रायनैं दिए परगने च्यारि (५५), तब चटसाल पढ़नकू गयौ (४६) ।

अपादान कारकमें 'सुं' 'सौं' प्रत्यय पाया जाता है। जैसे, 'तत्रसुं' करै उद्दमकी दौर, तिस दिनसौं वानारसी नित्त सराहै मित्त (४८४)।

सम्बन्ध कारकमें बहुवचनमें 'के', स्त्रीलिंगमें 'की' और एकवचनमें 'का' 'कौ' प्रत्यय पाये जाते हैं। जैसे—बनारसीके, जिनदासके, जेठूके, वृत्तिके, पासकी, तीसिमैकी, उद्दमकी, रामकी, वस्त्रका काम, मुगलकौ, हिमाऊकौ, साहुकौ पत्र (४९५) आदि।

अधिकरण कारकके प्रत्यय 'मैं' और 'माहि' पाये जाते हैं। जैसे—मनमैं, जगतमैं, रोहतगमैं, जौनपुरमैं, गगमाहि, मनमाहि, चीठीमाहि आदि।

सर्वनामोंमें, तिन, (४१), ताकौ (४१), तिसकी (६), तिनके (१२), तिस (२१), जिन (३), जाकौ (१२), मैं (३८४), हम (४४२), मेरे (७), सो (३, ४३), यहु (१७, ३६), ए (२५), तू (४८३), तुमहिं (४२) आदि रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रियाके वर्तमानकालिक उत्तम पुरुषके रूप—

बदौं (१), कहौं (५, ६, ११), माखौं (७)।

वर्तमान अन्य पुरुषके रूप—बनारसी चिंतै मनमाहि (४८७), बहुवचन—दोऊ साझी करहिं इलाज (४८७)।

मध्यम पुरुषके रूप—तू जानहि (४८३)।

भूतकालिक अन्य पुरुषके रूप—कीनौ, भयौ, भए, (४८७), आयौ, बसायौ, कही, दिए, दीनै, पढ्यौ, खरचे, आदि (४८७)।

सहायक क्रिया सहित—बखानी है, पानी है, जानी है, आदि।

भविष्यत् कालके रूप—होइगी (६), मॉगहिगा (४८१), चलहिगा (४८१)।

आज्ञार्थक क्रियाके रूप—'उ' या 'हु' लगाकर बनाये गये हैं। जैसे, 'कथा सुनु' (३८) सोच न करु (४४), सुनहु।

पूर्वकालिक अव्यय सर्वत्र क्रियामें 'इ' लगाकर बनाये गये हैं—सुनि, धरि, मानि, जानि, बखानि, बोलि, निकसि, पढ़ि, रोइ, गाइ, पहिराइ आदि।

अर्ध-कथानककी इन व्याकरणसंबंधी विशेषताओंको सम्मुख रखकर अब हम देखें कि उसकी भाषा ब्रजभाषा कही जाय, या अवधी या कुछ और।

ब्रजभाषाकी विशेषतायें ये हैं[1] —

१ संज्ञा तथा विशेषणोंमें 'ओ' या 'औ' अन्तवाले रूप, जैसे बड़ो, छोटो, कारो, पीरो, घोड़ो।

२ संज्ञाका विकृतरूप बहुवचन 'न' प्रत्ययके रूपान्तर लगाकर बनाना, जैसे, राजन, घोड़न, हाथिन, असवारन आदि।

३ परसर्गोंमें कर्म-सम्प्रदानमें 'कौ', करण—अपादानमें 'सों', 'तें', और संबंधमें 'कौ', 'को'।

४ सर्वनामोंमें उत्तम पुरुष मूलरूप एकवचन 'हौ' विकृतरूप 'यो' सम्प्रदान कारकके वैकल्पिक रूप 'मोहिं' आदि, संबंधके ओकारान्त 'मेरो', 'हमारो' आदि।

५ क्रियाके रूपोंमें 'है' लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनाना, जैसे, चलिहै, तथा सहायक क्रियाके भूत निश्चयार्थके हो, हतौ आदि रूप।

इन लक्षणोंको जब हम अर्ध-कथानकमें ढूंढते हैं तो विशेषणोंमें 'औ' अन्तवाले रूप कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाते हैं—जैसे—

आयौ मुगल उतावलौ, सुनि मूलाकौ काल।
मुहर छाप घर खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२ ॥

तथा कारक-रचनाकी विशेषतायें भी बहुत कुछ मिलती हैं।

किन्तु शेष लक्षण नहीं मिलते, इससे अर्ध-कथानककी भाषाको पूर्णतः ब्रजभाषा नहीं कह सकते।

अवधीके विशेष लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१ संज्ञामें प्रायः तीन रूप, ह्रस्व, दीर्घ तथा तृतीय, जैसे घोड, घोड़वा, घोडउना।

२ विकृतरूप बहुवचनका चिह्न 'न' ब्रजके समान जैसे 'घरन' किन्तु कर्ममें 'का' संबंधमें 'केर' अधिकरणमें 'मा'।

---

१ देखो, ब्रजभाषा व्याकरण, डा० धीरेन्द्र वर्माकृत, अलाहाबाद, १९३७, पृ० १५–१६।

३ सर्वनामके सम्बन्ध कारकके रूप ‘ मोर, तोर ’, हमार ’, ‘ तुमार ’ ।

४ सहायक क्रियाके रूप अहौं, अही, अहे, अह्यो, अहै, अहीं, तथा बाट धातुके रूप बाट्पेउँ, बाटी, और रह धातुके रूप रहेउँ, रहे, आदि ।

५ क्रियार्थक सज्ञाओंके ‘ ब ’ अन्तक रूप जैसे देखब । भविष्यकालके बोधक अधिकाश रूप भी ‘ ब ’ लगाकर बनते हैं । जैसे—देखबू आदि ।

इन लक्षणोंका तो अर्ध-कथानककी भाषामें प्रायः अभाव ही पाया जाता है । अतः उसको हम अवधी नहीं कह सकते ।

यदि हम विशेष बोलियोंकी विशेषताएँ इस ग्रथकी भाषामें ढूँढें तो हमें उनका भी अभाव दृष्टिगोचर होता है । न यहाँ राजस्थानीकी मूर्द्धन्य ध्वनियोंका प्राधान्य है, ‘ न ’ के स्थानपर ‘ ण ’ भी नहीं है, न बुन्देलीका ‘ ड़ ’ के स्थानपर ‘ र ’ और मध्य व्यजन ‘ ह ’ का लोप पाया जाता है ।

अर्ध-कथानकमें उर्दू-फारसीके शब्द काफी तादादमें आये हैं, और अनेक मुहावरे तो आधुनिक खड़ी बोलीके ही कहे जा सकते हैं । इसपरसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बनारसीदासजीने अर्धकथानककी भाषामें व्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगल-कालमें बढ़ते हुए प्रभाववाली खडी बोलीकी पुट दी है, और इसे ही उन्होने ‘ मध्यदेशकी बोली ’ कहा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेशमें काफी प्रचलित हो चुकी थी । इस प्रकार अर्ध-कथानक भाषाकी दृष्टिसे खडी बोलीके आदिम कालका एक अच्छा उदाहरण है ।

— १ जून १९४३

(द्वितीय संस्करणकी विशेषता)

बड़े हर्षकी बात है कि अर्ध-कथानकके प्रथम सस्करणका साहित्यिक ससारमें खूब सत्कार हुआ । उसकी प्रतियाँ शीघ्र ही दुर्लभ हो गईं और लोग पुनः प्रकाशनकी माँग करने लगे । इसके फलस्वरूप अब विद्वान् सम्पादकने न केवल इस सस्करणद्वारा इस ग्रथकी माँगको ही पूरा किया है, किन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रथकी जो कुछ उपलभ्य सामग्रीका प्रथम सस्करणमें उपयोग नहीं किया जा सका था उसका भी पूर्ण परिशीलन कर ग्रन्थको और भी परिशुद्ध

और परिपूर्ण बना दिया है। इसके लिए प्रेमीजीका पुनः अभिनन्दन करने योग्य है।

अर्ध-कथानकके प्रथम सस्करण परसे मैंने उस ग्रन्थकी भाषाकी जो रूपरेखा प्रस्तुत की थी वह इस सस्करणके लिए भी घटित होती है। केवल एक दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। वहाँ जो मैंने दोहा ११५ में 'पस्चिम' शब्दका उदाहरण देकर 'श' के निर्विकार प्रयोगके सबधमें यह कहा था कि 'यह विचारणीय है कि यह कहाँ तक मूलका पाठ है और कहाँ तक लिपिकारकृत विकार' उस शंकाका इस सस्करणद्वारा निराकरण हो गया। नवीन पाठके अनुसार उस दोहेमें 'पश्चिम' रूप तो केवल 'ई' और 'स' इन दो प्रतियोंमें ही पाया गया है। शेष 'अ' 'ड' और 'ब' नामक आदर्श प्रतियोंमें उसके स्थानपर 'पच्छिम' पाठ पाया गया है और उसे ही अब विद्वान् सम्पादकने अपने मूल पाठमें ग्रहण किया है। यही रूप दोहा ३५ में भी आया है और वहाँ भी एक प्रति 'अ' के 'पश्चिम' रूपका पाठान्तर अकित किया गया है। यद्यपि अब भी श्रीमाल, पार्श्व, श्रावक, शिव जैसे कुछ शब्दोंमें 'श' का प्रयोग देखा जाता है, तथापि उन शब्दोंके सिरीमाल, पास आदि जो रूपान्तर भी पाये जाते हैं उनसे प्रतीत होता है कि उक्त शब्दोंमें 'श' की स्थिति ग्रथकी भाषाकी आधारभूत बोलीका अग नहीं है। वह पश्चात्कालीन सस्कृतीकरणके प्रभावकी ही द्योतक है। यही बात इस भाषामें 'ष' की स्थितिके विषयमें भी कही जा सकती है। मृषा, दोष, पुरुष, दिष्टि, भूषन, सिष्य, आउषा, कुष्ठ, अष्ट, मृषा हरषित, मानुष, भाषा जैसे शब्दोंमें जो ष दिखाई देता है वह सस्कृतका ही प्रभाव है, बोलीका मूल अग नहीं। यथार्थतः ग्रन्थकी भाषाकी आधारभूत बोलीमें केवल सकारका प्रयोग होता था ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा। यह प्रवृत्ति उक्त बोलीको शौरसेनी प्राकृतकी परम्परामें विकसित हुई प्रमाणित करती है।

करण कारकमें 'सौ' के साथ 'सूं' प्रत्ययके प्रयोगका भी जो निर्देश पूर्व सस्करणमें किया गया था वहाँ अब उस अपवादका निराकरण होता दिखाई देता है, क्योंकि दोहा ५२ और ६५ में क्रमशः 'मातासू' और 'दामसू' के स्थानपर अब उपलभ्य आदर्श प्रतियोंके आधारसे 'मातासौं' और 'दामसौं' पाठ स्वीकार किये गये हैं।

फ़ारसीके जिन शब्दोंका इस रचनामें प्रयोग हुआ है उनमेंसे कुछ ग्रन्थकारकी बोलीमें ढलकर इस प्रकार आये हैं :—सराइ, परगने, सरहद, फारकती, खजाना, हुकुम, फुरमान, मुसकिल, पेसकसी, गरीब, आसिखबाज, सौदा, मुल्क, सरियति, खबरि, तहकीक़, बकसीस, चाबुक, रफीक, नखासे, इजार, रेजपरेजी, बुगचा, जहमति, वेहया, बकबाद, फरजद, यार, तहकीक, मसक्कति, खरीद, मजूर, चाचा, हुसियार, खुसहाल, रोजनामै, सिताब, नफर, गैरसाल, नजरि गुजारौ, कोतवाल, हाकिम, दीवान, अहमक, वादा, स्याबास, माफ, गुनाह, उमराउ, मुकाम, साहिजादे, सुखुन, पैजार, खोसरा, आदि। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन शब्दोंका प्रयोग प्रायः वहीं विशेषरूपसे किया गया है जहाँ मुगल राज-काजसबधी चर्चाका प्रसग आया है। इससे स्पष्ट होता है कि इन विदेशी शब्दोंका प्रयोग पहले मुगल अफसरोंके मुखसे हुआ और वह धीरे धीरे जन भाषामें उसकी अपनी उच्चारण-विधिके अनुसार उतरने लगा।

कविने रचनाके प्रारभमें ही कहा है कि उनके पितामह मूलदास 'मध्यदेस' में स्थित रोहतगपुरके निवासी थे और वहीं उन्होंने हिंदुगी और पारसी पढी थी तथा वे मुगलके मोदी होकर मालवा आये थे। इस प्रकार यह मध्यदेशकी भाषा उस समय 'हिन्दुगी' या हिन्दी कहलाने लगी थी, यह ध्यान देने योग्य है। स्वय अपने भाषाज्ञानके सबधमें बनारसीदासजीने कहा है —

पढ़ै ससकृत प्राकृत सुद्ध।
विविध देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥ (६४८)

इससे प्रतीत होता है कि उस समय भी सस्कृत और प्राकृत प्राचीन भाषाओंके अतिरिक्त प्रचलित नाना देश-भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना सुशिक्षाका आवश्यक अग समझा जाता था।

प्राकृत-जैन-विद्यापीठ
मुजफ्फरपुर, बिहार,
ता० ७-४-५७

हीरालाल जैन

भूमिका

अर्घ-कथानक

कविवर बनारसीदासजीने अपनी इस निजकथा या आत्म-कथामें अपने जीवनके ५५ वर्षोंका घटनाबहुल इतिहास लिखा है। मनुष्यकी उत्कृष्ट आयुमर्यादा ११० वर्षकी बतलाकर उसकी आधी कथा इसमें दी है, इसलिए उन्होंने इसका सार्थक नाम अर्ध-कथानक रखा है और अगहन सुदी पञ्चमी, सोमवार, संवत् १६९८ को यह समाप्त की गई है। इसके आगेकी कथा वे नहीं लिख सके। क्योंकि कुछ ही समय बाद १७०० के अन्तमें उनका शरीरान्त हो गया।

हिन्दी साहित्यमें यह अनोखी रचना है। इस देशकी अन्य भाषाओंमें भी इतनी पुरानी कोई आत्म कथा नहीं है। अभी तक तो सर्वसाधारणका यही खयाल है कि यह चीज हमारे यहाँ विदेशोंसे आई है और वहींकी आत्म-कथाओंके अनुकरणपर यहाँ आत्मकथाएँ लिखनेका प्रारम्भ हुआ है। परन्तु अबसे तीनसौ वर्ष पहले यहाँके एक हिन्दी कविने भी आत्म-कथा लिखी थी, इस बातपर इसे देखे बिना कोई सहसा विश्वास नहीं कर सकता[1]। यद्यपि इस समय जिस ढंगकी आत्म-कथाएँ लिखी जाती हैं, उनमें और अर्ध-कथानकमें बहुत अन्तर है, फिर भी इसमें आत्म-कथाओंके प्रायः सभी गुण मौजूद हैं और भारतीय साहित्यमें यह गर्व करनेकी चीज है। इसमें कविने अपने गुणोंके साथ साथ दोषोंको भी बड़ी स्पष्टतासे प्रकट किया है और सर्वत्र ही सचाईसे काम लिया है। 'अर्ध-कथानक' गद्यमें नहीं, पद्यमें लिखा गया है और उसकी भाषाको कविने मध्य देसकी बोली कहा है—

१—कहते हैं कि बादशाह बाबरने फारसीमें जो आत्मचरित (बाबरनामा) लिखा है, वह एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें बाबरका विस्तृत और मार्मिक निरीक्षण, उसकी खिलाड़ी और विनोदी वृत्ति, जीवनके विविध रोमहर्षक प्रसंग, उसकी रसिकता, मनुष्यपरीक्षा, आदतें आदिका मनोज्ञ वर्णन है।—देखिए, अक्टूबर १९४७ के नवभारत (मराठी) में प्रा० दत्तो वामन पोतदारका 'अर्ध-कथानक' नामक लेख।

मध्यदेसकी बोली बोलि,
गरभित बात कहौं हिय खोलि ।

'बोली' का मतलब उस समयकी बोलचालकी भाषा है, साहित्यिक भाषा नहीं। बनारसीदास उच्च श्रेणीके कवि थे, उनकी अन्य रचनाएँ प्रायः साहित्यिक भाषामें ही हैं, परन्तु उन्होंने इस आत्म-कथाको बिना आडम्बरकी सीधी सादी भाषामें लिखा है जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। यद्यपि इस रचनामें भी उनकी स्वाभाविक कवित्वशक्तिका परिचय मिलता है, परन्तु वह अनायास ही प्रकट हो गई है, उसके लिए प्रयत्न नहीं किया गया। इस रचनासे हमें इस बातका आभास मिलता है कि उस समय बोलचालकी भाषा किस ढगकी थी और जिसे आजकल खड़ी बोली कहा जाता है उसका प्रारंभिक रूप क्या था।

डॉ० माताप्रसाद गुप्तने लिखा है कि "यद्यपि मध्य देशकी सीमाएँ बदलती रही हैं पर प्रायः सदैव ही खडी बोली और ब्रजभाषी प्रान्तोंको मध्यदेशके अन्तर्गत माना जाता रहा है, और प्रकट है कि अर्ध-कथाकी भाषामें ब्रजभाषाके साथ खड़ी बोलीका किंचित् सम्मिश्रण है, इसलिए लेखकका भाषाविषयक कथन सर्वथा सगत जान पड़ता है। यहीं तक नहीं, कदाचित् इसमें हमें उस जनभाषाका प्रयोग मिलता है, जो उस समय- आगरेमें व्यवहृत होती थी। आगरा दिल्लीके साथ ही उस समय मुगल शासकोंकी राजधानी थी, इसलिए उस स्थानकी बोलीमें इस प्रकारका समिश्रण स्वाभाविक था। उस समयकी साहित्यकी भाषाओंके नमूने भरे पड़े हैं किन्तु सामान्य व्यवहारकी भाषाओंके नमूने कम मिलगे। केवल कविताकी दृष्टिसे भी अर्ध-कथाका स्थान ऊँचा है। साहित्यिक परम्पराओंसे मुक्त, प्रयासरहित शैलीमें घटनाओंके सजीव और यथातथ्य वर्णनका जहाँ तक सम्बन्ध है, इतनी सुन्दर रचना हमारे प्राचीन हिन्दी साहित्यमें कम मिलेगी[१]।"

पाठक इसे थोड़े ही परिश्रमसे पढकर समझ जायँगे, इसलिए इसका अर्थ अलगसे नहीं दिया गया परन्तु शब्दकोश, स्थान-परिचय, व्यक्तिपरिचय अदि परिशिष्टोंमें देकर इसे हर तरहसे सुगम कर दिया गया है, इससे पढनेमें आनन्द तो मिलेगा ही, साथ ही सोचने समझनेकी भी बहुत-सी सामग्री मिलेगी।

१—प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषत् द्वारा प्रकाशित 'अर्द्ध-कथा' की भूमिका पृ० १४-१५।

पूर्व पुरुष

बनारसीदास एक सम्पन्न और सम्मान्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके पितामह मूलदास हिन्दुगी और फारसीके ज्ञाता थे और सं० १६०८ में नरवर (ग्वालियर) के किसी मुगल उमरावके मोदी बनकर गये थे। उनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खरगसेनने कुछ समय तक बंगालके सुलतान सुलेमान पठानके राज्यमें चार परगनोंकी पोतदारी की थी। उसके बाद वे जवाहरातका व्यापार करने लगे और इलाहाबादमें कुछ समय तक शाहजादा दानियाल (दानिसाह) की सरकारमें जवाहरातका लेन-देन करते रहे थे। इसी तरह उनके रिश्तेदार और मित्र भी धनी-मानी थे।

उन्होंने अपनी जाति श्रीमाल और गोत बिहोलिया लिखा है और लोगोंसे सुनसुनाकर बतलाया है कि रोहतकके निकट बीहोली² गाँवमें राजवंशी राजपूत रहते थे, वे गुरुके उपदेशसे अघभूत कर्म छोड़कर जैनी हो गये और (नमोकार) मन्त्रकी माला पहिनकर उन्होंने श्रीमाल कुल और बीहोलिया गोत पाया।

१—अकबरके तीन बेटों—सलीम, मुराद और दानियाल—में यह तीसरा था। इसे सात हजारी मनसब दिया गया था। रहीम खानखानाका यह दामाद था। संवत् १६५६ के लगभग यह इलाहाबादमें था। बीजापुरके सुल्तानकी लड़कीके साथ भी १६६१ में इसकी शादी हुई थी।

२—इस गाँवके बारेमें मैंने रोहतकके वकील बाबू उग्रसेनजीसे पूछताछ की, तो उन्होंने लिखा कि "बीहोली गाँव अब करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर जमुनाके किनारे है और रोहतकसे लगभग ३५ कोसके फासिलेपर होगा।" बाबू जयभगवानजी वकीलने बड़े परिश्रमसे खोज बीन की और लिखा कि 'बीहोली पानीपत तहसीलका एक गाँव है, जो पानीपतसे उत्तरकी ओर १० मीलपर है। वह जाटोंकी बस्ती है। इस गाँवका पुराना इतिहास जाननेके लिए सन् १८८०के बन्दोबस्तके समय तैयार की गई 'कैफियत दही' देखी। उससे मालूम हुआ कि अबसे २० पीढ़ी पहले—सन् १४४० के लगभग दो जाटोंने उस समयके हाकिमसे इजाजत लेकर इस गाँवको फिरसे आबाद किया था। उस समय वह ऊजड़

अर्ध कथानकसे मालूम होता है कि उस समय जयपुरसे लेकर आगरा, फतेहपुर, अलीगढ, मेरठ, दिल्ली, इलाहाबाद, खैराबाद, (अवध), पटना, और बगाल तक श्रीमाल, ओसवाल, अग्रवाल व्यापारी फैले हुए थे और उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। नवाबों, सूबेदारों और हाकिमोंसे उनका विशेष सम्बन्ध रहता था। ऐसा जान पड़ता है कि वे अधिकाशमे शिक्षित भी होते थे, और नवाबों, हाकिमोंकी भाषा भी जानते थे। दादा मूलदास हिन्दुगी फारसी पढ़े थे, खरगसेन पोतदारीका काम कर सकते थे, बनारसीदास विविधदेशभाषा-प्रतिबुद्ध थे।[1]

सामाजिक स्थिति

डा० ताराचन्दने अर्ध-कथानककी आलोचना (विश्ववाणी, फरवरी १९४४) करते हुए लिखा है - "बनारसीदास अकबर, जहाँगीर, और शाहजहाँके समकालीन थे। बादशाहोंके लिए उनके दिलमें भक्ति थी। अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर वे बेहोश होकर सीढीपरसे गिर पड़े और ल्हूलुहान हो गये। जहाँगीर और शाहजहाँका आदरके साथ नाम लिया है। मुगल सूबेदारोंकी बाबत लोगोंमें पहलेसे शोहरत होती थी कि उनका बरतावा कैसा है। अगर कोई हाकिम कड़ा मशहूर होता था तो मालदार साहूकारोंमें खलबली मच जाती थी। लेकिन ऐसे हाकिम कम होते थे। हाकिमों और साहूकारोंमें अच्छे सम्बन्ध होते थे। बनारसीदास चीनं किलीचखाँको[2] नाममाला श्रुतबोध वगैरह ग्रन्थ पढाते थे।"

पड़ा हुआ खेड़ा था। ऐसी दशामें वर्तमान बीहोली गाँव अर्ध-कथानकमें बतलाया हुआ बीहोली नहीं हो सकता जो रोहतकके निकट था। सभव है, उनके समयका बीहोली गाँव अब रहा ही न हो या अब उसका और नाम हो।"

१-प्रा० पोतदार लिखते हैं, "तत्कालीन शिक्षा-प्रसारके विषयमें इससे यह निश्चित अनुमान किया जा सकता है कि सब नहीं तो कमसे कम व्यापारी वर्गके बहुत-से लोग हिन्दी और फारसी उस समय पढ़ते थे और लिखने पढनेमें निष्णात होते थे।"

२—इसके पिता नवाब कुलीचखाँने जौहरियोंपर बड़ा जुल्म किया था। यह इन्दूजान (तूरान देश) का रहनेवाला जानी कुरबानी जातिका तुर्क था।

"शासनके बारेमें जान पड़ता है कि अमन अमान काफी था। बनारसी-दासने पंजाबमें रोहतकसे लेकर बिहारमें पटना तक कई सफ़र किये। एक दफा रास्ता भूलकर चोरोंके गाँवमें खतरेमें पड़े, पर ब्राह्मण बनकर छूट गये। दूसरी दफा इनके साथियोंका एक जगह गाँववालोंसे झगडा हो गया। उनकी शिकायत-पर दीवानी और फौजी अफसरोंने तहकीकात की और इसका भी नतीजा यह हुआ कि मुकदमा आसानीसे झूठा साबित हुआ और इन्हें कोई तकलीफ नहीं उठानी पड़ी। मालूम होता है कि उस समय व्यापारी कीमती सामान लिए हुए इधरसे उधर तक आते जाते थे। हुंडी परचे खूब चलते थे।

"समाज खुशहाल मालूम होती है। भूखों और मंगते फकीरोंका कहीं जिक्र नहीं। लोग एक दूसरेकी मदद करते थे। बनारसीदासको आगरेके हल्वाईने छह महिने तक मुफ्त (उधार) कचौरियाँ खिलाईं। पचपन सालोंमें एक दफा अकाल पड़ा। जहाँगीरके समयमें ताऊन फैला। इसके अलावा कोई बड़ी मुसीबत नहीं आई। राजनीतिकी ऐसी घटनाओं जैसी सलीमकी बगावतका जरूर यह असर होता था कि जौहरी लोग शहरसे इधर उधर भाग जाते थे। लोग जत्थे बनाकर यात्राओंको जाते। बनारसीदासने कहीं किसी तरहकी रोक-थामका जिक्र नहीं किया।

"स्त्रियोंकी बहुत कद्र नहीं थी। पुरुष-स्त्रीका प्रेम और बराबरीका नाता नहीं था। बनारसीदासकी स्त्रीका देहान्त होता है, एक ही नाई मरनेकी खबरके साथ दूसरी लड़कीकी सगाई लाता है। वे अपनी व्याहताके होते हुए इधर उधर आशिकी करते फिरते हैं। लेकिन पत्नी अपना धर्म समझती है कि पतिकी सेवा करे और गाढे समयमे अपना सारा धन उसको सौंप दे।

"लोगोंमें धर्मकी बहुत चर्चा थी। जीवनका यही ध्येय था कि मनमें शान्ति, समता, स्नेह उजागर हो। इसीके साथ अन्धविश्वास और जादू टोना भी खूब चलता था।

"अर्ध-कथानकके पढनेसे हिन्दुस्तानके मध्यकालके इतिहासके समझनेमे मदद मिलती है और समाज और राजकी अच्छाई बुराईका पता लगता है।"

वहम और अन्धविश्वास

वहमों और अन्धविश्वासोंकी उस समय भी कमी नहीं थी, सर्वसाधारणके समान जैन समाज भी उससे मुक्त नहीं था और न दूसरोंसे किसी तरह अलग ही था। रोहतककी कोई सतीदेवी उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थी। दूरदूरके लोग मानताके लिए जाते थे। बनारसीके पिता खरगसेन अपनी पत्नीसहित दो बार उसकी यात्राके लिए गये और एक बार तो रास्तेमें लुट भी गये, तो भी उनकी माताको सोलह आने विश्वास रहा कि बनारसीदासका जन्म उक्त सतीके ही प्रसादसे हुआ है। उधर बनारसमें पार्श्वनाथके यक्षने पुजारीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा था कि इस बालकका नाम पार्श्वजन्मस्थान (बनारसी) के नामपर रख देनेसे फिर इसके लिए कोई चिन्ता न रहेगी और यह चिरजीवी होगा और तदनुसार माता-पिताने इनका नाम बनारसीदास रख दिया।

अपनी पूर्वावस्थामें स्वय बनारसीदास भी इस तरहके वहमोंके शिकार हुए थे। जैन होते हुए भी एक जोगीके कहनेसे एक साल तक सदाशिवके शखकी पूजा करते रहे और सन्यासीके दिये हुए मन्त्रका जाप उन्होंने इस आशासे लगातार एक साल तक पाखानेमें बैठकर किया कि जाप पूरा होनेपर हररोज दरवाजेपर एक दीनार पडा हुआ मिला करेगा! आगरेसे अपने दो मित्रोंके साथ पूजा करनेके लिए वे कोल (अलीगढ) गये और प्रतिमाके आगे खड़े होकर बोले, 'हे नाथ हमको लक्ष्मी दो, यदि लक्ष्मी दोगे, तो हम फिर तुम्हारी जात्रा करेंगे।" अर्थात् जिनदेव भी प्रसन्न होकर लक्ष्मी देते थे!

विद्या-शिक्षा और प्रतिभा

बनारसीदास जब आठ बरसके हुए तब चटशालामें जाने लगे और पाडे गुरुसे विद्या सीखने लगे। इस विद्यामें अक्षरज्ञान और लेखा (गणित) मुख्य जान पड़ता है। एक वर्षमें ही व्युत्पन्न हो गये। उनके पिता खरगसेन भी इसी उम्रमें चटशालामे पढने गये। उस समय शिक्षाकी क्या व्यवस्था थी, इसका तो ठीक पता नहीं, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक नगरमें चटशाला या छात्रशाला रहा करती थी और उसमें पॉडे गुरु जीवनोपयोगी लिखने पढने और लेखे-जोखेकी शिक्षा दिया करते थे। व्यापारियोंके लड़के इस शिक्षणसे इतने व्युत्पन्न हो जाते थे कि अपना कारबार भली भॉति सॅभाल लेते थे।

खरगसेन इस शिक्षासे सोने चाँदीकी परख करने लगे, बही-खाते विधिपूर्वक लिखने लगे और हाटमें बैठकर सराफी सीखने लगे। बनारसीदास भी इसी तरह व्युत्पन्न होकर नौ बरसकी अवस्थामे ही कमाई करनेमें लग गये। इसके आगे भी जो विशेष शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे उनके लिए भी प्रबन्ध था। बनारसीदास जब १४ वर्षके हुए, तब उन्होंने प देवदत्तके पास नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष, कोक, और चार सौ श्लोक पढे। इसके बाद जब जौनपुरमें भानुचन्द्र यति आये, तब उनसे उपासरेमे पचसधि, स्फुट श्लोक, छन्दकोश, श्रुतबोध, स्नात्रविधि, प्रतिक्रमण आदि मुखाग्र किये।

इस तरह आजकलकी दृष्टिसे उन्होंने पढा लिखा तो कुछ अधिक नहीं परन्तु अपनी स्वाभाविक प्रतिभाके कारण आगे चलकर वे अच्छे विचारक और सुकवि हो गये। कवित्व शक्ति तो उनमें जन्मजात थी। तभी न १४ वर्षकी अवस्थामे एक हजार पद्योंके एक नवरसयुक्त काव्यकी रचना कर डाली।

इश्कबाजी

जिस तरह बनारसीदासमे कवित्वशक्तिका विकास समयसे बहुत पहले हो गया उसी तरह उनका यौवन भी जल्दी ही विकसित हुआ। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही वे इश्कमें पड गये और उसमें इतने मशगूल हो गये कि न किसीकी परवा की और न लोक-लाजका कोई खयाल किया। अपनी ससुराल खैराबादमें जाकर वे जिस रोगसे आक्रान्त हुए उसके विवरणसे स्पष्ट मालूम होता है कि वह गर्मी या उपदंश था और उसीका यह परिणाम हुआ कि उनके एकके बाद एक नौ बच्चे हुए परन्तु उनमेंसे एक भी नहीं बचा, सब थोडे थोडे दिन ही रहकर कालके गालमें चले गये और दो स्त्रियाँ प्रसूति-कालमे ही मर गईं। बनारसीदासके एक साथी घरमदास थे जिनके विषयमे लिखा है कि वे कुपूत थे, कुसगतिमें रहते थे, कुव्यसनी थे, धन बरबाद करते थे और नशा करते थे।

इससे मालूम होत है कि उस समय शहरोंके तरुण कितने व्यसनाधीन थे और उनके गुरुजनोंका उनपर कितना कम अकुश था। जैन गुरुके पास धर्मशिक्षा लेते हुए भी वे व्यसनसे मुक्त न हो सके। चौदह वर्षकी अवस्थामें

उन्होंने कोकशास्त्र पढा था, कहा नहीं जा सकता कि इसका उनके चरित्रपर क्या प्रभाव पड़ा होगा। नवरसरचनामें तो जरूर ही उसने सहायता दी होगी।

जनेऊकी कथा

एक बार बनारसीदास अपने मित्र और उसके ससुरके साथ पटना जा रहे थे कि एक चोरोंके गॉवमें जा पहुँचे। चोर ब्राह्मणोंको नहीं सताते थे और जनेऊ ब्राह्मणत्वका चिह्न है। इस लिए इन तीनोंने उस समय सूतसे जनेऊ बॅटकर पहिन लिये, मस्तकपर तिलक लगा लिया और श्लोक पढकर उन्हें आशीर्वाद दिया। फल यह हुआ कि चोरोंके चौधरीने इन्हे ब्राह्मण समझकर आरामसे अपनी चौपालपर ठहराया और दूसरे दिन आदरपूर्वक बिदा कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उस समय जैन श्रावक जनेऊ नहीं पहिनते थे और ब्राह्मण चोरोंके लिए भी पूज्य थे।

साहूकारोंका वैभव

उस समय बहुत बड़े बड़े साहूकार और प्रभावशाली धनी थे। अर्धकथानकमें अनेक व्यापारियोंकी चर्चा आई है। उनमेंसे आगरेके नेमासाहुके पुत्र सबलसिंघ मोठियाका वर्णन विशेषरूपसे दिलचस्प है। उनके यहाँ बनारसीदासका साझेका हिसाब पड़ा था। साहूका पत्र जौनपुर पहुँचा कि तुम्हारे बिना हिसाब नहीं हो सकता, तुम आगरे आकर उसे साफ कर जाओ। इसपर वे रास्तेकी अनेक मुसीबतें झेलकर आगरे आये और हिसाबके लिए साहुजीके घर जाने आने लगे, पर वहॉ लेखा-कागज कौन पूछता था? देखा कि साहुजी वैभवमें मदमत्त हैं, कलावतोंकी पंक्ति गा बजा रही है, मृदंग बज रहे हैं, शाहजादेकी तरह महफिल जमी हुई है, निरन्तर दान दिया जा रहा है, कवि और बन्दीजन कवित्त पढ़ रहे हैं, उस साहबीका वर्णन कौन कर सकता है? देखकर सब चकित हो जाते थे। बनारसीदास सोचते थे—हे भगवन्, यह लेखा किसके पास आ बना है। सेवा करते करते हाजिरी देते देते महीनों बीत गये। जब भी लेखेकी बात की जाती, साहुजी कहते, कल सवेरे हो जायगा। उनकी घड़ी एक

१—अ० क० ४१७-४२६।

महीनेकी, रात छह महीनेकी और दिन कितनेका होगा, सो राम ही जानते हैं। जहाँ विलासी जीव विषयमग्न है, वहाँ सूर्यका उदय-अस्त कहाँ होता है!

इस तरह बहुत दिन बीत जानेपर जब सबलसिंहके बहनेऊ अगनदास एक दिन रास्तेमे मिल गये, तब इन्होंने अपना यह दुख उनको सुनाया और उन्होंने उसी दिन साहुके यहाँ जाकर सब कागज मँगाकर हिसाब साफ कर दिया और फारखती लिखा दी। बनारसीदासजीने वैभवशाली आगरा नगरके उस समयके एक विलासी साहूकारका यह वर्णन आँखों देखा ही नहीं, स्वय अनुभव किया हुआ लिखा है। ऐसे ही एक बड़े भारी धनी हीरानन्द मुकीम थे जो जहाँगीरके कृपापात्र थे, जिन्होंने स० १६६१ मे प्रयागसे सम्मेदशिखरके लिए बड़ा भारी सघ निकाला था और १६६७ में आगरेमें बादशाहको अपने घर बुलाकर लाखोंका नजराना दिया था।

धन्नाराय नामके एक धनी बगालके पठान सुल्तानके दीवान थे जिनके हाथके नीचे पाँच सौ श्रीमाल वैश्य पोतदारीका या खजानेकी वसूलीका काम करते थे। इन्होंने भी सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए सघ निकाला था।

शासनमें धार्मिक पीड़न नहीं

अर्ध-कथानकमें हुमायूँसे लेकर शाहजहाँ तक मुगलों और कई पठान राज्योंकी चर्चा आई है, परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता कि केवल धर्मके कारण दूसरे धर्मकी प्रजाको सताया जाता हो। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, जहाँगीरने हीरानन्द मुकीमको और पठान सुल्तानने धन्नारायको यात्रासघ निकालनेमे सहायता दी थी और इन सबके समयमें सैकड़ों जैन मन्दिरोंकी प्रतिष्ठाएँ हुई थीं जो उस समयके शिलालेखो और प्रतिमालेखोंसे स्पष्ट हैं। बनारसीदासने नाटक समयसारमें लिखा है कि शाहजहाँके समयमें इस ग्रन्थकी चैनसे रचना की, कोई ईति भीति नहीं व्यापी और यह उनका उपकार है[1]। इस तरह उस समयके और भी अनेक कवियोंने इन मुसलमान बादशाहोंके प्रति सद्भाव प्रकट किये हैं। किसी किसी नवाब और अधिकारीके द्वारा यदाकदा अन्याय होता था परन्तु

१— जाके राज सुचैन सौं, कीन्हों आगम सार।
ईति भीति व्यापी नहीं, यह उनको उपगार॥

वह केवल धनके लिए होता था जैसे कि नवाब कुलीचखाँने और आगानूरने जौनपुरके जौहरियोंपर किया था[1] और नरवरमें खरगसेनके पिताका घर-बार जप्त कर लिया था। पर ऐसी घटनाएँ तो राज्योंमें अक्सर होती रहती हैं। बादशाह अकबरने श्वेताम्बराचार्य हीरविजयका सत्कार किया था और उनके शिष्य भानुचन्द्रको अपना 'सूर्यसहस्रनामाध्यापक' बनाया था, अर्थात् उस समयके शासक केवल भिन्नधर्मी होनेके कारण प्रजापर अत्याचार नहीं करते थे और हिन्दुओंको बड़े बड़े ओहदे भी देते थे।

अकबरकी मृत्युकी खबर सुनकर बनारसीदासको मूर्च्छा आ गई थी, यह उसके शासनकी लोकप्रियताका बड़ा भारी प्रमाण है।

गुण और दोष

अपनी आत्मकथाके ६४७ से ६५९ तकके १३ पद्योंमें बनारसीदासने अपने वर्तमान गुणों और दोषोंका एक तटस्थ व्यक्तिकी तरह बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है और यह उनके सच्चे अध्यातमी होनेका प्रमाण है। वे जैसे हैं वैसे ही अपनेको प्रकट करना चाहते हैं, कुछ भी छुपानेका प्रयत्न नहीं करते। यदि उन्हें ख्याति लाभ पूजाकी चाह होती, तो वे बहुत सहजमें पुज जाते और उस समयकी हजारों, लाखों, भेड़ोंको अपने बाड़ेमें घेर लेते। न उन्होंने स्वयं अपनी महत्ताके गीत गाये और न अपने गुणी मित्रोंसे गवानेका प्रयत्न किया। त्यागी व्रती बननेका भी कोई ढोंग नहीं किया। आगरेमें वे एक साधारण गृहस्थकी तरह अपनी पत्नीके साथ अन्त तक आनन्दसे रहे—'विद्यमान पुर आगरे सुखसौं रहै सजोष।'

गुणोंके वर्णनमें भी उन्होंने किसी तरहकी अतिशयोक्ति नहीं की है—भाषा, कविता और अध्यात्ममें उनकी जोड़का कोई दूसरा नहीं, क्षमावान् और सन्तोषी। कविता पढनेकी कलामें उत्तम, विविध देशभाषाओंके (गुजराती, पंजाबी, ब्रज, बिहारी) में प्रतिबुद्ध, शब्द और अर्थका मर्म समझनेवाले, दुनियाकी चिन्ता

१—जौनपुरके सूबेदार नवाब कुलीचखाँके प्रजापीड़नकी शिकायत जब बादशाहके पास पहुँची, तो उसे वापस बुला लिया गया और यदि वह रास्तेमें न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता।

न करनेवाले, मिष्टभाषी, सबपर स्नेह रखनेवाले, जैन धर्मपर दृढ विश्वास रखनेवाले, सहनशील, कुवचन न कहनेवाले, सुस्थिर चित्त, डावॉडोल नहीं, सबको हितकारी उपदेश देनेवाले, सुष्ट हृदय, जरा भी दुष्टता नहीं, पराई स्त्रीके त्यागी, और कोई कुव्यसन नहीं, और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाले।

दोष बतलाते हुए लिखा है—क्रोध, मान और माया ये तीन कषाएँ तो जलरेखाके समान हैं, परन्तु लक्ष्मीका मोह (लोभ) अधिक है। घरसे जुदा नहीं होना चाहते। जप, तप सयमकी रीति नहीं, दान और पूजा-पाठमें कोई रुचि नहीं, थोड़े से लाभमें बहुत हर्ष और थोड़ी-सी हानिमें बहुत चिन्ता। मुँहसे भद्दी बात निकालते लज्जित नहीं होते, शर्त लगाकर भॉडोंकी कला सीखते हैं, जो नहीं कहने योग्य है, उसकी कथा कहते हैं, एकान्त पाकर नाचने लगते हैं, नहीं देखी और नहीं सुनी हुई कथाएँ गढ़कर सभामें कहते हैं, हास्यरसको पाकर मगन हो जाते है और झूठी बातें कहे बिना जी नहीं मानता, अकस्मात् ही बहुत डर जाते हैं।

ऊपर जो दोष और गुण कहे हैं, उनमेंसे कभी कोई और कभी कोई, जिसका उदय होता है, वह प्रकट हो जाता है। और उन गुण-दोषोंकी जो अगणित सूक्ष्म दशाएँ हैं, उनको तो भगवान् ही जानते हैं।

उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य

बनारसीदासने इन दोष-गुणोंके कथनको लेकर तीन प्रकारके मनुष्य बतलाये हैं—

१ उत्तम—जो दूसरोंके दोष छुपाकर उनके गुणोंको विशेष रूपसे कहते हैं और अपने गुणोंको छोड़कर दोष ही बतलाते हैं।

२ मध्यम—जो परायोंके दोष-गुण दोनों कहते हैं और अपने गुण-दोष भी बतलाते हैं।

३ अधम—जो सदा पराये दोष कहते हैं, उनके गुणोंको छुपा जाते हैं परन्तु अपने दोषोंको लोप करके गुणोंको ही कहते हैं।

इन तीन प्रकारके मनुष्योंमेंसे उन्होंने अपनेको मध्यम प्रकारका बतलाया है और बहुत ठीक बतलाया है—

जे भाखहिं-पर-दोष-गुन, अरु गुन दोष सुकीउ।
कहहिं, सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ॥ ६६८

अन्तमें कहा है कि इस बनारसी-चरित्रको सुनकर दुष्ट जीव तो हँसेंगे, परन्तु जो मित्र हैं वे इसे कहेंगे और सुनेंगे।

बनारसीदासजीका मत

बनारसीदासजीका जन्म श्रीमाल जातिमें हुआ था और यह जाति श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अनुगामिनी है। उनके अधिकांश सगी-साथी और रिश्तेदार भी श्वेताम्बर थे। उनके गुरु भानुचन्द्रजी खरतरगच्छके जती थे। स्नात्रविधि, सामायिक, पडिकोना (प्रतिक्रमण), अस्तोन (स्तवन) आदि श्वेताम्बर क्रियाकाडके पाठोंको उन्होंने पढ़ा था और पोसाल या उपासरेमें वे नित्य प्रति जाया करते थे। बनारसीविलासकी कुछ रचनाओंमें भी श्वेताम्बरत्वकी झलक है[2]।

आगरेके प्रसिद्ध चिन्तामणि पार्श्वनाथ और खैराबादके खैराबाद-मंडन अजितनाथके उन्होंने स्तवन बनाये थे—और ये बतलाते हैं कि वे श्वेताम्बर श्रावक थे।

जब वे अपनी ससुराल खराबादमें तीसरी बार (स० १६८०) गये तब वहाँ उन्हें अरथमलजी ढोर नामके एक सज्जन मिले जो अध्यात्मकी

१—अर्धकथानक पद्य ५८६–८८ और ५९२–९३।

२—अ० क० के पद्य ५८३ में शान्ति-कुंथु-अरनाथका वर्णन श्वेताम्बर स० के अनुसार है। दि० स० के अनुसार अरनाथकी माताका नाम मित्रा और लांछन मत्स्य होना चाहिए। उन्होंने सोमप्रभकी सूक्तमुक्तावलीका पद्यानुवाद अपने मित्र कँवरपालके साथ मिलकर किया है, जो श्वेताम्बर ग्रन्थ है। बनारसीविलासके राग आसावरी (पृ० २३६) में प्रसन्नचन्द्र ऋषिका उल्लेख भी श्वे० स० के अनुसार है। दिगम्बर कथा-कोशोंमें या अन्य कथा-ग्रन्थोंमें प्रसन्नचन्द्रकी कथा नहीं है।

३—बनारसीविलास पृ० २४६। ४—ब० वि० पृ० १९३–९४। खरतर-गच्छके क्षान्तिरंग गणिने स० १६२६ में खैराबाद-पार्श्वजिन-स्तुतिकी रचना की थी।

बातें जोरके साथ करते थे। उन्होंने समयसार-कलशोंकी पं० राजमल्लकृत बालबोध-टीका लिखकर दी और कहा कि—इसे पढ़िए, इससे सत्य क्या है, सो समझमें आ जायगा। तदनुसार पढ़ने लगे और उसके अर्थपर प्रतिदिन विचार करने लगे। पर उससे अध्यात्मकी असली गाँठ नहीं खुल सकी और वे बाह्य क्रियाओंको 'हेच' समझने लगे। 'करनी' या क्रिया—बाह्य आचार—में तो कोई रस रहा नहीं और आत्मस्वाद या आत्मानुभव हुआ नहीं, इस तरह वे न धरतीके रहे और न आसमानके[1]। उन्होंने जप-तप सामायिक प्रतिक्रमण आदि छोड़ दिये और हरी त्याग आदिकी जो प्रतिज्ञाएँ की थीं वे भी तोड़ दीं। बिना आचारके बुद्धि बिगड़ गई। देवको चढ़ाया हुआ नैवेद्य तक खाने लगे। उन्हें अपने तीन साथियों—चन्द्रभान, उदयकरन और थानमल्लके साथ 'जूतफाग' खेलनेमें, एक दूसरेकी सिरकी पगड़ी छीनने और धींगामस्ती करनेमें आनन्द आने लगा। चारों जने यह खेल खेलते थे और फिर अध्यात्मकी बातें करते थे। चारों नगे हो जाते थे और कोठरीमें घूमते हुए कहते थे—हम मुनिराज हो गये हैं, हमारे पास कोई परिग्रह नहीं रहा है। लोग समझाते थे, पर किसीकी बात नहीं सुनी जाती थी[2]। तब श्रावक और जती (श्वे० साधु) बनारसीदासको खोसरामती कहने लगे[3]। चूँकि वे पंडितरूपसे विख्यात थे इसलिए उन्हींकी निन्दा अधिक होती थी, दूसरोंकी नहीं। कुछ समयमें यह धूमधाम तो मिट गई पर कुछ और ही अवस्था हो गई। जिन-प्रतिमाकी मनमें निन्दा करने लगे और मुँहसे वह कहने लगे जो नहीं कहना चाहिए। गुरुके सम्मुख जाकर व्रत ले लेते थे और फिर आकर छोड़ देते थे। रात-दिनका विचार न करके पशुकी तरह खाते थे और एकान्त मिथ्यात्वमें मत्त रहते थे[4]।

१—करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद ॥ ५९५

२—अर्ध-क० ५९५–६०६।

३—कहैं लोग श्रावक अरु जती। बानारसी खोसरामती ॥ ६०८

४—६११–१२।

बनारसीदासकी यह अवस्था स० १६९२ तक रही और तब तक वे नियत-रस-पान करते रहे, अर्थात् केवल निश्चय नयको पकड़े हुए जीवन विताते रहे।

इसके बाद स० १६९२ के लगभग पांडे रूपचन्द नामके एक गुनी कहीं बाहरसे आगरे आये और तिहुना साहुने जो देहरा (मन्दिर) बनवाया था, उसमें आकर ठहरे। उनके पाण्डित्यकी प्रशसा सुनकर सब अध्यात्मी जाकर मिले और उनसे गोम्मटसार ग्रन्थ पढवाया। उसमें गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रिया (चारित्र) का विचार किया गया है। जो जीव जिस गुणस्थानमें होता है, उसीके अनुसार उसका चारित्र होता है। उन्होंने भीतरी निश्चय और बाहरी व्यवहारका भिन्न भिन्न विवरण दिया, सब बातोंको सब प्रकारसे समझा दिया और तब फिर अपने साथियोंके साथ बनारसीदासजीको भी कोई सशय नहीं रह गया। वे अब स्याद्वादपरिणतिमें परिणत होकर दूसरे ही हो गये।—"तब बनारसी औरै भयौ, स्यादवादपरनति परनयौ।"

यद्यपि पाण्डे रूपचन्दजी दिगम्बर सम्प्रदायके थे और गोम्मटसार भी उसी सम्प्रदायका ग्रन्थ है जिसके श्रवणसे वे निश्चय व्यवहारको ठीक ठीक समझे, फिर भी उनका और उनके साथी अध्यात्मियोंको दिगम्बर नहीं कहा जा सकता।

बनारसीदासजीने अर्ध-कथानकमें अपने सारे जीवनकी घटनाओंका ब्योरेवार इतिहास दिया है, पर उसमें उन्होंने कहीं भी अपने सम्प्रदायका उल्लेख नहीं किया और न कहीं यही लिखा है कि कभी अपना सम्प्रदाय बदला। उन्होंने आपको और अपने साथियोंको अध्यातमी[1] ही लिखा है, साथ ही जैनधर्मकी दृढ प्रतीति[2] और हृदयमें शुद्ध सम्यक्त्वकी टेक रखनेवाला कहा है[3]।

उस समय आगरेमें अध्यात्मियोंकी एक सैली या गोष्ठी थी जिसमे अध्यात्मकी चर्चा होती थी। इन अध्यात्मियोंकी प्रेरणासे ही उन्होंने नाटक समयसारको छन्दोबद्ध किया था। उसके अन्तमें लिखा है कि समयसार नाटकका मर्म समझनेवाले जिनधर्मी[4] पांडे राजमलजीने उसकी बालबोध टीका बनाकर सुगम कर

१—बानारसी बिहोलिआ अध्यातमी रसाल।—६७१

२—जैन धरमकी दिढ परतीति। ३—हृदय सुद्ध समकितकी टेक।

४—पाडे राजमल्ल जिनधरमी, समैसार नाटकके मरमी।
तिन गिरथकी टीका कीनी, बालबोध सुगम कर दीनी॥ २३॥

दिया। इस तरह बोध-वचनिका सर्वत्र फैल गई, घर घर नाटककी बातका बखान होने लगा और समय पाकर अध्यात्मियोंकी सैली बन गई। आगरा नगरमें कारण पाकर अनेक ज्ञाता हो गये जिनमें प० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास मुख्य थे। रात दिन परमार्थ या अध्यात्मकी चर्चा करनेके सिवाय इनके और कोई कथा नहीं थी[१]।

बनारसीविलासका संग्रह करनेवाले सघी जगजीवनने भी आगरेकी अध्यात्म-सैलीका उल्लेख किया है[२]। प० हीरानन्दने भी समवसरण विधानमें उस समयकी ग्यानमण्डलीका जिक्र किया है जिसमें प० हेमराज रामचन्द्र, मथुरादास, भगवतीदास और भवालदासके नाम हैं[३]।

पं० द्यानतरायने (वि० स० १७५० के लगभग) आगरेकी मानसिंह जौहरीकी और दिल्लीकी सुखानन्दकी सैलीका उल्लेख किया है[४]। मुल्तानमें रची गई वर्धमान-वचनिकाके कर्त्ताने भी सुखानन्दकी सैलीकी चर्चा की है[५]।

१—इहि विधि बोध वचनिका फैली, समै पाइ अध्यातम सैली।
प्रगटी जगमाही जिनबानी, घर घर नाटक-कथा बखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरेमाहि विख्याता, कारन पाइ भए बहु ग्याता।
पच पुरुष अति-निपुन प्रवीने, निसिदिन ग्यानकथारस भीने ॥ २५ ॥
रूपचद पडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम।
तृतिय भगौतीदास नर, कौंरपाल सुखधाम ॥ २६ ॥
धरमदास ए पच जन, मिलि बैठें इकठौर।
परमारथचरचा करैं, इनके कथा न और ॥ २७ ॥
इहि विधि ग्यान प्रगट भयौ, नगर आगरेमाहि।
देसदेसमें बिस्तरयौ, मृषादेसमैं नाहि ॥ २८ ॥

२–समैजोग पाइ जगजीवन बिख्यात भयौ,
ग्यातनिकी मडलीमैं जिहिकौ बिकास है।—ब० वि० पृ०–२५२

३–देखो, परिशिष्ट, 'जगजीवन और भगौतीदास'।

४–आगरेमैं मानसिंह जौहरीकी सैली हुती,
दिल्लीमाहि अब सुखानंदजीकी सैली है। —धर्मविलास

५–अध्यातम सैली मन लाइ, सुखानन्द सुखदाइजी। —वर्धमान वचनिका

नारनोलनिवासी प० खड्गसेनने अपने त्रिलोकदर्पण (वि० स० १७१३) में लाभपुर या लाहौरके ज्ञाताओका उल्लेख किया है[1] जिनमें प० हीरानन्द, और सघवी जगजीवनके सिवाय रतनपाल, अनूपराय, दामोदरदास, माधवदास विसनदास, हसराज, प्रतापमल्ल, तिलोकचन्द, नारायणदास आदिके भी नाम दिये हैं—'ए सब ग्याता अति गुनवत, जिनगुन सुनैं महा विकसत।" और 'याहि लाभपुरनगरमैं, श्रावक परम सुजान। सब मिलकर चरचा करैं, जाको जो उनमान।' सो यह भी अध्यातम-सैली ही जान पड़ती है।

जयपुरमें भी सैलियाँ रही हैं, परन्तु उनका नाम पीछे तेरहपथ सैली हो गया था। प० जयचन्दजी छावड़ा (स० १८६४) ने उसका उल्लेख किया है।[2]

ऐसा जान पड़ता है कि यह अध्यात्ममत और अध्यातमी बनारसी-दासजीके पहले भी थे। स० १६५५ में जब बनारसीदासजी अपने पिताकी आज्ञासे फतेहपुर गये, तब जिन भगवतीदास ओसवालके घरपर ठहरे, उनके पिता बासूसाह अध्यातमी थे—'बासूसाह अध्यातमी जान।' और इसी तरह स० १६८० में जब वे खैराबाद गये तब वहाँ अरथमल ढोर मिले जो अध्यात्मकी बातें जोर-शोरसे करते थे और उन्हींने समयसारकी राजमल्लकृत बालबोध-टीका इन्हें दी। शायद इस टीकाके प्रभावसे ही वे अध्यातमी हो गये[3]।

डा० वासुदेवशरण अग्रवालने लिखा है[4]—"बीकानेर-जैन लेख सग्रहमें अध्यातमी सम्प्रदायका उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। वह आगरेके ज्ञानियोंकी मडली थी जिसे 'सैली' कहते थे। अध्यातमी बनारसीदास इसीके प्रमुख सदस्य

१—महावीर-ग्रन्थमालाका प्रशस्तिसग्रह पृ० २१६–१७

२—तामैं तेरहपंथ सुपथ, सैली बड़ी गुनीगन ग्रथ।

३ तब तह मिले अरथमल ढोर, करैं अध्यातम बातें जोर।
तिन बनारसीसौं हित कियौ, समैसार नाटक लिखि दियौ॥ ५९२

४—'मध्यकालीन नगरोंका सास्कृतिक अध्ययन'-जैन-सन्देश, जून १९५७।

थे। ज्ञात होता है कि अकबरकी 'दीने इलाही' प्रवृत्ति इसी प्रकारकी आध्यात्मिक खोजका परिणाम थी। बनारसमें भी अध्यात्मियोंकी एक सैली या मडली थी। किसी समय राजा टोडरमल्लके पुत्र गोवर्धनदास इसके मुखिया थे।"

सो बनारसीदासजी ऐसी ही अध्यातम सैलीके प्रमुख सदस्य थे और जैन थे,—श्वेताम्बर या दिगम्बर नहीं। वे परमतसहिष्णु और विचारोंमें उदार थे। बनारसीविलासमें संग्रहीत उनके कुछ दोहे देखिए—

तिलक तोप माला विरति, मति मुद्रा श्रुति छाप।
इन लच्छनसौं वैसनव, समुझै हरि-परताप ॥ १
जो हर घटमैं हरि लखै, हरि बाना हरि बोइ।
हर छिन हरि सुमरन करै, बिमल वैसनव सोइ ॥ २
जो मन मूसै आपनो, साहिबके रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गहि टिकै, मुसल्मान है सोइ ॥ ३
एक रूप हिन्दू तुरक, दूजी दसा न कोइ।
मनकी दुविधा मानकर, भए एकसौं दोइ ॥ ४

१—'दीने इलाही' बादशाह अकबरका प्रचलित किया हुआ नया धर्म था जिसमें मतसहिष्णुता और उदारताको प्रश्रय दिया गया था। "फतेहपूर सीकरीके इबादतखानेमें हर सातवें रोज भिन्न भिन्न धर्मोंके पण्डित इकट्ठे किये जाते थे। मुसल्मान मौल्वी, हिन्दू पण्डित, ईसाई पादरी, बौद्ध भिक्षु और पारसी गुरु अपने अपने पक्षका समर्थन करते थे। बादशाहकी ओरसे अबुल फजल मन्त्रीका कार्य करता था। वह बहसके लिए सवाल सामने रखता था और मौका पाकर ऐसे शोशे छोड देता था कि भिन्न भिन्न धर्मोंके अनुयायी अपना पक्षसमर्थन छोड़कर परस्पर गाली गलौजपर उतर आते थे। अकबर मजहबी गुरुओंकी मूर्खताओंका तमाशा देखता था। भिन्न भिन्न धर्मोंके वाद-विवादमेंसे उसने यह सार निकाला कि हरेक धर्ममें सचाईका अंश विद्यमान है, हर एक धर्ममें सचाईको रूढि ढोंग और कल्पनाओंके खोलमें ढकनेका प्रयत्न किया है। ऑखोंवाला आदमी उन ढकनोंके अन्दर छुपी हुई सचाईको सब जगह देख सकता है, परन्तु नासमझ लोग सचाईको छोड रूढि-ढोंग और कल्पनाके जालमें ही उलझ जाते हैं। हिन्दूधर्म, जैनधर्म और ईसाइयतके धार्मिक विचारोंमेंसे उसने बहुत-सी कामकी बातें चुन लीं। वेदान्तके उपदेश उसे बहुत भाते थे।" —मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण, पृ० २४-२५।

दोऊ भूले भरममैं, करैं बचनकी टेक ।
'राम राम' हिंदू कहैं, तुर्क 'सलामालेक' ॥ ५
इनके 'पुस्तक' बाचिए, वेहू पढैं 'कितेब' ।
एक बस्तुके नाम दो, जैसे 'सोभा' 'जेब' ॥ ६
तिनकौं दुबिधा, जे लखैं रग बिरगी चाम ।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अतर राम ॥ ७
यहै गुपत यह है प्रगट, यह बाहर यह माहि ।
जब लगि यह कछु ह्वै रह्या, तब लगि यह कछु नाहिं ॥ ८
ब्रह्मग्यान आकासमैं, उड़ति, सुमति खग होइ ।
जथासकति उद्यम करहिं, पार न पावहि कोई ॥ ९
जो महत ह्वै ग्यान बिन, फिरै फुलाए गाल ।
आप मत्त औरनि करै, सो कलिमाहि कलाल ॥ १०

अन्य सतोंके समान ही उन्होंने लिखा है—

जो घरत्याग कहावै जोगी, घरवासीको कहै जो भोगी ।
अतरभाव न परखै जोई, गोरख बोलै मूरख सोई ॥
पढि ग्रथहिं जो ग्यान बखानै, पवन साधि परमारथ मानै ।
परम तत्तके होंहि न मरमी, कह गोरख सो महा अधरमी ॥
बिन परचै जो बस्तु बिचारै, ध्यान अगनि बिन तन परजारै ।
ग्यान मगन बिन रहे अबोला, कह गोरख सो बाला भोला ॥

इससे उनके सम्प्रदायको श्वेताम्बर-दिगम्बर कहनेकी अपेक्षा अध्यातमी कहना ही ठीक है, जैसा कि उन्होंने स्वय कहा है ।

अध्यात्म-मतका विरोध

उनके इस मतका विरोध सबसे पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंने किया । क्योंकि इस मतका प्रचार पहले श्वे० श्रावकोंमें ही हुआ था । आगे हम उनका और उनके विरोधका परिचय दे रहे हैं—

१—यशोविजयजी उपाध्याय—यशोविजयजीका संस्कृत, प्राकृत और गुजरातीमें विपुल साहित्य उपलब्ध है । बनारस और आगरामें अधिक समय

तक रहनेसे हिन्दीमें भी उन्होंने कुछ ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी अध्यात्ममतपरीक्षा, अध्यात्ममतखण्डन और दिक्पट चौरासी बोल नामकी तीन रचनाएँ अध्यात्ममतके विरोधमें ही लिखी गई हैं। पहले ग्रन्थमें स्वोपज्ञ सस्कृतटीकासहित १८४ प्राकृत गाथाएँ हैं, दूसरा ग्रन्थ केवल १८ सस्कृत श्लोकोंका है और उसकी भी स्वोपज्ञ सस्कृतटीका है।

पहले ग्रन्थमें जैनसाधु उपकरण नहीं रखते, वस्त्र धारण नहीं करते, केवली आहार नहीं लेते, उन्हें नीहार नहीं होता, स्त्रियोंको मोक्ष नहीं, आदि दिगम्बर-मान्य सिद्धान्तोंका खडन किया गया है। अध्यात्मके नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ये चार भेद करके उन्होंने इस मतको 'नाम अध्यात्म' सज्ञा दी है और एक जगह कहा है कि जो उन्मार्गकी प्ररूपणा करके बाह्य क्रियाकाडका लोप करता है वह बोधि (दर्शन-ज्ञान-चरित्र) के बीजका नाश करता है[3]।

दूसरे ग्रन्थमें मुख्यतः केवलीके कवलाहारका प्रतिपादन है और अन्तमें लिखा है कि मिथ्यात्व मोहनीय कर्मके उदयके कारण जो विपरीत प्ररूपणा करते हैं, ऐसे दिगम्बरों और उनके अनुयायी आध्यात्मिकोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिएँ। इस तरह साम्प्रतकालमें उत्पन्न आध्यात्मिक मतके नष्ट करनेमें दक्ष यह ग्रन्थ रचा गया[5]।

१—आत्मानन्द जैन सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।

२—जैनधर्मप्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।

३—लुपइ वज्झ किरिय जो खलु अज्झप्पभावकहणे ण।
सो हणइ बोहिबीज, उम्मग्गपरूवण काउ॥ ४२

४—मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयवशाद्विपरीतप्ररूपणाप्रवणा दिगम्बराः तन्मतानुयायिनस्चाध्यात्मिका दूरतः परिहरणीया इत्यस्माक हितोपदेश इति॥ १६

५—एव साम्प्रतमुद्भवदाध्यात्मिकमतनिर्दलनदक्षम्।
रचितमिद स्थलममल विकचयतु सता हृदयकमलम्॥ १७

तीसरी ‘ दिक्पट चौरासी बोल ’ छन्दोबद्ध हिन्दी[2] रचना है। इसमें सब मिलाकर १६१ पद्य हैं। यह पंडित हेमराजके ‘ सितपट चौरासी बोल ’ नामक पद्य-रचनाके उत्तरमें[4] लिखा गया है। इसमें भी नाम अध्यातमी दिगम्बरोंके मतभेदोंका बडी ही कठोरभाषामें खंडन किया गया है[5]।

यद्यपि इन तीनों ही ग्रन्थोंमें बनारसीदासका उल्लेख नहीं है सर्वत्र ‘ अध्यातमी ’ ही कहा गया है, तथापि लक्ष्य उनके वे ही हैं। वे जो ‘ साम्प्रतिक अध्यात्ममत ’ कहते हैं, सो भी यह बतलाता है कि बनारसीदासके सम्प्रदायसे ही उनका मतलब है और यह भी कि उससे पहले भी अध्यात्ममत था।

यशोविजयजी उपाध्यायके उक्त तीनों ही ग्रन्थोंमें उनका रचना-काल नहीं दिया गया है, परन्तु श्रीकान्तिविजयजी गणिने जो कि उनके समकालीन थे अपनी ‘ सुजसवेलि भास[6] ’ नामक पुस्तकमें लिखा है कि यशोविजयजीने सं० १६९९ में अहमदाबाद (राजनगर) में जब अष्टावधान किये, तब उनकी योग्यता देख कर एक धनी गृहस्थने उनके विद्याभ्यासके लिए धन देना स्वीकार किया और

१—देखो, यशोविजय उपाध्यायरचित गुर्जरसाहित्यसंग्रह प्रथमभाग, पृ० ५७२–९७ और श्रीभीमसी माणिकद्वारा प्रकाशित प्रकरणरत्नाकर भाग १, पृ० ५६६–७४।

२—हिन्दी होनेपर भी इसमें गुजरातीपन बहुत है। गुजराती शब्द भी बहुत हैं।

३—यह अभी प्रकाशित नहीं हुआ।

४—हेमराज पांडे किए, बोल चुरासी फेर।
या बिध हम भाषावचन, ताको मत किय जेर॥ १५९

५—‘ जस ’ वचन रुचिर गभीर नय, दिक्पट-कपट-कुठार सम।
जिनवर्धमान सो बंदिए, विमलज्योति पूरन परम॥ १
भसमक ग्रह रज भसममय, तातैं वेसररूप।
उठे नाम अध्यातमी, भरमजाल अघकूप॥ ११

६—प्रकाशक, ज्योति कार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद।

वे बनारस गये। वहाँ उन्होंने तीन वर्ष तक विविध दर्शनोंका अभ्यास किया और फिर उसके बाद आगरे आकर एक न्यायाचार्यके पास सं० १७०३-४ से १७०७-८ तक कर्कश तर्कग्रन्थ पढ़े और उसके बाद अहमदाबादकी ओर विहार किया। जान पड़ता है, तभी १७०८ के लगभग उन्हें आगरेमे अध्यात्म-मतका परिचय हुआ होगा और तभी उक्त ग्रन्थ लिखे गये होंगे। पाण्डे हेमराजने 'सितपट चौरासी बोल' सं० १७०७ में लिखा है।

२-मेघविजयजी महोपाध्याय—यशोविजयजीके बाद मेघविजयजीने अध्यात्म मतके विरोधमें 'युक्तिप्रबोध'[1] नामका ग्रन्थ लिखा है जिसमें २५ प्राकृत गाथाएँ हैं और उनपर ४५०० श्लोक प्रमाण स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है। मूल गाथाएँ और टीकाका कुछ अंश हम परिशिष्टमें दे रहे हैं। लिखा है कि आगरेमें 'आध्यात्मिक' कहलानेवाले 'वाराणसीय' मती लोगोंके द्वारा कुछ भव्य जनोंको विमोहित देखकर उनके भ्रमको दूर करनेके लिए यह लिखा गया।

ये वाराणसीय लोग श्वेताम्बरमतानुसार स्त्रीमोक्ष, केवलिकवलाहारादिपर श्रद्धा नहीं रखते और दिगम्बर मतके अनुसार पिच्छिका कमण्डलु आदिका भी अंगीकार नहीं करते, तब इनमें सम्यक्त्व कैसे माना जाय?

आगरेमें बनारसीदास खरतरगच्छके श्रावक थे[3] और श्रीमालकुलमें उत्पन्न हुए थे। पहले उनमें धर्मरुचि थी। सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध, तप, उपधानादि करते थे, जिनपूजन, प्रभावना, साधर्मीवात्सल्य, साधुवन्दना, भोजन-दानमें आदरबुद्धि रखते थे, आवश्यकादि पढ़ते थे, और मुनि श्रावकोंके आचारको जानते थे। कालान्तरमें उन्हें पं० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल, और धर्मदास ये पाँच पुरुष मिले और शंका विचिकित्सासे कलुषित होनेसे तथा उनके संसर्गसे वे सब व्यवहार छोड़ बैठे। उन्हें श्वेताम्बर मतपर अश्रद्धा हो गई। कहने लगे कि यह परस्परविरुद्ध मत ठीक नहीं है, दिगम्बर मत ही सम्यक् है। वे लोगोंसे कहने लगे कि इस व्यवहार-जालमें फँसकर क्यों व्यर्थ ही अपनी विडम्बना कर रहे हो? मोक्षके लिए तो केवल आत्मचिन्तनरूप

१—ऋषभदेव-केसरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम द्वारा प्रकाशित।

निश्चय सम्यक्त्व ही उपयोगी है, उसीका आचरण करो, सर्वधर्मसार उपशमका आश्रय लो और इन लोकप्रत्यायिका क्रियाओंको छोड दो। अनेक आगम-युक्तियोंसे समझानेपर भी वे अपने पूर्वमतमें स्थिर नहीं हो सके बल्कि श्वेताम्बरमान्य दश आश्चर्यादिको भी अपनी बुद्धिसे दूषित कहने लगे।

प्रायः अध्यात्मशास्त्रोंमें ज्ञानकी ही प्रधानता है और दान-शील-तपादि क्रियाएँ गौण हैं, इसलिए निरन्तर अध्यात्मशास्त्रोंके श्रवणसे उन्हें दिगम्बरमतमे विश्वास हो गया। वे उसीको प्रमाण मानने लगे। प्राचीन दिगम्बर श्रावक अपने गुरु मुनियों (भट्टारकों) पर श्रद्धा रखते हैं, परन्तु इनकी उनपर भी अश्रद्धा हो गई। पिच्छिका-कमण्डलु आदि परिग्रह हैं, इसलिए मुनियोंको ये न रखने चाहिए। आदिपुराण आदि भी किंचित् प्रमाण हैं।

अपने मतकी वृद्धिके लिए उन्होंने भाषा कवितामें नाटक समयसार और बनारसीविलासकी रचना की।

विक्रम स० १६८० मे बनारसीदासका यह मत उत्पन्न हुआ। बनारसीदासके कालगत होनेपर कुँअरपालने इस मतको धारण किया और तब वह गुरुके समान माना जाने लगा[1]।

इस ग्रंथका अधिकाश उन सब बातोंके खडनसे भरा हुआ है जो दि० श्वे० में एक-सी नहीं मिलतीं, परस्पर भिन्न हैं।

इस ग्रन्थमें भी रचना-काल नहीं दिया गया है, परन्तु जान पड़ता है कि यह यशोविजयजीके ग्रन्थोंके चालीस पचास वर्ष बादका है और सभवतः उन्हींकी अध्यात्ममतपरीक्षाके अनुकरणपर लिखा गया है।

मेघविजयजीने हेमचन्द्रके शब्दानुशासनकी चन्द्रप्रभा-टीका वि० स० १६५७ में आगरेमे ही रहकर लिखी थी, अतएव लगभग उसी समय उन्हें अध्यात्ममतकी जानकारी हुई होगी और तभी युक्तिप्रबोध लिखा गया होगा।

इसमें प० रूपचन्द आदि साथियोंके सम्बन्धकी बातें तो नाटक समयसार को देखकर लिखी गई हैं और शेष सब लोगोंसे सुनसुनाकर लिखी हैं जिनमेंसे

१—कुँवरपाल बनारसीदासके मित्र थे। वे उनकी मृत्युके बाद गुरु बन गये या गुरुके समान माने जाने लगे, इसका कोई प्रमाण नहीं। वे कोई महन्त नहीं थे, जो उनके उतराधिकारी कँवरपाल होते।

बहुत-सी गलत हैं। स० १६८० में बनारसीमतकी उत्पत्ति बतलाना भी ठीक नहीं है। इस सवत्में तो उन्हें समयसारकी बालबोधटीका मिली थी जिससे आगे चलकर उनके विचारोंमे परिवर्तन हुआ। अध्यात्म मत या बनारसी मतका जो स्वरूप बतलाया है, वह भी ठीक नहीं जान पड़ता। कमसे कम जिस समय मेघविजयजीका ग्रन्थ लिखा गया, उस समय वाराणसीदास एकान्त निश्चयावलम्बी नहीं थे। उससे पहले १६८० से १६९२ तक अवश्य ही वैसे रहे होंगे। अर्ध-कथानकके अनुसार तो पाडे रूपचन्दजीके उपदेशसे १६९२ मे ही बनारसीदासजी ठीक मार्गपर आ गये थे। पर 'अर्ध कथानक' शायद मेघवियजीकी नजरसे गुजरा ही नहीं।

३-धर्मवर्द्धन महोपाध्याय—खरतरगच्छके महोपाध्याय धर्मवर्द्धनने भी अध्यात्म मतके विरोधमें 'अध्यैातममतीयारो सवैयो' लिखा है जिसे श्री अगरचन्दजी नाहटाने अपने सग्रहमेंसे ढूँढ कर भेजनेकी कृपा की है। पहले सवैयामें कहा है कि अनादिकालके रूढ आगमोंको तो इन अध्यात्मियोंने उठा दिया और ये अबके बने हुए बालबोधोंको (भाषा-टीकाओंको) ठीक मानते हैं। जोगी और भक्तोंके पास तो ये दूरसे ही दौड़े जाते हैं, परन्तु जैन जती इन्हें देखे भी नहीं सुहाते। क्रिया दान आदि छोड़ दिये हैं, और इन्हें ऐसा पक्षपात हो गया है कि किसीका रत्तीभर भी

१—आगम अनादिके उथापि डारे आपै रूढ,
अबके बनाए बालबोध मानै समती।
जोगी जिदे भक्तनिपै दूरहुते दौरे जात,
देखत सुहात नाहि एक जैनके जती॥
ऐसो उदै क्रोध मान दूर किए क्रिया दान,
ऐसे पच्छपाती गुन काहूकौ न ल्यैं रती।
बाबन ही अच्छरकू पूरेसे पिछाने नाहि,
कैसकैं पिछानै कहौ आतम अध्यातमी॥
(मुल्तानरे अध्यातमीये प्रश्न पूछायारो उत्तर सवैया १ काव्य १ दूहो १, नवा करीने मूक्या दुरुस्त बात जाणीनै खुसी थया) अर्थात् मुल्तानके अध्यात्मियोंने प्रश्न पुछाये थे, उनका उत्तर।

गुण नहीं लेते। जो अध्यातमी बावन अक्षरोंको ही अच्छी तरह नहीं पहिचानते, भला वे आत्माको कैसे पहिचानेंगे ?

आगेके सवैयामें मुल्तानके अध्यातमियोंने जो प्रश्न पूछे थे उनका उत्तर दिया है कि तुमने जो प्रश्न लिखे हैं उनके भेदभाव समझ लिये। वे तुम्हारे लिए उलझे हुए नहीं हैं, तुम्हें अपने पक्षके कारण सूझे हैं। तुम परमात्मप्रकाश, द्रव्यसंग्रहादिको मानते हो, अन्य ग्रन्थोंको प्रमाण नहीं मानते, और अपने पक्षको खींचते हो। इसलिए अन्य आगमोंके उत्तर तुम्हारे चित्तपर नहीं चढ़ते, लिखकर कितने हेतु और युक्तियाँ दी जायँ ? दूरसे भ्रम हो जाता है, कोई सैली नहीं कहता। बात तो तब बन सकती है, जब प्रत्यक्ष ज्ञानदृष्टि हो[1]।

आगे एक संस्कृत श्लोक (काव्य) है और एक दोहा[3]। श्लोकके अन्तिम दो चरण अशुद्ध हैं और दोहेका भी तीसरा चरण। पर कोई विशेष बात नहीं कही है।

१—तुम्ह जे लिखे हैं प्रश्न ताके भेद भाव बूझे,
तुमहीसौं नाहि गूझे सूझे हैं सुपच्छसौं।
मानो परमातमाप्रकास द्रव्यसंग्रहादि
और न प्रमाणो ग्रंथ ताणो आप पच्छसौं॥
तातैं और आगमके उत्तर न आवैं चित्त,
लिखिकै बतावैं केते हेतु जुक्ति लच्छसौं।
दूर हु तैं भ्रम होइ सैली नाहि कहै कोइ,
बात तौ बनै जो ग्यानदृष्टि है प्रतच्छसौं॥

२—युष्माभिर्लिखिता विचित्ररचनाप्रश्नाः परीक्षार्थिभिः
केचिच्छास्त्रभवाः सुबोधविभवाः केचित्प्रहेलीमयाः।
ते वो नो मिलना हते नहि कृते भ्रातो हते वः क्षमा—
स्ते प्रत्युत्तरजाल मगनमतो मीनोऽधुना नीयते॥

३—तजै नाहिं विवहारकूं भजै नाहि पछपात।
वचूल (?) धरैं दुख ना हटै, सो भ्रम सूझ कहात॥

महोपाध्याय धर्मवर्द्धनके अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं और एक दो तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। उनकी गुजराती रचनाएँ ही अधिक हैं। ग्रन्थरचनाकाल सं० १७१९ से १७५७ तक है। इसी समयके बीच उक्त सवैया लिखे गये होंगे। मुल्तानमें अध्यात्मी श्रावकोंका अच्छा समूह था जो कि पहले खरतर गच्छका अनुयायी था, अतएव स्वाभाविक है कि उन्होंने धर्मवर्धनजीसे प्रश्न पूछकर पत्रद्वारा समाधान चाहा होगा। पर उन्होंने उत्तरमें कटाक्ष ही किये हैं कि तुम आगमोंकी परवाह नहीं करते, कुछ समझते बूझते नहीं, परमात्मप्रकाश, द्रव्यसंग्रह आदिको प्रमाण मानते हो[1]।

अध्यात्ममतके समालोचक ये तीनों ही ग्रन्थकार बनारसीदासजीके स्वर्गवासके बादके—अठारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके—हैं और तीनों श्वेताम्बर हैं।

ज्ञानसारजी

खरतरगच्छीय रत्नराजगणिके शिष्य ज्ञानसारजी १९ वीं शताब्दिके हैं। उनके अनेक ग्रन्थ—राजस्थानी और हिन्दीके – श्री अगरचन्दजी नाहटाके संग्रहमें हैं। उनमेंसे 'आत्मप्रबोध-छत्तीसी' में—जो वि० सं० १८६५ के लगभग रची गई है, अध्यात्ममत और नाटक समयसारको लक्ष्य करके कुछ कटाक्ष किये गये हैं। अथ अध्यात्ममत कथन—

जो[2] जिय ग्यानरसै भरयौ, ताकै बंध नवीन।
हौंहि नही, ऐसौ कहै, सौ दुबुद्धि मतिछीन॥ ६
सोऊँ कहि विवहारमै, लीन भयौ ज्यौ जीव।

१—श्री अगरचन्द नाहटाके भेजे हुए पहले गुटकेमें भी जो कुँअरपालके हाथका लिखा हुआ है, परमात्मप्रकाश और द्रव्यसंग्रह भाषाटीका सहित लिखे हुए हैं। इससे भी मालूम होता है कि इन ग्रन्थोंका अध्यात्मियोंमें विशेष प्रचार था। उक्त गुटकेमें योगसार, नयचक्र आदि भी हैं।

२—यह नाटक समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके कहा है—

ग्यानी ग्यानमगन रहै, रागादिक मल खोइ।
चित उदास करनी करै, करमबंध नहिं होइ॥ ३६—निर्जराद्वार

३—'सोऊ' शब्दपर टिप्पण है—'समैसारमती कहै।'

तार्को मुक्ति न होहिगी, सही दुबुद्धी जीव ॥ ७

आतमप्रबोध छत्तीसीके अन्तमे गुजरातीमे यह टिप्पण दिया है—

" हू बाहिर बगीची उपाश्रय छोडिनै आय वैठो, जद श्रावगी कालौ जाते[२] ऋषभदासै मनै कह्यु, ये सिद्धात वाचौ तौ दोय घडी हू भी आवू, जद मैं कह्यौ, हू तौ उत्तराध्ययन सूत्र वाचू छू, तद तिणे कह्यु समैसारजी सिद्धात वाचौ। जद मैं कह्यु समैसार जिनमतनौ चोर छै तिवारे कह्यु—हे! समसारमें चोरी छै तो मनैं दिखावौ। तिवारैं आस्रवसवरद्वारैं 'आसवा ते परीसवा परीसवा ते आसवा' ए सिद्धातनू एक पक्ष ग्रहीनें जो चोरी हुती ते छैत्तीसीमें कही, ते सुणी मगन थई गयौ। इति।" अर्थात् समयसार जिनमतका चोर है, उसमें जो सिद्धान्तकी एकपक्षी चोरी है, वह छत्तीसीमें बतला दी। सुनकर ऋषभदास काला मगन हो गया। इससे मालूम होता है कि ज्ञानसारजी अध्यात्ममत और नाटक समयसारको किस दृष्टिसे देखते थे।

ज्ञानसारजीकी[४] अनेक रचनाओंमें एक और छोटी-सी रचना भाव-छत्तीसी है। उसके अन्तिम दोहेका टिप्पण है—

"जैनगरे गोल्छागोत्रे सुखलाल श्रावकै आजन्म जिनमत अरागियै शुद्धवृत्तें जिनदर्शन आदर्यौ। पछी हू किसनगढ आयौ, तिवारै समयसार जिनमत विरुद्ध वाचतौ सुण ए रचीनै मूकी। तेऊए वाचीनै वाचवू मूकी दीधू" अर्थात् जयपुरमें गोलेछा गोत्रके (ओसवाल) सुखलाल श्रावकने अरागी शुद्धवृत्तिसे जिनदर्शन ग्रहण किया। फिर मै किशनगढ चला आया, जब मैंने सुना कि वह जिनमतविरुद्ध समयसार बॉचता है, तब यह भावछत्तीसी रचकर रख दी। उसने भी इसे पढकर समयसारका पढना छोड़ दिया।

१—यह समयसारके इस दोहेको लक्ष्य करके है—

लीन भयौ विवहारमें, उकति न उपजै कोइ।
दीन भयौ प्रभुपद जपै, मुकति कहॉतैं होइ॥ २२—निर्जरा द्वार

२—ऋषभदास काला (खडेलवाल, सरावगी)

३—नाहटाजी इसे 'ज्ञानसारपदावली' में छपा रहे हैं।

४—ज्ञानसारजीका राजस्थानी भाषामें एक 'कामोद्दीपन' नामका ग्रन्थ है, जो जयपुरके राजा माधवसिंहके पुत्र प्रतापसिंहजीकी प्रसन्नताके लिए लिखा गया है। 'माधवसिंहवर्णन' नामकी एक छोटी-सी रचना राजाकी प्रशसामे भी है।

इस टिप्पणसे भी मालूम होता है कि उन्हें समयसारसे बहुत ही चिढ हो गई थी और वे यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि कोई श्रावक उसे पढे। भावछत्तीसीके दोहोंमें भी नाटक समयसारकी उक्तियोंकी प्रतिध्वनि है।

आगे हम दिगम्बर सम्प्रदायके उन लेखकों और उनके ग्रन्थोंका परिचय देते हैं जिन्होंने अध्यात्म मतका विरोध किया है।

जिस तरह श्वेताम्बर विद्वानोंने अध्यात्म मतपर आक्रमण किये हैं उसी तरह दिगम्बरोंने भी। परन्तु दिगम्बरोंने उसे 'अध्यात्म मत' न कहकर 'तेरापथ' कहा है।

तेरापथका विरोध

१-प० बखतरामजी—प० बखतरामजी शाह चाटसूके रहनेवाले थे और जयपुरमें आकर रहने लगे थे[1]। उनके पिताका नाम पेमराज था। उनका बनाया हुआ 'मिथ्यात्व-खडन नाटक' है, जो पूस सुदी पचमी रविवार स० १८२१ को रचा गया थी। उसका साराश यह है—

पहले एक दिगम्बर मत था, उसमेंसे श्वेताम्बर निकला, दोनोंमें भारी अकस (अनबन) हुई जिसे सभी जानते हैं। उसीमें बहम (तर्क) करके तेरह-पंथ चल पड़ा। उसकी उत्पत्तिका कारण बतलाते हुए लिखा है कि पहले यह मत आगरेमें स० १६८३ में चलो। वहाँ कितने ही श्रावकोंने किसी पडितसे कितने ही अध्यात्म ग्रथ सुने और वे श्रावकोंकी क्रियाओंको छोड़कर मुनियोंके मार्गपर चलने लगे फिर उसीके अनुसार यह कामामे चल पड़ा।

१—ग्रथ अनेक रहस्य लखि, जो कछु पायौ थाह।
बखतराम बरनन कियौ, पेमराज सुत माह ॥ १४०१ ॥
आदि चाटसू नगरके, वासी तिनकौं जानि।
हाल सवाई जयनगर, माझि बसे हैं आनि ॥ १४०२ ॥

२—'नाटक' नाम भर है, नाटकपन इसमें कुछ नहीं है।

३—अट्ठारहसौ बीस इक, सुभ सवत रविवार।
पोस मास सुदि पचमी, रच्यौ ग्रन्थ यह सार ॥ १४०७ ॥

४—प्रथम चल्यौ मत आगरे, श्रावक मिले कितेक।
सोलहसौ तियासिए, गहि कितेक मिलि टेक ॥ २०

इन्होंने सनातनकी रीति छोडकर पापकारी नई रीति पकड़ ली। पहले दो बातें छोड़ीं, एक जिनचरणोंमें केसर लगाना और दूसरे गुरुको नमन करना। आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिके समयमें यह पापधाम कुपन्थ चला। उस समय व्यापारके निमित्त कितने ही महाजन आगरे जाते थे और अध्यातमी बन आते थे। वे एक साथ मिलकर चुपचाप चर्चा किया करते थे।

जयपुरके निकट सागानेर पुराना नगर है। वहाँ अमरचन्द नामके एक ब्रह्मचारी थे। उनके निकट अनेक श्रावक धर्मकथा सुना करते थे, जिनमें एक गोदीका व्योंकका अमरा भौंसा था। उसे धनका बड़ा घमंड था, सो उसने जिनवानीका अविनय किया। इसपर श्रावकोंने उसे मन्दिरमेंसे निकाल दियाँ। इससे क्रोधित होकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं नया पथ चलाऊँगा। उसे १२ अध्यातमी मिल गये, जिन्हें लालच देकर उसने अपने मतमें मिला लिया। एक नया मन्दिर बनवा लिया और पूजा-पाठ भी रच लिये। स० १७७३ में इस तरह यह अघजाल मत स्थापित किया[४]। राजाका एक मत्री भी उसे मिल गया। उसने सहायता देकर और डरा धमकाकार इस पन्थको बढाया।

बखतरामजीका दूसरा ग्रन्थ बुद्धिविलास है जो गुणकीर्ति मुनिकी आज्ञासे सं० १८२७ में लिखा गया है। इसमें भी तेरहपथकी प्रायः वही बातें हैं जो मिथ्यात्व-खण्डनमें हैं। मिथ्यात्व-खण्डनमे गुरुनमस्कार और केसर लगाना इन दो बातोंको छोडनेकी बात लिखी है, पर इसमें उनके सिवा लिखा है—

१—केसर जिनपद चरचिबो, गुरु नमिबो जग सार।
प्रथम तजी यह दोइ विधि, मन मद ठानि असार॥ २३

२—भट्टारक आमेरके, नरेन्द्रकीरति नाम।
यह कुपन्थ तिनकै समै, नयौ चल्यौ अघधाम॥ २५

३—तिनमै अमरा भौंसा जाति, गोदीका यह व्योंक कहाति॥ ३०
धनकौ गरब अधिक तिन धर्यौ, जिनवानीकौ अविनय कर्यौ॥
तब बाकौं श्रावकनि विचारि, जिनमदिरतैं दयौ निकारि।

४—सत्रह सौ तिहोत्तरे साल, मत थाप्यौ ऐसैं अघजाल॥ ३४

५—भोजन तनिक चढात नहिं, सखरौ कहि त्यागत।
दीपककी ठौहर सबै, रगिकै गिरी धरत॥ २८

बुद्धिविलास[1] काफी बड़ा ग्रन्थ है, पर उसमें कोई सिलसिला नहीं है। जहाँ जिस विषयकी लहर आई है वहाँ वही लिख दिया है। आमेर और जयपुरका खूब विस्तारसे वर्णन किया है और वहाँके कछवाहे राजाओंकी वंशावली देकर उनके विषयमें अनेक कवियोंकी लिखी हुई प्रशसाएँ भी उद्धृत की हैं। श्यामजी नामक ब्राह्मणके द्वारा, जो राजाका पुरोहित था, जैन मदिरोंके नष्ट भ्रष्ट किये जानेका विवरण भी दिया है। एक जगह लिखा है जैसे बिल्ली और चूहोंमें वैरभाव है, वैसा ही (बीस पथका) वैरी तेरहपथ है! बीसपन्थमेंसे तेरह पन्थ उसी तरह प्रकट हुआ जैसे हिन्दुओंमेंसे यवनोंका कुपन्थ! हिन्दुओंकी क्रियाएँ जैसे यवन नहीं मानते उसी तरह तेरहपन्थियोंने भी क्रियाएँ मानना छोड़ दीं। तेरहपन्थ ऐसा कपटी है कि वह भगवान्‌से भी कपट करता है और नारियलकी रंगी हुई गिरीको दीप कहकर चढाता है[2]!

३-प० पन्नालालजी—बखतरामजीके बाद प० पन्नालालजीका 'तेरहपथ-खंडन' नामका ग्रन्थ है, जो प० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीकी सूचनाके अनुसार

न्हावन करत न बिम्बको, इनि दे आदि अनेक।
भली तजी खोटी गहीं, ते को कहै प्रतेक॥ २९
तिनिके गुरु नाहीं कहूँ, जती न पडित कोइ।
वही प्रतिष्ठी आदिकी, प्रतिमा पूजत लोइ॥ ३०
वे ही प्रतिमा ग्रथ वे, तिनिमै वचन फिराइ।
ठानि औरकी और ही, दीनौं पथ चलाइ॥ ३१

१—इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति मुझे स्व० तात्या नेमिनाथपागलने सन् १९१० के लगभग बारसी (शोलापुर) के भडारसे लेकर भेजी थी।

सवत अट्ठारह सतक, ऊपर सत्ताईस।
मास मागसिर पख सुकल, तिथि द्वादसी सरीस।

२ – जैसे बिल्ली ऊदरा, वैरभावको सग। तैसैं वैरी प्रगट है तेरापन्थ निसग॥
बीसपन्थतै निकल्कर प्रगट्यौ तेरापन्थ। हिदुनमैसे ज्यों कढ्यौ यवनलोकको पथ॥
हिन्दुलोककी ज्यों क्रिया, यवन न माने लोक। तैसैं तेरापथ भी किरिया छाड़ी थोक॥
कपटी तेरापन्थ है, जिनसौं कपट करत। गिरी चहोड़ी दीप कहैं, खोटो मतको पथ॥

"मिथ्यात्वखण्डन" के आधारपर ही लिखा गया है और अपने मतकी पुष्टिके लिए उसके कुछ पद्योंको भी उद्धृत किया है। यह जयपुरी गद्यमें है। इसका प्रारंभ देखिए—

" दिगंबराम्नाय है सो शुद्धाम्नाय है। या विषै भी तेरहपथीको अशुद्ध आम्नाय है सो याकी उत्पत्ति तथा श्रद्धा ज्ञान आचरण कैसे हैं ताका समाधान—पूर्वरीतिकूं छाडि नई विपरीत आम्नाय चलाई तातैं अशुद्ध है। पूर्वरीति तेरह थीं तिनकौं उठा विपरीत चले, तातै तेरापंथी भये, तेरह पूर्व किसी, ताका समाधान—

दस दिकपाल उथापि १, गुरुचरणा नहि लागै २।
केसरचरणा नहि धरै ३, पुष्पपूजा फुनि त्यागै ४॥
दीपक अर्चा छाडि ५, आसिका ६ माल न करही ७।
जिन न्हावण ना करै ८, रात्रिपूजा परिहरही ९॥
जिनसासनदेव्या तजी १०, राध्यौ अन चढौ नहीं ११।
फल न चढावैं हरित फुनि १२, वैठिर पूजा करै नहीं १३॥
ये तेरै उरधारि पथ तेरै उरथप्पे।
जिन शास्त्र सूत्र सिद्धातमाहि ला वचन उथप्पे॥

अर्थात् उक्त तेरह बातोंको छोड़ देनेसे यह तेरहपथ कहलाया।"

कामांकी चिट्ठी—इसके आगे पद्धडी छन्दमें कामासे सांगानेरकी लिखी हुई एक चिट्ठी दी है। कामासे लिखनेवाले हैं—हरिकिसन, चिन्तामणि, देवीलाल, और जगन्नाथ और सागानेरवालोंके नाम हैं मुकुददास, दयाचन्द, महासिंह, छाजू, कल्ला, सुन्दर और बिहारीलाल। सागानेरवालोंसे आग्रह किया गया है कि हमने इतनी बातें छोड़ दी हैं, सो आप भी इन्हें छोड़ देना—जिन चरणोंमें केसर लगाना, बैठकर पूजा करना, चैत्यालयमे भडार रखना, प्रभुको जलौटपर रखकर कलश ढोलना, क्षेत्रपाल और नवग्रहोंकी पूजा करना, मन्दिरमे जुआ खेलना और पखेसे हवा करना, प्रभुकी माला लेना, मन्दिरमें भोजकोंको आने देना, भोजकों-

१—मिथ्यात्व-खडनसे तो ऐसा मालूम होता है कि बारह अध्यातमी मिले और तेरहवाँ अमरा भौंसा, इस तरह तेरह अध्यात्मियोंके कारण यह तेरहपथ कहलाया। परंतु पन्नालालजी कहते हैं कि इन तेरह बातोंको छोड़ देनेसे तेरहपथ हुआ।

द्वारा बाजे बनवाना, राँधा हुआ अनाज चढाना, थालोड़ी करना, मन्दिरमें जीमन करना, रात्रिको पूजन करना, रथयात्रा निकालना, मन्दिरमें सोना, आदि। यह चिट्ठी फागुन सुदी १४ स० १७४९ को लिखी गई बतलाई है—

आई सागानेर, पत्री कामातें लिखी।
फागुन चौदसि हेर, सत्रहसे उनचास सुदि ॥ २६

४-चम्पारामजी—बखतराम और पन्नालालके सिवाय चम्पारामजी पाढ़ेने अपने ग्रन्थ चर्चासागरमे जो स० १९१० मे रचा गया है तेरहपथका खडन किया है। प० शिवाजीलालने भी इसी समयके आसपास तेरहपथ-खडन नामका ग्रन्थ लिखा है। और भी कुछ ग्रन्थोंके पढनेकी सिफारिश प० पन्नालालजीने अपने तेरहपंथखडनमें की है—वसुनन्दि श्रावकाचार वचनिका, चर्चासार, पूजाप्रकरण, श्रावकाचार वचनिका, दर्शनसार वचनिका, चर्चासमाधान, कल्पनाकदन, श्रावकक्रिया, बोधिसार, सुबुद्धिप्रकाश, सारसग्रह। उक्त ग्रन्थ मिले नही, परन्तु उनमें भी इनसे अधिक कुछ होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता।

५-चन्दकवि—'कवित्त तेरापथकौ' नामकी छोटी-सी रचना एक गुटकेमें लिखी हुई मिली है जिसके कर्त्ता कोई चन्द नामक कवि हैं। उसमें लिखा है कि जब सागानेरमे नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका चातुर्मास था तब उनके व्याख्यानके समय अमरा (भौंसा) गोदीकाका पुत्र, जो शास्त्रसिद्धान्त पढ़ा हुआ था, बीचबीचमें बहुत बोलता था, तब उसे व्याख्यानमेंसे जूते मारकर निकाल दिया। इससे चिढकर उसने तेरह बातोंका उत्थापन करके तेरहपथ चलाया। यह घटना कार्तिकी अमावास्या स० १६७५ की है[1]।

१—सवत सोलासै पचोत्तरे, कार्तिकमास अमावस कारी।
कीर्ति नरेन्द्र भटारक सोभित, चातुर्मास सागावति धारी ॥
गोदीकारा उधरो अमरोसुत, सास्त्रसिधत पढाइयौ भारी।
बीच ही बीच बखानमै बोल्त, मारि निकार दियौ दुख भारी ॥ १
तदि तेरह बात उथापि धरी, इह आदि अनादिकौ पथ निवारयौ।
हिंदुके मारे मलेच्छ ज्यौं रोवत, तैसै त्रयोदस रोज (?) पुकारयौ ॥ २
पागरख्या मारि जिनालयसै बिड़ारि दिए तातैं कुभाव धारि न मानै गुरु जतीकौं।
झूठो दंभ धरैं फिरैं झूठ ही विवाद करैं, छाड़ै नाहि रीस जानहार कुगतीकौं।

मिथ्यात्वखडन और तेरहपथखडनमें भी इस घटनाका उल्लेख है। इतना अन्तर है कि उनमें तेरहपथकी उत्पत्तिका समय १७७३ दिया है जब कि चन्दकविने १६७५। यह अन्तर क्यों पड़ा? हमारी समझमें ये सब लेखक बहुत पीछे हुए हैं और उक्त घटना इन सबसे पहलेकी है, जो परम्परासे सुन सुनाकर लिखी गई है। पर चन्दका लिखा हुआ समय सत्यके अधिक नजदीक मालूम होता है, क्योंकि जिस अमर (भौंसा) गोदीकाके पुत्रको मन्दिरमेंसे निकाल देनेकी बात लिखी है, उसका पूरा नाम जोधराज गोदीका है और उसके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं एक सम्यक्त्व-कौमुदी कथा और दूसरा प्रवचनसार भाषा। दोनों ही ग्रन्थ पद्यबद्ध हैं। पहला १७२४ का लिखा हुआ है और दूसरा १७२६ का। दोनोंमें ही जोधराजको सागानेरका निवासी और अमरका पुत्र बतलाया है। सम्यक्त्वकौमुदीमे लिखा है—

" अमरपूत जिनवर-भगत, जोधराज कवि नाम।
बासी सागानेरको, करी कथा सुखधाम ॥
सवत् सतरहसौ चौबीस, फागुन वदि तेरस सुभ दीस।
सुकरवारको पूरन भई, इहै कथा समकित गुन ठई ॥

इति श्रीसम्यक्त्वकौमुदीकथाया साहजोधराजगोदीकाविरचिताया .."

प्रवचनसारमें कहा है—

" सत्रहसै छब्बीस सुभ, विक्रम साक प्रमान।
अरु भादौं सुदि पचमी, पूरन ग्रथ बखान ॥
सुनय धरम ही सुखकरन, सब भूपनि सिर भूप।
मानवस जयासिंघसुत, रामसिंघ सुखरूप ॥
ताके राज सुचैनसौं, कियौ ग्रथ यह जोध।
सांगानेरि सुथानमैं, हिरदै धारि सुबोध ॥

इति श्रीप्रवचनसारसिद्धान्ते जोधराजगोदीकाविरचिते .."

---

१ – चन्द कविने अमरा गोदीकाका पुत्र लिखा है, पुत्रका नाम नहीं दिया। पर बखतरामने अमरा भौसा (पिता) को ही सभासे निकाल देनेकी बात लिखी है। 'भौंसा' खडेलवालोंका एक गोत है।

२ – महावीरजी क्षेत्रकमेटी, जयपुरद्वारा प्रकाशित 'प्रशस्ति-सग्रह, पृष्ठ २६१-२६२।' ३—प्रशस्तिसग्रह पृ० २३७-३८।

प्रवचनसारमें लिखा है कि पं० हेमराजजीने संस्कृतटीकाको देखकर तत्त्व-दीपिका नामकी अतिशय सुगम वचनिका लिखी और उसके आधारसे फिर मैंने 'किए कवित सुखधाम।' इससे मालूम होता है कि जोधराज पं० हेमराजजीके ही समान अध्यात्मी थे और इसलिए व्याख्यानमें तर्क-वितर्क करनेसे उनका अपमान किया गया होगा।

इससे मालूम होता है कि जोधराज गोदीकाके समयमें संवत् १७२० के आसपास ही यह घटना घटित हुई होगी। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति बहुत करके आमेरकी गद्दीके ही भट्टारक होंगे। बखतरामका बतलाया हुआ समय १७७३ गलत जान पड़ता है।[3]

जोधराज गोदीकाके प्रवचनसारके अन्तमें एक सवैया दिया हुआ है, जो बहुत विचारणीय है—

> कोऊ देवी खेतपाल बीजासनि मानत है,
> केई सती पितर सीतलासौं कहै मेरा है।
> कोऊ कहै रावलो, कबीरपद कोई गावे,
> केई दादूपंथी होर परे मोहघेरा है॥
> कोई ख्वाजे पीर मानें, कोई पंथी नानकके,
> केऊ कहैं महाबाहु महारुद्र चेरा है।
> याही वारा पथमैं भरमि रह्यो सबै लोक,
> कहै जोध अहो जिन तेरापंथ तेरा है॥

१— ता टीकाकों देखिकै, हेमराज सुखधाम।
करी वचनिका अति सुगम, तत्वदीपिका नाम।
देखि वचनिका हरसियौ, जोधराज कवि नाम।

२—पं० हेमराजजीके 'चौरासी बोल' की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके भंडारमें है, जिसके अन्तमें लिखा है—"लिखत स्वामी वेणीदास अवरंगाबाद माहि सं० १७२३ पोस सुदी पञ्चमी या पोथी साह जोधराज की छै मुकाम सांगानेर मध्ये।"

३—आमेरके भट्टारकोंकी पट्टावलीसे नरेन्द्रकीर्तिका ठीक समय मालूम हो सकता है।

अर्थात् सारे लोग सती, क्षेत्रपाल आदिके बारह पथोंमें भरम रहे हैं, परन्तु जोधकवि कहता है कि हे जिनदेव, उक्त बारह पथोंसे अलग 'तेरापथ' तेरा है।

यद्यपि तेरहपथकी यह व्युत्पत्ति भी उसी ढगकी और कल्पनाप्रसूत है जिस तरह केसर चढाना आदि तेरह बातोंके छोड़नेकी या बारह अध्यात्मियोंके साथ तेरहवे अमरा भौंसाके मिल जानेकी, परन्तु पूर्वोक्त सवैया बतलाता है कि स० १७२६ में जोधराजके प्रवचनसारकी रचनाके समय अध्यातम-मत तेरा-पथ कहलाने लगा था और यह अध्यात्म मत वही था जिसे बखतराम आदिने आगरेसे चला बतलाया है।

अध्यात्ममत और तेरापथ

अध्यात्ममत और तेरापथ दोनों एक ही हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अध्यात्ममत ही किसी कारण तेरापथ कहलाने लगा है। श्वेताम्बर विद्वानोंने तो इसे अध्यात्ममत ही कहा है तेरापथ नहीं, परन्तु दिगम्बरोंने तेरापथ कहा है, साथ ही यह भी बतलाया है कि यह पहले आगरेमें चला, वहीं किसीसे अध्यात्म-ग्रन्थ सुनकर लोग अध्यातमी बन आए और तेरापथी हो गये। तेरापथ नामकी अनेक व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं, परन्तु समाधानयोग्य उनमें एक भी नहीं है।

यद्यपि प्रारंभमें इसके अनुयायी श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही अधिक थे, परन्तु उनमें जो विचार-क्रान्ति हुई थी, वह जान पड़ता है राजमल्लजीकी समयसारकी बालबोधटीकाके कारण हुई थी और दूसरे अध्यात्म ग्रन्थ भी, जिनकी चर्चा उनकी ज्ञानगोष्ठियोंमें होती थी दिगम्बर सम्प्रदायके थे, इस लिए श्वेताम्बर विद्वानोंको इसे दिगम्बर ठहराने और विरोध करनेमें सुगमता हो गई। इस विरोधमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अधिकांश उन्हीं मानताओंको लेकर है जिनमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें मतभेद है और अध्यात्मसे जिनका बहुत ही कम सम्बन्ध है। वास्तवमें देखा जाय तो अध्यात्म दोनोंका लगभग एकसा है। स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि विवादग्रस्त बातोंमें अध्यातमी पड़े ही नहीं। उन्होंने तो जैनधर्मके मूल अध्यात्मिक रूपको पकड़नेकी ही चेष्टा की जो उस समय यतियों और भट्टारकोंकी कृपासे बाहरी क्रियाकाण्ड और आडम्बरोंमें छुप गया था। उन्हें जैनधर्मकी दृढ प्रतीति थी, पर वे न

श्वेताम्बर थे और न दिगम्बर। म० मेघविजयजीने अपने युक्तिप्रबोधमें (१७ वीं गाथाकी टीकामें) कहा है कि "अध्यातमी या वाराणसीय कहते हैं कि हम न दिगम्बर हैं और न श्वेताम्बर, हम तो तत्त्वार्थी—तत्त्वकी खोज करनेवाले—हैं। इस महीमण्डलमें मुनि नहीं हैं। भट्टारक आदि जो मुनि कहलाते हैं वे गुरु नहीं हैं। अध्यात्म मत ही अनुसरणीय है, आगमिक पन्थ प्रमाण नहीं है, साधुओंके लिए वनवास ही ठीक है।"

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्यातमी न दिगम्बर थे और न श्वेताम्बर। वे अपनेको केवल जैन समझते थे और उनकी दृष्टिमें श्वेताम्बर यति मुनि और दिगम्बर भट्टारक दोनों एक-से थे, जैनत्वसे दूर थे और इसीलिए इन दोनों सम्प्रदायोंके धनी धोरियोंने अपने स्वच्छन्द शासनोंकी नींव हिलती देखी और उनकी रक्षाका प्रबन्ध किया।

श्वेताम्बरोंके समान दिगम्बर सम्प्रदायके विचारशील लोगोंने भी इस अध्यात्म मतको अपनाया और उनमें यह तेरापथ नामसे प्रचलित हुआ। कामा, सागानेर, जयपुर आदिमें यह पहले फैला और उसके बाद धीरे धीरे सर्वत्र फैल गया।

बनारसी-साहित्यका परिचय

१-नाममाला—बनारसीदासजीकी उपलब्ध रचनाओंमें यह सबसे पहली है जो आश्विन सुदी १० संवत् १६७० को समाप्त हुई थी। अपने परम विचक्षण मित्र नरोत्तमदास[1] खोबरा और थानमल खोबराके कहनेसे उनकी इसमें प्रवृत्ति हुई थी। धनंजयकी संस्कृत नाममालाके ढंगका यह एक छोटा-सा पद्यबद्ध शब्दकोश है और बहुत ही सुगम है।

अपनी आत्मकथामें उन्होंने लिखा है कि जब उनकी अवस्था चौदह वर्षकी थी तब पं० देवदत्तके पास उन्होंने नाममाला और अनेकार्थकोश पढ़ा था।

१—मित्र नरोत्तम थान, परम विचच्छन धरमनिधि (धन)।
तासु वचन परवान, कियौ निबंध विचार मन॥ १७०
सोरहसै सत्तरि समै, असो मास सित पच्छ।
बिजै दसमि ससिबार तह, स्रवन नखत परतच्छ॥ १७१
दिन दिन तेज प्रताप जय, सदा अखंडित आन।
पातसाह थिर नूरदी, जहांगीर सुल्तान॥ १७२ — नाममाला

अवश्य ही इनमेंके नाममाला और अनेकार्थकोश धनजयके ही होंगे। क्यों कि उसकी श्लोकसख्या दो सौ बतलाई है, जो वास्तवमें धनजय नाममालाकी श्लोकसख्या है[1]। आगे सवत् १६७१ में जौनपुरके नवाब क्लीच खाँके बडे बेटेको उन्होंने नाममाला और श्रुतबोध पढाया था[2]। इससे भी मालूम होता है कि वे धनजयनाममालासे अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह नाममाला[3] धनजय नाममालाका अनुवाद है। हमने दोनोंको मिलान करके देखा तो मालूम हुआ कि इसमें न सस्कृत नाममाला तथा अनेकार्थ नाममालाका शब्दक्रम है, और न सस्कृतके सभी शब्द लिये हैं। बल्कि जैसा कि उन्होंने कहा है, इसमे शब्दसिन्धुका मन्थन करके और प्रचलित शब्दोंका अर्थ-विचार करके भाषा, प्राकृत और सस्कृत तीनोंके शब्द लिये हैं[4]।

२ **नाटक समयसार**—आचार्य कुन्दकुन्दके प्राकृत ग्रथ समयसारपाहुड़-पर 'आत्मख्याति' नामकी विशद टीका है जिसके कर्त्ता अमृतचन्द्र हैं। इस टीकाके अन्तर्गत मूल गाथाओंका भाव विशद करनेके लिए, उन्होंने जगह जगह स्वरचित संस्कृत पद्य दिये हैं जो 'कलश' कहलाते हैं। उनकी सख्या २७७ हैं और वे 'समयसारकलशा' नामसे स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें भी मिलते हैं।

१—पडित देवदत्तके पास। किछु विद्या तन करी अभ्यास। १६८
पढ़ी नाममाला सै दोई। और अनेकारथ अवलोइ॥

२—कबहु नाममाला पढै, छदकोस सुतबोध।
करै कृपा नित एक-सी, कबहु न होइ विरोध॥ ४५५ अ० व०

३—यह 'नाममाला' वीर सेवामन्दिर दिल्लीसे प्रकाशित हो चुकी है।

४—सबदसिंधु मथान करि, प्रगट सु अर्थ बिचारि।
भाषा करै बनारसी, निज गति मति अनुसारि॥ २
भाषा प्राकृत संसकृत, त्रिविध सुसबद समेत।
'जानि' 'बखानि' 'सुजान' 'तह,' ए पदपूरनहेत॥ ३

५—समयसार (कलश) के ९ अंक हैं और उनमें क्रमसे ४५, ५४, १३, १२, ८, ३०, १७, १३ और ८५, इस तरह सब मिलाकर २७७ सस्कृत पद्य हैं, जब कि बनारसीके नाटक समयसारमें ७२७ छद।

‘ वह मंदिर यह कलश कहावै ’—समयसार मन्दिर है और यह उसका कलश है। आत्मख्यातिटीकामें समयसारको शान्तरसका नाटक कहा है और उसमें जीव अजीवके स्वाग दिखलाए हैं और इसीलिए बनारसीदासने इसका नाम ‘ नाटक समयसार ’ रखा है। कलशोपर भट्टारक शुभचन्द्र (१६ वीं शताब्दि) की एक ‘ परमाध्यात्मतरगिणी ’ नामकी सस्कृत टीका भी है। पाण्डे राजमल्लजीने कलशोंकी एक बालबोधिनी भाषाटीका भी लिखी थी, जो बनारसीदासजीको प्राप्त हुई थी।

उनके आगरानिवासी पॉच मित्रोंने कहा कि—

नाटकसमैसार हितजीका, सुगमरूप राजमलटीका।
कवितबद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रथ पढै सब कोई॥ ३४

और तब बनारसीदासजीने इस ग्रन्थकी रचना की।

इसमें ३१० दोहा-सोरठा, २४५ इकतीसा कवित्त, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैया, २० छप्पय, १८ घनाक्षरी, ७ अडिल्ल और ४ कुंडलिया, इस तरह सब मिलाकर ७२७ पद्य हैं, जब कि मूल कलशा २७७ हैं[1]। क्योंकि इसमें मूल ग्रन्थके अभिप्रायोंको खूब स्वतन्त्रतासे एक तरहकी मौलिकता लाकर लिखा है, इसलिए स्वाभाविक है कि पद्यपरिमाण बढ जाय। इसके सिवाय अन्तके चौदहवें गुणस्थान अधिकारको स्वतन्त्र रूपसे लिखा है जिसमें ११२ पद्य हैं। फिर अन्तमे उपसहाररूप ४० पद्य और हैं। प्रारम्भमें भी उत्थानिका रूप ५० पद्य हैं।

इस तरह कुन्दकुन्दके प्राकृत समयपाहुड़, अमृतचन्द्रके समयसारकलश और राजमल्लजीकी बालबोध भाषाटीकाके आधारसे इस छन्दोबद्ध नाटक-समयसारकी रचना हुई है और इस दृष्टिसे यह कोई स्वतत्र ग्रन्थ नही है फिर भी एक मौलिक ग्रन्थ जैसा मालूम होता है। कहीं भी क्लिष्टता, भावहीनता और परमुखापेक्षा नहीं दिखलाई देती।

अर्थात् बनारसीदासजीने समयसारके कलशोंका अनुवाद ही नहीं किया है, उसके मर्मको अपने ढगसे इस तरह व्यक्त किया है कि वह बिल्कुल स्वतत्र जैसा मालूम होता है और यह कार्य वही लेखक कर सकता है जिसने उसके मूलभावको अच्छी तरह हृदयगम करके अपना बना लिया है। हम नीचे इस

तरहके कुछ कलश, राजमल्लजीकी बालबोधिनी टीका और समयसारके पद्य पाठकोंके सामने उपस्थित कर रहे हैं। बालबोधिनी टीकाकी भाषा कैसी थी, सो भी इससे मालूम हो जायगा और यह भी कि उसका कितना सहारा लिया गया है—

कलश—नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥ १ ॥

बा० बो०—स्वभावाय नमः। भावशब्दै कहिजै पदार्थ, पदार्थ सत्ता छै। सत्त्वस्वरूप कहु तिहितै यौ अर्थु ठहरायौ जु कोई सास्वतौ वस्तुरूप तीहै म्हाकौ नमस्कारु। सो वस्तुरूप किसौ छै चित्स्वभावाय चित् कहिजै चेतना सोई छै स्वभावाय कहता स्वभावसर्वस्व जिहिकौ तिहिकौं म्हाकौ नमस्कारु। इहि विशेषण कहतां दोइ समाधान हौहि छै। एकु तौ भाव कहता पदार्थ, ते पदार्थ केई चेतन छै केई अचेतन छै। तिहि माहै चेतनपदार्थ नमस्कारु करिवा जोग्य छै इसौ अर्थु उपजै छै। दूजौ समाधान इसौ जु यद्यपि वस्तुकौ गुण वस्तु ही माहै गर्भित छै। वस्तु गुण एक ही सत्व छै। तथापि भेदु उपजाइ कहिवा ही जोग्य छै। विशेषण कहिवा पाषै वस्तुकौ ज्ञानु उपजै नाही। पुनः किं विशिष्टाय भावाय, और किसौ छै भाउ, समयसाराय। यद्यपि समय शब्दका बहुत अर्थ छै तथापि एनै अवसर समय शब्दै सामान्यपनै जीवादि सकल पदार्थ जानिबा। तिहि माहै जु कोई सार छै, सार कहता उपादेय छै जीव वस्तु तिहिकौ म्हाकौ नमस्कारु। इहि विशेषणकौ यौ भावार्थ सारपनौ जानि चेतन पदार्थ है नमस्कारु प्रमाण राख्यौ, असार पदार्थ जानि अचेतन पदार्थकौ नमस्कारु निषेध्यौ। आगै कोई वितर्क करिसी जु सब ही पदार्थ आपना आपना गुणपर्याय विराजमान छै, स्वाधीन छै, कोई किहीकै आधीन नही, जीव पदार्थकौ सारपनौ क्यौ घटै छै। तिहिकौ समाधान करिवाकहु दोइ विशेषण कह्या। पुनः किं विशिष्टाय भावाय, और किसौ छै भाउ, स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे। एनै अवसर स्वानुभूति कहता निराकुलत्व लक्षण शुद्धात्मपरिणामस्वरूप अतीन्द्रिय सुख जानिबौ, तिहिरूप चकासते कहता अवस्था छै तिहिकी इसौ छै। सर्वभावान्तरच्छिदे, सर्वभाव कहता अतीत अनागत वर्तमान पर्यायसहित अनत गुण विराजमान जाउत जीवादिपदार्थ तिहिकौ अतर छेदी एक समय माहै जुगपत प्रत्यक्षपनौ जाननशील जु कोई शुद्ध जीव वस्तु तिहिकौ म्हाकौ नमस्कारु। शुद्ध जीवकहु सारपनौ घटै छै। सार

कहता हितकारी असार कहता अहितकारी। सो हितकारी सुखु जानिज्यौ, अहितकारी दुखु जानिज्यौ।) जातहि अजीवपदार्थ पुद्गलधर्माधर्माकाशकालकहु अरु ससारी जीवकहु सुखु नाही, ज्ञानु भी नाहीं, अरु तिहिकौ स्वरूप जानता जाननहारा जीवकहु भी सुखु नाही, ज्ञानु भी नाहीं। तिहितै इनकौ सारपनो घटै नही। शुद्धजीवकहु सुखु छै ज्ञानु भी छै। तिहिकै जानता अनुभवता जाननहाराकौ सुखु छै ज्ञान भी छै। तिहितै शुद्ध जीवकौ सारपनौ घटै छै।

पद्यानुवाद—सोभित निज अनुभतिजुत, चिदानद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥

कलश—अनन्तधर्मणस्तत्त्व पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥ २

खा० टी०—नित्यमेव प्रकाशता—नित्य कहता सदा त्रिकाल, प्रकाशता कहता प्रकाशकहु, करहु, इतना कहता नमस्कार कियौ। सो कौन, अनेकान्तमयीमूर्ति। न एकातः अनेकान्तः, अनेकान्त कहतां स्याद्वाद, तिहिमयी कहतां सोई छै, मूर्ति कहता स्वरूप जिहिकौ, इसी छै सर्वज्ञकी वाणी कहता दिव्यध्वनि। एनै अवसर आशका उपजै छै। कोई जानिसे, अनेकान्त तो सशय छै, संशय मिथ्या छै। तिहि प्रति इसौ समाधान कीजै। अनेकान्त तो सशयको दूरीकरणशील छै अरु वस्तुस्वरूपकहु साधनशील छै। तिहिको व्यौरौ—जो कोई सत्तास्वरूप वस्तु छै, सो द्रव्य गुणात्मक छै, तिहि माहै जो सत्ता अभेदपनै द्रव्यरूप कहिजै छै सोई सत्ता भेदपनेकरि गुणरूप कहिजै छै। इहिकौ नाउ अनेकान्त कहिजै। वस्तुस्वरूप अनादिनिधन इसौ ही छै। काहूको सारो नहीं। तिहितै अनेकान्त प्रमाण छै। आगे जिहि वाणीकहु नमस्कार कियौ सौ वाणी किसी छै प्रत्यगात्मनस्तत्त्व पश्यती—प्रत्यगात्मा कहता सर्वज्ञ वीतराग, तिहिकौ व्यौरौ, प्रत्यग भिन्न कहता द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तहि रहित छै आत्मा जीव द्रव्य जिहिकौ सो कहिजै प्रत्यगात्मा, तिहिकौ तत्त्व कहिजै स्वरूप, ताकहु पश्यती अनुभवनशील छै। भावार्थ—(इस्यौ जो कोई वितर्क करिसै दिव्यध्वनि तौ पुद्गलात्मक छै अचेतन छै, अचेतननै नमस्कारु निषिद्ध छै। तीहे प्रति समाधान करिवाके निमित्त यौ अर्थ कह्या,) जो सर्वज्ञस्वरूपअनुसारिणी छै। इसौ मानिवा पाषै भी बनै नहीं। ताकौ व्यौरौ—वाणी जो

अचेतन छे। तिहि सुनतां जीवादि पदार्थको स्वरूपज्ञान ज्यौ उपजै छे त्यौ ही जानिज्यो। वाणीको पूज्यपणो भी छे। किं विशिष्टस्य प्रत्यगात्मनः किसौ छे सर्वज्ञ वीतराग। अनन्तधर्म्मणः अनन्त कहता अति बहुत छे, धर्म्म कहता गुण जिहिको इसौ छे, भावार्थ—(इसौ जो कोई मिथ्यावादी कहै छे परमात्मा निर्गुण छे गुण विनाश हूवा परमात्मापणो होइ छे, सो इसौ मानिवौ झूठो छे) जिहितै गुण विनश्या द्रव्यको भी विनाश छे।

पद्या०—जोग धरै रहै जोगसौ भिन्न, अनंत गुनातम केवलग्यानी।
तासु हृदे द्रहसौं निकसी, सरिता सम ह्वै स्रुतसिन्धु समानी॥
यातैं अनत नयातम लच्छन, सत्यसरूप सिधत बखानी।
बुद्धि लखै न लखै दुरबुद्धि, सदा जगमाहि जगै जिनबानी॥ ३ जीवद्वार

कलश—क्वचिल्लसति मेचक क्वचिदमेचकामेचक
क्वचित्पुनरमेचक सहजमेव तत्त्व मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसा तन्मनः
परस्परसुसहतप्रकटशक्तिचक्र स्फुरत्॥ ९ साध्यसाधकद्वार

वा० टी०—भावार्थ इसौ—इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छे। तिहितै यथा नाटकविषैं एक भाव अनेकरूप करि दिखाइजै छे तथा एक जीव द्रव्य अनेक भावकरि साधिजै छे। मम तत्त्व सहज, कहता म्हारो ज्ञानमात्र जीव वस्तु सहज ही इसो छे, किसो छे। क्वचित् मेचक लसति—कहता कर्मसयोगथकी रागादिभावरूप परिणतिकै देखता अशुद्ध इसौ आस्वाद आवे छे। पुनः कहता एकातपनै इसौ ही छे, यौं नहीं छे, इसौ फुनि छे। क्वचित् अमेचक, कहता एक वस्तुमात्र रूप देखता शुद्ध छे एकातपनै। इसौ फुनि न छे तो किसौ छे। क्वचितमेचकामेचक—कहता अशुद्धि परिणतिरूप, वस्तुमात्ररूप एक ही वारकै देखता अशुद्ध फुनि छे शुद्ध फुनि। इसौ दोऊ विकल्प घटै छे इसौ क्यौ छे। तथापि कहता तौ फुनि, अमलमेधसा तत् मनः न विमोहयति—अमलमेधसा कहता सम्यग्दृष्टि जीवहकौं, तत् मनः कहता तत्वज्ञानरूप छे जो बुद्धि, न विमोहयति, कहतां सशयरूप नहीं भ्रमै छे।

भावार्थ इसो—जो जीव स्वरूप शुद्ध फुनि छे अशुद्ध फुनि छे शुद्ध अशुद्ध फुनि छ। इसो कहता अवधारिवाको भ्रमको ठौर छे, तथापि जे स्याद्वादरूप वस्तु अवधारहि छे त्याहको सुगम छे, भ्रम नाहीं उपजै छै। किसो छै वस्तु—परस्परसुसहृत-प्रकटशक्तिचक्र—परस्पर कहता माहोमाही एक सत्तारूप, सुसहृत कहता मिली छै इसी छै, प्रगट शक्ति कहता स्वानुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति त्याहको, चक्र कहता समूह छै जीव वस्तु। और किसो छै, स्फुरत कहता सर्वकाल उद्योतमान छै।

पद्या०—करम अवस्थामैं असुद्धसौ विलोकियत,

करमकलंकसौ रहित सुद्ध अग है।

उभै नैप्रमान समकाल सुद्धासुद्ध रूप,

ऐसो परजाइधारी जीव नाना रग है॥

एक ही समैमैं त्रिधारूप पै तथापि जाकी,

अखडित चेतनासकति सरवग है।

यहै स्यादवाद याकौ भेद स्यादवादी जानै,

मूरख न मानै जाकौ हियौ दग भग है॥ ४८ साध्यसाधकद्वार

आगे एक कलश दिया जा रहा है, जिसके अभिप्रायको बनारसीदासजीने कई पद्योंमें बिल्कुल स्वतन्त्र रूपसे विस्तारके साथ नई नई उपमाएँ आदि देकर स्पष्ट किया है—

कलश—आत्मान परिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्तिं प्रपद्यान्धकैः

कालोपाधिबलादशुद्धिमधिका तत्रापि मत्वा परैः।

चैतन्य क्षणिक प्रकल्प्य पृथुकैः शुद्धर्जुसूत्रे रतै-

रात्मा व्युज्झित एष हारवदहो निःसूत्रमुक्तेक्षुभिः॥ १६

—सर्वविशुद्धिद्वार

पद्यानुवाद—कहै अनातमकी कथा, चहै न आतमसुद्धि।

रहै अध्यातमसौ विमुख, दुराराध्य दुरबुद्धि॥

दुरबुद्धी मिथ्यामती, दुरगति मिथ्याचाल।

गहि एकन्त दुरबुद्धिसौं, मुकति न होइ त्रिकाल॥

कायासे विचारै प्रीति मायाहीसौं हार जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी।
चुंगलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्यौं ही पाय गाड़ै पै न छाडे टेक पकरी॥
मोहकी मरोरसौं भरमकौ न ठौर पावै, धावै चहु ओर ज्यौं बढावै जाल मकरी।
ऐसैं दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जजीरनिसौं जकरी॥
बात सुनि चौंकि उठै बातहीसों भौंकि उठै, बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी।
निंदा करै साधुकी प्रसंसा करै हिंसककी, साता मानै प्रभुता असाता मानै फकरी॥
मोष न सुहाइ दोष देखै तहा पैठि जाइ, कालसौं डराइ जैसे नाहरसौं बकरी।
ऐसैं दुरबुद्धि भूलि झूठके झूरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जजीरनिसौं जकरी॥

केई कहैं जीव छनभगुर, केई कहैं करम करतार।
केई करमरहित नित जपहिं, नय अनत नाना परकार॥
जे एकात गहैं ते मूरख, पडित अनेकात पख धार।
जैसे भिन्न भिन्न मुकतागन, गुनसौं गुहत कहावै हार॥
जथा सूतसग्रह बिना, मुकतामाल न होइ।
तथा स्यादवादी बिना, मोख न साधै कोइ॥ ४० स० वि० द्वार

इन सब उदाहरणोंसे समझमें आजाता है कि नाटक समयसार भावानुवाद होकर भी अनेक अशोंमें मौलिक है।

इस ग्रन्थका प्रचार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अधिक रहा है और अबसे कोई अस्सी वर्ष पहले (दिसम्बर सन् १८७६ में) इसे भीमसी माणिक नामके श्वेताम्बर प्रकाशकने ही गुजरातीटीकासहित प्रकाशित किया था। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक श्वेताम्बर साधुओंकी लिखी हुई मिलती हैं।[२] दिगम्बर सम्प्र-

१—यह टीका मुनि रूपचन्दजीकी हिन्दी टीकाके आधारसे लिखी गई थी।

२—'विशाल भारत' मार्च १९४७ में मुनि कान्तिसागरजीका 'क० बनारसीदास और उनके ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें जिन प्रतियोंका परिचय दिया है, वे प्रायः सभी श्वे० मुनियों या श्रावकों द्वारा लिखी गई हैं। नाटक समयसारकी एक प्रति उदयपुरमें चन्द्रगच्छीय शान्तिसूरिके विजयराज्यमें वस्तुपालगणि शिष्य सदारग ऋषिने स० १७१७ में

दायमे जहाँतक मुझे स्मरण है सबसे पहले स्व० बाबू सूरजभानजीने नाटक समयसार देवबन्दसे प्रकाशित किया था। उसके बाद फलटणसे स्व० नाना रामचन्द्र नागने और उसके बाद अनेक प्रकाशकोंने। भाषाटीका सहित भी दो स्थानोंसे प्रकाशित हो चुका है१५

३ **बनारसीविलास**—पूर्वोक्त दो ग्रन्थोंके सिवाय बनारसीदासजीकी जितनी भी छोटी मोटी रचनाएँ हैं वे सब इस ग्रन्थमें दीवान जगजीवनने संग्रह कर दी हैं और इस संग्रहका नाम बनारसीविलास रखा है। ये आगरेके ही रहनेवाले थे और बनारसीदासजीके अवसानके कुछ ही समय बाद चैत्र सुदी २ वि० सं० १७०१ को उन्होंने यह संग्रह किया था। जिन रचनाओंका उल्लेख बनारसीदासजीने अपनी आत्मकथा (अर्धकथानक) में किया है वे सभी इसमें हैं, बल्कि उनके सिवाय 'कर्मप्रकृतिविधान' नामकी अंतिम रचना भी है जो फागुन सुदी ७ सं० १७०० को समाप्त हुई थी, अर्थात् कर्मप्रकृतिविधानके केवल २५ दिन बाद ही बनारसीविलास संग्रहीत हो गया था। बहुत संभव है कि इसी बीच कविवरका देहान्त हो गया और उसके बाद ही उनकी स्मृति-रक्षाका यह आवश्यक कार्य पूरा किया गया।

बनारसीविलासमें जो रचनाएँ संग्रहीत हैं उनमेंसे ज्ञानबावनी (१६८६), जिनसहस्रनाम (१६९०), सूक्तमुक्तावली (१६९१) और कर्मप्रकृतिविधान (१७००) इन चार रचनाओंमें ही रचनाकाल दिया है, शेषमें नहीं। परन्तु अर्धकथानकमें नीचे लिखी रचनाओंके संबंधमें मालूम हो जाता है कि वे लगभग किस समय रची गई थीं।

लिखी है, जो बड़ादाम म्यूजियम कलकत्तामें है। दूसरी प्रतिको ऋषि जिनदत्तने सं० १८६९ में नजीबाबादमें लिखी। यह प्रति अब बंगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी (नं० ६८४९) में सुरक्षित है। तीसरी प्रति भी उक्त सोसायटी (६७०१) में है जो साह मेघराजजीपठनार्थ लिखी गई थी। संवत् नहीं है। चौथी सटीक प्रति रूपचन्दके प्रशिष्य राजसारमुनिकी संवत् १८२९ की लिखी हुई है।

१—पं० बुद्धिलाल श्रावककी टीकासहित जैनग्रन्थरत्नाकर बम्बई द्वारा प्रकाशित और रूपचन्दकृत टीकासहित ब्र० नन्दलालजी द्वारा भिण्डसे प्रकाशित।

संवत् १६७० (अ० क० पद्य ३८६-८७ के अनुसार)

१—अजितनाथके छन्द
२—नाममाला[1]

संवत् १६८० (५९६-९७)

३—ग्यानपचीसी
४—ध्यानबत्तीसी
५—अध्यातमके गीत
६—शिवमन्दिर (कल्याणमदिर)

स० १६८०-९२ के बीच (६२५-२८)

७—सूक्तिमुक्तावली
८—अध्यातमबत्तीसी
९—पैड़ी (मोक्षपैड़ी)
१०—फाग धमाल (अध्यातम फाग)
११—(भव) सिन्धुचतुर्दशी
१२—प्रास्ताविक फुटकर कविता
१३—शिवपचीसी
१४—सहसअठोतर नाम (सहस्रनाम)
१५—कर्मछत्तीसी
१६—झूलना (परमार्थ हिंडोलना)
१७—अन्तर रावन राम (राग सारग)
१८—दोइ विध ऑखें (राग गौरी)
१९—दो वचनिका (परमार्थ वचनिका, उपादान निमित्तकी चिट्ठी)
२०—अष्टक गीत (शारदाष्टक)
२१—अवस्थाष्टक
२२—षट्दर्शनाष्टक
२३—गीत बहुत (अध्यात्मपदपंक्तिके २१ पद)[2]

१—'नाममाला' बनारसीविलासमे संग्रह नहीं की गई है, अलग है।
२—जयपुरसे प्रकाशित बनारसीविलासमें ७ ही पद छपे हैं, शेष छूट गये हैं।

संवत् १६९३ (अ० क० ६३८)

२४ नाटकसमयसार

इनके सिवाय बनारसीविलासके प्रारंभकी जगजीवनकृत विषय सूचनिकाके अनुसार नीचे लिखी रचनाएँ और हैं जिनमेंसे दोके सिवाय शेषका समय मालूम नहीं हो सका।

२५ बावनी सवैया (ज्ञान-बावनी) सं० १६८६
२६ वेदनिर्णय पञ्चासिका
२७ त्रेसठ शलाकापुरुष
२८ कर्मप्रकृतिविधान (सं०१७००)
२९ साधुवन्दना
३० षोडश तिथि
३१ तेरह काठिया
३२ पञ्चपदविधान
३३ सुमतिदेवीशतक
३४ नवदुर्गाविधान
३५ नामनिर्णयविधान
३६ नवरत्न कवित्त
३७ पूजा (अष्टप्रकारी जिनपूजा)
३८ दशदान-विधान
३९ दश बोल
४० पहेली
४१ प्रश्नोत्तर दोहा (सुप्रश्न)
४२ प्रश्नोत्तरमाला
४३ शान्तिनाथ छन्द (शान्तिजिनस्तुति)
४४ नवसेनाविधान
४५ नाटक कवित्त (पाठान्तर कलशोंका अनुवाद)
४६ मिथ्यामति वाणी (मिथ्यामत)
४७ गोरखके वचन

४८ वैद्य आदि भेद

४९ निमित्त उपादानके दोहे

५० मल्हार (सोरठ राग)

अध्यात्मपदपक्तिमें २१ पद हैं। उनमें भैरव, रामकली, बिलावल तो पद हैं, पर १७ वॉ 'आलाप' है जो दोहोंमें है। विषयसूचनिकामें भैरव आदि नाम तो हैं, पर 'आलाप' नहीं है। सो उसे पदपक्तिसे अलग गिनना चाहिए। इन सब रचनाओंके नाम अर्ध-कथानकमें नहीं दिये, पर यदि हम नीचे लिखी पक्तियोंके 'और' 'अनेक', और 'बहुत' के भीतर इन सबको समझ लें, तो इनका रचनाकाल १६८० से १६९२ तक मान लेना अनुचित न होगा—

> तब फिर **और** कवीसुरी, भई अध्यातममाहि। ४३६
> अरु इस बीच कवीसुरी, कीनी बहुरि **अनेक**। ६२५
> अष्टक गीत **बहुत** किए, कहौं कहालौं सोइ॥ ६२८

१ **जिनसहस्रनाम**—विष्णुसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम आदिके समान जिनसेन, हेमचन्द्र, आशाधर आदिके बनाये हुए अनेक जिनसहस्रनाम हैं, पर वे सब सस्कृतमें हैं। इनका नित्य पाठ करनेकी पद्धति है। यदि यह भाषामें हो, तो पाठ करनेवालोंको ज्यादा लाभ हो, असस्कृतज्ञ भी जिन-गुणोंका स्मरण सुगमतासे कर सकें, इस खयालसे यह रचा गया है। भाषामें यह शायद उनका सबसे पहला प्रयास है। इसमें भाषा, प्राकृत और सस्कृत तीनों प्रकारके शब्द हैं और कहा है कि एकार्थवाची शब्दोंकी द्विरुक्ति हो, तो दोष न समझना चाहिए[1]। इसमें दश-शतक हैं और दोहा, चौपई, पद्धड़ी आदि सब मिलाकर १०३ छन्द हैं।

१—केवल पदमहिमा कहौं, करौं सिद्ध गुनगान।
भाषा संस्कृत प्राकृत, त्रिविध शब्द परमान॥ २
एकारथवाची सबद, अरु द्विरुक्ति जो होइ।
नाम कथनके कवितमैं, दोष न लागै कोइ॥ ३

२ सूक्त-मुक्तावली—यह इसी नामके संस्कृत ग्रन्थका जिसे 'सिन्दूर प्रकर' भी कहते हैं पद्यानुवाद है। मूल ग्रन्थके कर्त्ता सोमप्रभ हैं, जो श्वेताम्बर थे। बनारसीदासने अभिन्न मित्र कुँवरपालके साथ मिलकर इसे बनाया है[2]। इसके ४४ वें पद्य तकके २१ पद्योंमें तो 'बनारसीदास' नाम दिया है और उनके बाद ५९, ६४, ६७, ७८, ८० और ८२ नम्बरके ६ पद्योंमें कौंरा या कँवरपालका। यह एक तरहका सुभाषित है और सबके लिए उपयोगी है।

३ ज्ञान-बावनी—यह पीताम्बर नामक किसी सुकविकी रचना है और बनारसीविलासमें इसलिए संग्रह कर ली गई है कि इसमें बनारसीदासका गुण-कीर्तन किया गया है। यह स्वयं बनारसीकी रची हुई नहीं है।

४ वेदनिर्णयपंचासिका—इसमें चार अनुयोगोंको—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगको चार वेद बतलाया है और उनके कर्त्ता ऋषभदेवको 'आदिब्रह्मा' कहकर जुगलधर्म और कुलकरों आदिका वर्णन दि० सं० के अनुसार किया है। ५१ दोहा, चौपई, कवित्त आदि छंद हैं।

५ शलाका पुरुषोंकी नामावली—दोहा, सोरठा, वस्तु छन्दोंमें शलाका-पुरुषोंके नाम दिये हैं। 'प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक' पदसे मालूम होता है कि रचयिता मल्लिनाथ तीर्थंकरको स्त्री नहीं मानते।

६ मार्गणाविधान—इसमें १४ मार्गणा और उनके ६२ भेदोंका चौपाई छन्दमें वर्णन है।

७ कर्मप्रकृतिविधान—१७५ पद्योंका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मालूम होता है। यह गोम्मटसार कर्मकाण्डके आधारसे लिखा गया है और इसमें आठों कर्मोंकी प्रकृतियोंका स्वरूप बहुत सुगम पद्धतिसे समझाया है। यह कविकी अन्तिम रचना संवत् १७०० के फागुन मासकी है।

१—ये अजितदेवके प्रशिष्य और विजयसेनके शिष्य थे। अजितदेवको 'जैन-बस-सर-हस दिगम्बर' विशेषण अनुवादकोंने अपनी तरफसे जोड़ दिया है।

२—कुँवरपाल बानारसी, मित्त जुगल इकचित्त।
तिन गिरथ भाषा कियौ, बहुबिध छंद कवित्त॥

८ शिवमन्दिर (कल्याणमन्दिर)—यह कुमुदचन्द्रके संस्कृत स्तोत्रका भावानुवाद चौपई छन्दमें किया गया है, जो बहुत सुगम और सुन्दर है। इसका बहुत प्रचार है।

९ साधुवन्दना—२८ मूलगुणोंका २८ चौपई और ४ दोहोंमें वर्णन है जिससे स्पष्ट होता है कि कवि सवस्त्र भट्टारकों या यतियोंके प्रति श्रद्धालु नहीं हैं।

१० मोक्षपैड़ी—यह रचना खरताल लेकर गानेवाले साधुओंके ढगकी है जिसमें कुछ पजाबी विभक्तियोंका उपयोग हुआ है।—

इक्कसमै रुचिवतनो गुरु अक्खै सुन मल्ल।
जो तुझ अदर चेतना, वहै तुसाड़ी अल्ल॥ १
ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला।
अक्खै रोचक सिक्खनै, गुरु दीनदयल्ला॥
इस बुज्झे बुधि लहलहै, नहिं रहै मयल्ला।
इसदा भरम न जानई, सो दुपद बयल्ला॥ २
यह सतगुरदी देसना, कर आस्रवदी वाड़ि।
ल्द्धी पैड़ी मोक्खदी, करम कपाट उघाडि॥ २३

११ करम-छत्तीसी—३६ दोहोंमें जीव और अजीवका वर्णन बड़ी मार्मिकतासे किया गया है और बतलाया है कि अजीव पुद्गलकी पर्याय ही कर्म है और जीव उनसे जुदा है। इनके भेदको समझना चाहिए। पुद्गलके संसर्गसे जीवकी कैसी दशाएँ होती हैं—

पुदगलकी सगति करै, पुदगल ही सौं प्रीत।
पुदगलकौं आपा गनै, यहै भरमकी रीत॥ १७
जे जे पुदगलकी दसा, ते निज मानै हस।
याही भरम विभावसौं, बढ़ै करमकौ बस॥ १८
ज्यों ज्यों करम विपाकवस, ठानै भ्रमकी मौज।
त्यौं त्यौं निज सपति दुरै, जुरै परिग्रह फौज॥ १९
ज्यौं बानर मदिरा पिए, बीछीडकित गात।
भूत लगै कौतुक करै, त्यौं भ्रमकौ उतपात॥ २०

भ्रम समैकी-भूलसों, लहै न सहज सुकीय।
करमरोग समुझे नहीं, यह संसारी जीय ॥ २१

१२ ध्यान-बत्तीसी—इसमें पहले रूपस्थ, पदस्थ, पिण्डस्थ और रूपातीतका और फिर आर्त्त रौद्र आदि कुध्यानों और शुक्ल ध्यानोंका वर्णन है। अन्तमें कहा है—

सुकल ध्यान औपद लगै, मिटै करमको रोग।
कोइला छाड़ै कालिमा, होत अगनि-संजोग ॥ ३२

इसके प्रारम्भमें गुरु भानुचन्द्रका स्मरण किया है।

१३ अध्यातम-बत्तीसी – ३२ दोहोंमें चेतन जीव और अचेतन पुद्गलका भेद समझाया है—

चेतन पुद्गल यों मिले, ज्यों तिलमैं खलि तेल।
प्रगट एकसे देखिए, यह अनादिको खेल ॥ ४
ज्यों सुवास फल-फूलमैं, दही-दूधमैं घीव।
पावक काठ-पखानमैं, त्यौं सरीरमें जीव ॥ ७
भववासी जानै नहीं, देव धरम गुरु भेद।
परयौ मोहके फंदमैं, करै मोखको खेद ॥ २०
देव धरम गुरु हैं निकट, मूढ न जानै ठौर।
बंधी दिष्टि मिथ्यातसौं, लखै औरकी और ॥ २२
भेखधारिकौं गुरु कहै, पुन्नवतकौं देव।
धरम कहै कुलरीतकौं, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३

१४ ज्ञान-पचीसी—अपने मित्र उदयकरणके और अपने हितके लिए २५ दोहोंमें ज्ञानगर्भ उपदेश दिया गया है—

सुर-नर-तिर्यग जोनिमैं, नरक निगोद भमंत।
महामोहकी नींदसौं सोए काल अनंत ॥ १
जैसैं जुरके जोरसौं, भोजनकी रुचि जाइ।
तैसै कुकरमके उदै, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २

लगै भूख जुरके गए, रुचिसौं लेइ अहार।
असुभ गए सुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३
जैसैं पवन झकोरतैं, जलमैं उठै तरग।
त्यौं मनसा चचल भई, परिग्रहके परसग ॥ ४
जहॉ पवन नहिं सचरै, तहा न जलकल्लोल।
त्यौं सब परिगह त्यागलौं, मन-सर होइ अडोल ॥ ५

१५ **शिवपचीसी**—इसमें जीवको शिवस्वरूप बतलाया है और शिव या महादेवको निश्चयनयसे शंकर, शभु, त्रिपुरारि, मृत्युजय आदि नामोंको सार्थक कहा है—

शिवसरूप भगवान अवाची, शिवमहिमा अनुभवमति साची।
शिवमहिमा जाके घर भासी, सो शिवरूप हुआ अविनासी ॥ ३
जीव और शिव और न होई, सोई जीव वस्तु शिव सोई।
जीव नाम कहिए व्योहारी, शिवसरूप निहचै गुणधारी ॥ ४

१६ **भवसिन्धु-चतुर्दशी**—१४ दोहोंमें ससार-समुद्रको पारकर शिवद्वीपमें पहुँचनेपर जोर दिया है—

जैसैं काहू पुरुषकौं, पार पहुचवे काज।
मारगमाहि समुद्र तहा, कारणरूप जहाज ॥ १
तैसैं सम्यकवतको, और न कछू इलाज।
भवसमुद्रके तरनकौं, मन जहाजसौं काज ॥ २
मन जहाज घटमैं प्रगट, भवसमुद्र घटमाहि।
मूरख मरम न जानहीं, बाहर खोजन जाहि ॥ ३

१७ **अध्यातम फाग**—इसमें १८ दोहे हैं और उनके पहले तीसरे चरणके अन्तमें 'हो' और चौथे चरणके बाद 'भला अध्यातम बिन क्यों पाइए' यह टेक डाली है—

विभ्रम विरस पूरौ भयौ हो, आयौ सहज वसत।
प्रगटी सुरुचि सुगधिता हो, मनमधुकर मयमत ॥
भला अध्यातम बिन क्यो पाइए ॥ २

१८ **सोलह तिथि**—इसमें पड़िवा (प्रतिपदा), दूज, तीज आदिसे लेकर पूनो तककी तिथियोंका अर्थ परमार्थ दृष्टिसे बतलाया है—

परिवा प्रथम कला घट जागी, परम प्रतीत रीत रस पागी।
प्रतिपद परम प्रीत उपजावे, वहै प्रतिपदा नाम कहावे ॥ १
आठैं आठ महामद भजै, अष्टसिद्धिगतिसौं नहिं रजै।
अष्ट करममल मूल वहावै, अष्टगुणातम सिद्ध कहावै ॥ ८

१९ **तेरह काठिया**—इसके प्रारंभमें कहा है—

जे बटपारे वाटमें, करैं उपद्रव चोर।
तिन्हैं देस गुजरातमें, कहैं काठिया चोर।
त्यों ए तेरह काठिया, करै धरमकी हान,
तातैं कछु इनकी कथा, कहौं विसेस वखान ॥

फिर जुआ, आलस, शोक, भय, कुकथा, कौतुक, क्रोध, कृपणता, अज्ञान, भ्रम, निद्रा, मद और मोहको चोर बतलाकर कहा है—

एही तेरह करम ठग, लेहिं रतनत्रय छीन।
यातैं संसारी दशा, कहिए तेरह तीन।

२० **अध्यातम गीत**—यह गीत राग गौरीमें है। इसकी टेक है, "मेरे मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज सनेही जो मिलै।" सुमतिरूप सीता आतम रामसे कहती है—

मैं विरहिन पियके आधीन, यौं तलफौं ज्यौं जलविन मीन ॥ मेरा० ३
बाहर देखूं तो पिय दूर, घट देखूं घटमैं भरपूर ॥ मेरा० ४
मैं जग ढूँढ फिरी सब ठौर, पियके पटतर रूप न और ॥ ११
पिय जगनायक पिय जगसार, पियकी महिमा अगम अपार ॥ १२

२१ **पंचपदविधान**—दो दोहों और १० चौपई छन्दोंमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुका साधारण वर्णन है।

२२ **सुमतिदेवीके अष्टोत्तरशत नाम**—पाँच रोड़क और एक घत्तामें सुमतिदेवीके १०८ नाम दिये हैं—सुमति, सुबुद्धि, सुधी, सुबोधनिधिसुता, शेमुषी, स्याद्वादिनी, आदि।

२३ **शारदाष्टक**—आठ भुजगप्रयात छन्दोंमें सत्यार्थ शारदाकी विविध नाम देकर स्तुति की है—

जिनादेशजाता जिनेंद्रा विख्याता, विशुद्धा प्रबुद्धा नमों लोकमाता।
दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी, नमों देवि वागेश्वरी जैनबानी ॥ २

२४ **नवदुर्गाविधान**—शीतला, चंडी, कामाख्या, जोगमाया आदि नौ दुर्गाओंको सुमतिदेवीके रूपमें नौ कवित्तोंमें घटाया है—

यहै परमेश्वरी परम रिद्धिसिद्धि साधै, यहै जोगमाया व्यवहार ढार ढरनी।
यहै पदमावती पदम ज्यौं अलेप रहै, यहै शुद्ध सकति मिथ्यातकी कतरनी।
यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमैं, यहै अखडित शिवमहिमा अमरनी।
यहै रसभोगिनी वियोगमैं वियोगिनी है, यहै देवी सुमति अनेक भाति बरनी ॥९

२५ **नामनिर्णयविधान**—इसके ११ पद्योंमें नामकी अस्थिरता और भ्रमको बड़े अच्छे ढगसे व्यक्त किया है—

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम, एक एक नाम देखिए अनेक जनमैं।
या जनम और वा जनम और आगैं और, फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमैं॥
कोई कलपना कर जोई नाम धरै जाकौ, सोई जीव सोई नाम मानै तिहू पनमैं।
ऐसो बिरतत लखि सतसौं सुगुरु कहैं, तेरो नाम भ्रम तू विचार देखि मनमैं ॥ ७

२६ **नवरत्न कवित्त**—नौ छप्पय छन्दोंमें नौ सुभाषित हैं और उन्हें अमर, घटकर्पर, वेताल, वररुचि, शकु, वराहमिहिर, कालिदासके समान नौ रत्न बतलाया है। एक सुभाषित यह है—

ग्यानवत हठ गहै, निधन परिवार बढावै।
विधवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
वृद्ध न समुझै धरम, नारि भरता अवमानै।
पडित क्रियाविहीन, राह दुरबुद्धि प्रमानै॥
कुलवत पुरुष कुलविधि तजै, बंधु न मानै बधुहित।
सन्यास धारि धन सग्रहै, ये जगमैं मूरख विदित ॥ ११

२७ **अष्टप्रकारी जिनपूजा**—जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घरूप आठ प्रकारकी पूजा किस फलकी आशासे की जाती हैं, सो दस दोहोंमें बतलाया है—

मलिन वस्तु उज्जल करै, यह सुभाव जलमाहि।
जलसौं जिनपद पूजतैं, कृतकल्क मिटि जाहि ॥ २

२८ दस दान विधान—गो, सुवर्ण, दासी, भवन, गज, तुरग, कुलकलत्र, तिल, भूमि, और रथ इन चीजोंके लोकप्रचलित दानोका आध्यात्मिक अर्थ समझाया है। गजदान यथा—

अष्ट महामद धुरके साथी, ए कुकर्म कुदशाके हाथी।
इनकौ त्याग करै जो कोई, गजदातार कहावै सोई ॥ ७

सवत्स गोदान यथा—

गो कहिए इंद्रिय अभिधाना, बछरा उमग भोग पयपाना।
जो इसके रसमाहि न राचा, सो सवच्छ गोदानी साचा ॥ ३

२९ दस बोल—दस दोहोंमें जिन, जिनपद, धर्म, जिनधर्म, जिनागम, वचन, जिनवचन, मत और जिनमतका स्वरूप कहा है। मतके विषयमें यथा—

थापै निजमतकी क्रिया, निंदै परमतरीत।
कुलाचारसौं बधि रहै, यह मतकी परतीत ॥ १०

३० पहेली—यह कहरा नामाकी चालमें कुमति सुमति नामक दो व्रजनारियोंके बीच उपस्थित की गई पहेली है जिनका पति अवाची है—

कुमति सुमति दोऊ व्रजवनिता, दोउकौ कत अवाची।
वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासौं राची ॥ १
यह सुबुद्धि आपा परिपूरन, आपा-पर पहिचानै।
लखि लालनकी चाल चपलता, सौत साले उर आनै ॥ २
करै विलास हास कौतूहल, अगनित सग सहेली।
काहू समै पाइ सखियनसौं, कहै पुनीत पहेली ॥ ३

३१ प्रश्नोत्तर दोहा—इसमें पॉच प्रश्न और पॉच ही उनके उत्तर दिये हैं। यथा—

प्रश्न— कौन वस्तु वपुमाहि है, कहॉ आवै कहॉ जाइ।
ग्यानप्रकार कहा लखै, कौन ठौर ठहराइ ॥
उत्तर— चिदानंद वपुमाहि है, भ्रममै आवै जाइ।
ग्यान प्रगट आपा लखै, आपमाहि ठहराइ ॥

३२ प्रश्नोत्तरमाला—उद्धव हरि-सवादके रूपमें २१ पद्योंमें है। पहलेके ९ दोहोंमें समता, दम, तितिक्षा, धीरज आदिके २४ प्रश्न हैं और फिर अन्तकी १० चौपाइयोंमें उनके उत्तर हैं। यथा—

समता-ग्यान-सुधारस पीजै, दम इद्रिनकौ निग्रह कीजै।
सकटसहन तितिच्छा बीरज, रसना मदन जीतवौ धीरज ॥

अन्तमें कहा है—

इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धव-हरिसवाद।
भाषा कहत बनारसी, भानु सुगुरुपरसाद ॥ २१

३३ अवस्थाष्टक—इसके आठ दोहोंमें कहा है कि निश्चयनयसे चेतन-लक्षण जीव सब एक जैसे हैं, पर व्यवहार नयसे मूढ, विचक्षण और परम ये तीन भेद हैं। मूढ एक प्रकार, विचक्षण तीन प्रकार और परमातमा जगम और अविचल दो प्रकार, इस तरह छह प्रकारके जीव हैं। फिर सबका स्वरूप बतलाया है। अन्तमें कहा है—

जिहि पदमैं सब पद मगन, ज्यौं जलमैं जलबुद।
सो अविचल परमातमा, निराकार निरदुद ॥ ८

३४ षट्दर्शनाष्टक—इसमे शैव, बौद्ध, वेदान्त, न्याय, मीमासक, और जैनमतका स्वरूप एक एक दोहेमें दिया है। जैनमत यथा—

देव तीर्थंकर गुरु जती, आगम केवलि वैन।
धरम अनन्तनयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७

३५ चातुर्वर्ण—पॉच दोहोंमें ब्राह्मणादि चार वर्णोंका वास्तविक अर्थ बतलाया है। ब्राह्मण यथा—

जो निहचै मारग गहै, रहै ब्रह्मगुनलीन।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥

३६ अजितनाथके छन्द—यह कविकी सभवतः सबसे पहली रचना है। यह उन्होंने अपनी ससुराल खैराबादमें लिखी थी। इसमें अजितनाथको

'खराबादमडन' विशेषण दिया है। खैराबादके श्वेताम्बर मन्दिरकी यह मुख्य मुख्य प्रतिमा होगी। इसके प्रारम्भमे उन्होंने सुगुरु भानुचन्द्रका स्मरण भी किया है जो खरतरगच्छके थे।

३७ शांतिनाथस्तुति—कविकी यह प्रारभकी रचना जान पडती है। पहली दो ढालोंमें 'नरोत्तमकौ प्रभु' कहकर अपने मित्र नरोत्तम खोबराको स्तुतिमे शामिल किया है।

सकल सुरेस नरेस अरु, किन्नरेस नागेस।
तिनि गन वदित चरन जुग, बन्दू साति जिनेस॥ आदि।

३८ नवसेना विधान—इसमें पत्ति, सेना, सेनामुख, अनीकिनी, वाहिनी, चमू, वरूथिनी, दड और अक्षोहिणी सेनाके इन नौ भेदोंकी शास्त्रोक्त गणना बतलाई है कि किसमें कितने घोड़े, रथ, हाथी, सुभट और पायक रहते हैं।

३९ नाटकसमयसारके कवित्त—इसमें पहला ८६ वें सस्कृतकलशका दूसरा १०४ वे कलशका अनुवाद है, तीसरा चौथा पद्य किन कलशोंका अनुवाद है, पता नहीं।

४० मिथ्यामत वाणी—तीन कवित्तोंमें कहा है कि नारायणको परनारी-रत बतलाना, ब्रह्माको निज कन्यासे ब्याह करनेवाला, द्रौपदीको पचभरतारी कहना यह सब मिथ्या है।

४१ फुटकर कविता—इसमें १० इकतीसा कवित्त, ३ सवैया, ३ छप्पय १ वस्तुछन्द और ५ दोहे हैं। अर्धकथानकका २९ वाँ कवित्त छत्तीस पौनका और ६२ वाँ सवैया 'पुण्यसजोग जुरैं रथपायक' आदि शामिल कर लिया गया है। ११ वें छप्पय छन्दमें हींग, मोम, लाख, मधु, मादक द्रव्य, नील आदिका व्यापार न करनेको कहा है। १२ वे कवित्तमें मोती, मूँगा, गोमेदक आदि रत्नोंके नाम हैं। १४ वें छापयमें चौदह विद्याओंके नाम हैं। १६ वे वस्तु छन्दमें कर्मकी एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंके नाम हैं।

१—बाबू कामताप्रसादजी जैनके सग्रहमें एक गुटका है जिसमें 'खैराबाद-पार्श्व-जिनस्तुति' नामकी एक रचना है जिसे खरतरगच्छके प० क्षान्तिरगगणिने वि० स० १६२६ में रचा था। इससे भी अनुमान होता है कि खैराबादमें कोई श्वेताम्बर मन्दिर था।

४२ गोरखनाथके वचन—इसकी प्रत्येक चौपाईके अन्तमें 'कह गोरख' 'गोरख बोलै' कहकर सन्तों जैसी अटपटी बातें कहीं हैं। देखिए—

जो भग देख भामिनी मानै, लिंग देख जो पुरुष प्रमानै।
जो बिन चिन्ह नपुसक जोवा, कह गोरख तीनों घर खोबा ॥ १
जो घर त्याग कहावै जोगी, घरवासीको कहै जो भोगी।
अंतर भाव न परखै जोई, गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २
माया जोर कहै मैं ठाकर, माया गए कहावै चाकर।
माया त्याग होइ जो दानी, कह गोरख तीनों अग्यानी ॥ ४
कोमल पिंड कहावै चेला। कठिन पिंड सो ठेलापेला।
जूना पिंड कहावै बूढा, कह गोरख ये तीनों मूढा ॥ ५
सुन रे बाचा चुनिया मुनिया, उलट बेघसौं उलटी दुनिया।
सतगुरु कहैं सहजका धधा, वादविवाद करै सो अंधा ॥ ७

४३ **वैद्य लक्षणादि कविता**—इसमें ४१ पद्य हैं। पहले वैद्य, ज्योतिषी, वैष्णव, मुसलमान, गहव्वर, आदिके लक्षण कहे हैं। मुसलमानके लक्षणमें कहा है—

जो मन मूसै आपनौ, साहिबके रुख होइ।
ग्यान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोइ ॥
एकरूप हिन्दू तुरुक, दूजी दसा न कोइ।
मनकी दुविधा मानकर, भए एकसौं दोइ ॥
दोऊ भूले भरममैं, करैं वचनकी टेक।
राम राम हिंदू कहैं, तुर्क सलामालेक ॥
इनके पुस्तक बाचिए, वेहू पढैं कितेब।
एक वस्तुके नाम दो, जैसैं शोभा जेब ॥
तनकौं दुविधा, जे लखै, रग बिरगी चाम।
मेरे नैननि देखिए, घट घट अतरराम ॥
यहै गुपत यह है प्रगट, यह बाहर यह माहि।
जब लगि यह कछु है रहा, तब लगि यह कछु नाहि ॥ ११

आगे ३० दोहोंमें अध्यात्मभावके सुन्दर सुभाषित हैं।

४४ **परमार्थ वचनिका**—यह लगभग ९ पृष्ठोंका गद्यलेख है। इससे बनारसीदासजीकी, गद्यरचनाशैलीका पता लगता है। यह पं० राजमलजीकी समयसारकी बालबोधिनी गद्यटीकाके लगभग पचास वर्ष बादकी रचना है। बालबोधिनीके गद्यके नमूनें हमने अन्यत्र दिये हैं। भाषाशास्त्रियोंके अध्ययनमें ये दोनों सहायक होंगे। देखिए—

"मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नहीं जानतौ तातैं पर-स्वरूपविषै मगन होइ करि कार्य मानतु है, ता कार्य करतौ छतौ अशुद्ध व्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टि अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनौ कार्य नहीं मानतौ सतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपकौ ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है ता कार्य करतौ मिश्रव्यवहारी कहिए। केवलज्ञानी यथाख्यात चारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातैं शुद्ध व्यवहारी कहिए। जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए। शुद्ध व्यवहारकी सरहद्द त्रयोदशम गुणस्थानकसौं लेइ करि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।"

"इन बातनकौ व्यौरो कहाताई लिखिए, कहा ताई कहिए। वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार बहुत कहा लिखहिं। जो ग्याता होइगो सो थोरो ही लिख्यौ बहुत करि समुझैगो, जो अग्यानी होइगो सो यह चिट्ठी सुनैगो सही परन्तु समुझैगो नहीं। यह वचनिका यथाका यथा सुमति प्रवान केवली वचनानुसारी है। जो याहि सुनैगो समुझैगो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण"।

जान पड़ता है यह वचनिका चिट्ठीके रूपमें लिखकर कहींको भेजी गई थी।

४५ **उपादान निमित्तकी चिट्ठी**—यह भी गद्यमें लिखी हुई है और छपे हुए ६–७ पृष्ठोंकी है। कुछ अश देखिए—

"प्रथम ही कोऊ पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा, ताकौ व्यौरौ- निमित्त तो संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहजशक्ति, ताकौ व्योरौ—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताकौ व्योरो— द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताकौ व्योरो

द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना । पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना । ”

४५—**निमित्त उपादानके दोहे**—निमित्त और उपादानका पुराना विवाद है । सात दोहोंमें दोनोंको स्पष्ट किया गया है—

> गुरु उपदेस निमित्त विन, उपादान बलहीन ।
> ज्यौं नर दूजे पाव विन, चलवेकौं आधीन ॥ १
> हौं जानै था एक ही, उपादानसौं काज ।
> थकै सहाई पौन विन, पानी माहि जहाज ॥ २

४६ **अध्यात्मपदपक्ति**—इसमें भैरव, रामकली, विलावल, आसावरी, धनाश्री, सारग, गौरी, काफी आदि रागोंमें २१ पद या भजन हैं जो बहुत मार्मिक और सुन्दर हैं । नमूनेका एक पद देखिए—

> हम बैठे अपनी मौनसौं ।
> दिन दसके महमान जगतजन, बोलि बिगारैं कौनसौं ॥ हम बै० १
> गए बिलाय भरमके बादर, परमारथपथ पौनसौं ।
> अब अतरगति भई हमारी, परचै राधारौनसौं ॥ हम० २
> प्रगटी सुधापानकी महिमा, मन नहिं लागै बौनसौं ।
> छिन न सुहाइ और रस फीके, रुचि साहिबके लौनसौं ॥ हम० ३
> रहे अघाइ पाइ सुखसपति, को निकसै निज भौनसौं ।
> सहज भाव सदगुरुकी सगति, सुरझै आवागौनसौं । हम० ॥ ४

इसके आगे पदका नम्बर ५ देकर ८ दोहे और हैं, जो जिनमुद्रा या जिन-प्रतिमाके ही सम्बन्धके हैं । जान पड़ता है, पूर्वोक्त दो दोहे और ये आठ दोहे एक ही पदके हैं । दो दोहोंके बाद “ इहि विधि देव अदेवकी मुद्रा लख लीजे । ” यह टेक दी है और सबको ‘ रागविलावल ’ बतलाया है ।

दसवें पदको ‘ राग बरवा ’ लिखा है । यह बनारसीदासजीने अपने मित्र थानमल्ल और नरोत्तमके लिए रचा है—

१—बनारसीविलासकी इस समय कोई हस्तलिखित पुरानी प्रति नहीं मिली । ये नमूने छपी हुई प्रतिपरसे दिये गये हैं ।

उधवा गाइ सुनाएहु चेतन चेत।
कहत बनारसि थान नरोत्तम हेत ॥ २६

प्रारभ इस प्रकार किया है—

संवरौं सारदसामिनि औ गुरु ' भान '।
कछु बलमा परमारथ करौं बखान ॥ बालम० ४
काय नगरिया भीतर चेतन भूप।
करम लेप लिपटाएल, जोतिसरूप ॥ बालम०

२१ वें पद ' राग काफी ' में आगरेके ' चिन्तामन स्वामी ' की मूर्तिकी स्तुति है—

चिंतामन स्वामी साचा साहब मेरा।
शोक हरै तिहु लोककौ, उठि लीजतु नाम सवेरा ॥ चि०
बिंब बिराजत आगरे, थिर थान थयौ शुभ बेरा।
ध्यान धरै बिनती करै, बानारसि बंदा तेरा ॥ चि०

४७-४८ परमारथ हिंडोलना और **राग मलार** तथा **सोरठ**— वास्तवमें ये भी दोनों पद ही हैं, परन्तु पदपंक्तिमें शामिल नहीं किये गये, अलग रखे गये हैं। अन्य पदोंके ही समान ये हैं।

इस तरह बनारसीबिलासकी समस्त रचनाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया। पाठक देखेंगे कि इसमें कविको ठीक ठीक समझनेके लिए काफी

१—अबसे ५२ वर्ष पहले सन् १९०५ में मैंने इसे सम्पादित करके और विस्तृत भूमिका लिखकर जैनग्रन्थरत्नाकरद्वारा प्रकाशित किया था। यद्यपि परिश्रम बहुत किया था, परन्तु साधनोंकी कमीसे, एक ही हस्तलिखित प्रतिका आधार मिलनेसे और पुरानी भाषाका ठीक ज्ञान न होनेसे वह बहुत ही त्रुटिपूर्ण रहा। उसके पचास वर्ष बाद सन् १९५५ में जब यह जयपुरसे प्रकाशित हुआ, तो देखा कि मेरे उस पहले संस्करणको ही प्रेसमें देकर छपा लिया गया है, दूसरी प्रतियोंके सुलभ होनेपर भी उनका उपयोग नहीं किया गया और उसमें पहलेसे भी अधिक अशुद्धियाँ और त्रुटियाँ भर गई हैं। इससे बड़ा दुःख हुआ। अब भी इसका एक प्रामाणिक संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होनेकी आवश्यकता है।

सामग्री है। सूक्ष्म अध्ययनसे उनके क्रमविकासका, कवित्तशक्तिके विकासका और दार्शनिक साम्प्रदायिक विकासका भी पता लगता है।

४ अर्धकथानक

चौथा ग्रन्थ यह 'अर्ध कथानक' है जो एक तरहसे उनका आत्मचरित और उनके समयके उत्तरभारतकी सामाजिक अवस्था और राजा प्रजाके सम्बन्धोंपर प्रकाश डालता है। आश्चर्य यह है कि भारतीय साहित्यकी इस अद्वितीय आत्म-कथाका प्रचार बहुत ही कम हुआ है। पिछले दो तीनसौ वर्षोंके जैन ग्रन्थकारों-तकको भी इसका पता नहीं रहा है, ग्रन्थ-भण्डारोंमें भी इसकी हस्तलिखित प्रतियॉ बहुत कम देखी गई हैं। इसका कारण साम्प्रदायिक कट्टरता और विचार सकीर्णता ही जान पड़ता है।

१—सन् १९०५ में बनारसीविलासकी विस्तृत भूमिकामें 'अर्ध कथानक' का प्रायःपूरा अनुवाद दे दिया था परन्तु मूल पाठ उसमें नहीं था। वह कोई ३८ वर्षके बाद सन् १९४३ में प्रकाशित हो सका। लगभग उसी समय प्रयागके सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० माताप्रसाद गुप्तने उसे 'अर्द्धकथा' नामसे प्रकाशित किया और उसकी खोजपूर्ण भूमिका लिखी। 'अर्द्धकथा' केवल एक ही प्रतिके आधारसे सम्पादित हुई थी, इस लिए उसमें पाठकी अशुद्धियॉ बहुत रह गई हैं और बहुतसे पाठ भी छूटे गये हैं। ३९२ न० का 'मोती हार लियौ हुतो' आदि दोहा नहीं है, ५५९ से ५६६ नम्बरके ८ पद्य बिल्कुल गायब हैं, ६२२, ६२३ और ६६५ नम्बरके पद्य भी छूटे हैं और आगे ६७१ नं० का 'नगर आगरेमें बसे' आदि दोहा नहीं है। इस तरह सब मिलाकर १३ पद्य कम हैं और समस्त पद्योंकी सख्या ६६२ है। इसपर डॉ० सा० लिखते हैं कि "यद्यपि रचनाके अन्तमें उसकी छन्दसख्या ६७५ कही गई है पर वह वास्त-वमें है ६६२ ही। और कहींपर ज्ञात नहीं होता कि पक्तियॉ छूटी हुई हैं, क्यों कि कथाकी धारा अबाध रूपसे प्रवाहित होती है। ऐसी दशामें दो बातें सभव ज्ञात होती है, या तो कोई समस्त प्रसग—एक या अधिक—ग्रन्थ-निर्माणके बाद कभी स्वतः लेखक या किसी अन्य व्यक्तिद्वारा इस प्रकार निकाल दिया गया कि वस्तु विकासमें कोई व्यवधान उपस्थित न हुआ, अथवा कविने जो छन्दसख्या लिखी उसमें उससे कोई गणनाकी भूल हो गई। पाठ प्रमाद

५ नवरसरचना

यह पोथी सं० १६५७ में लिखी गई थी जब कि कविकी अवस्था चौदह वर्षकी थी।

> " पोथी एक बनाई नई, मित हजार दोहा चौपई।
> तामें नवरसरचना लिखी, पै विशेस बरनन आसिखी।
> ऐसे कुकवि बनारसी भए। मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥१७९"

अर्थात् इस पोथीमें इश्क (प्रेम=मुहब्बत) का विशेष वर्णन था। विरक्ति हो जानेपर स० १६६२ में जब इसे गोमती नदीमें बहा दिया गया, तब लिखा है कि—

> मैं तो कल्पित वचन अनेक।
> कहे झूठ सब साचु न एक ॥ २६६

एक झूठ बोलनेवालेको नरकदुःख भोगना पड़ता है, पर मैंने तो इसमें अनेक कल्पित वचन लिखे हैं जो सब ही झूठ हैं, तब मेरी बात कैसी बनेगी?

भी उक्त लेखके सम्बन्धमें असभव नहीं कहा जा सकता।" इसपर हमारा निवेदन है कि स्वयं कवि गणनाकी ऐसी भूल नहीं कर सकते। उन्होंने अपने दूसरे ग्रन्थ नाटक समयसारमें भी छन्दोंकी सख्या ७२७ दी है और वह उतनी ही है। ग्रन्थकी प्रतिलिपि करनेवालेने ही १३ छन्द छोड़ दिये हैं। रही वस्तु-विकासमें कोई व्यवधान उपस्थित न होनेकी बात, सो बारीकीसे विचार करनेसे व्यवधान साफ नजरमें आ जाते हैं। ३९१ वें छन्दमें कहा है कि बहुत उपाय करने पर भी मन्दा कपड़ा जब नहीं बिका, तब कवि एकाएक ऐसा विचार कैसे कर सकता है कि जवाहरातका व्यापार अच्छा है। छूटे हुए ३९२-९३ छन्दमें कहा है कि मोतीहार जो ४२ रुपयोंमे खरीदा था, वह ७० में बिका और उसमें पौन-दूने हो गये, इस लिए जवाहरातका धंदा अच्छा। इसी तरह ५५८ वे छन्दके बाद एकाएक तीसरे दिन अगनदासका सबलसिहके पास जाना भी बतलाता है कि बीचमें बहुत कुछ रह गया है। ६२१ के बाद स० ९१ और ९२ सवत्की बात कहनेवाले दो छन्द छूटे हुए हैं, जिनका छूटना पकड़में आ सकता है, इसी तरह ६७० वे छन्दके बाद 'ताके मन आई यह बात' में 'ताके' का सम्बन्ध तभी बैठ सकता है जब बीचमें ६७१ वाँ छन्द हो।

इससे ऐसा मालूम होता है कि यह कोई मुक्तक काव्य होगा और उसमें कल्पनाके सहारे खड़े किये गए किसी प्रेमी-युगल (आशिक-माशूक) की नवरसयुक्त कथा लिखी होगी, जो एक हजार दोहा-चौपइयोंमें पूरी हुई थी। कल्पितको ही वे झूठ कहते जान पड़ते हैं। जिस चीजको उन्होंने रहने ही नहीं दिया, कहीं जिसका अस्तित्व ही नहीं है, उसके विषयमें अधिक और क्या बतलाया जा सकता है?

'बनारसी'के नामकी कई अन्य रचनाएँ

इधर बनारसीके नामवाली कई रचनाऍ प्रकाशमें आई हैं जिनके विषयमें कहा जाता है कि वे इन्हीं बनारसीदासकी रची हुई हैं। यहाँ उनकी जॉच कर लेना आवश्यक मालूम होता है।

१—**मोहविवेकजुद्ध**—यह दोहा और चौपाई छन्दोंमें हैं और सब मिलाकर इसमें ११० पद्य हैं। पहले इसके प्रारभके तीन दोहोंपर विचार कीजिए—

बपुमें बरणि बनारसी, विवेक मोहकी सैन।
ताहि सुनत स्रोता सबै, मनमैं मानहिं चैन॥ १
पूरब भए सुकवि मल्ल, लालदास गोपाल।
मोह-विवेक किए सु तिन्ह, वाणी बचन रसाल॥ २
तिंनि तीनहु ग्रथनि, महा सुलप सुलप सधि देख।
सारभूत सछेप अब, साधि लेत हौं सेष॥ ३

अर्थात् मुझसे पहले सुकवि मल्ल, लालदास और गोपालने मोहविवेक (जुद्ध) बनाये हैं, उनको देखकर सारभूत सक्षेपमें इसे रचता हूँ।

१—पं० कस्तूरचन्दजी काशलीवालने लिखा है कि जयपुरके बड़े मन्दिरके शास्त्रभडारमें इसकी पॉच प्रतियॉ हैं, तीन गुटकोंमें और दो स्वतत्र। वीरवाणीके वर्ष ६ के अक २३-२४ में श्रीअगरचन्दजी नाहटाने इसे पूरा प्रकाशित कर दिया है। वीर-पुस्तक-भडार, मनिहारोंका रास्ता जयपुरने इसे पुस्तकाकार भी निकाला है। मेरे पास भी इसकी एक अधूरी कापी (७७ पद्य) है, जो स्व० गुरुजी (पन्नालालजी बाकलीवाल)ने जयपुरसे ही नकल करके भेजी थी।

इन तीनमेंसे पहले सुकवि मल्ल हैं, जिनका 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' जयपुरके किसी दिगम्बर भंडारमें है, जिसे देखकर श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसका परिचय भेजनेकी कृपा की है। प्रतिमें प्रबोधचन्द्रोदयके साथ उसका दूसरा नाम 'मोह-विवेक' भी दिया है। मल्ल कविका प्रसिद्ध नाम मथुरादास और पिताप्रदत्त नाम देवीदास था। वे अन्तर्वेदके निवासी थे[1]। ग्रन्थमें सब मिलाकर ४६७ चौपाइयाँ हैं। यह कृष्णमिश्र यतिके संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदयके आधारसे लिखा गया है[2]। २५ पत्रोंका ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल नाहटाजी संवत् १६०३ बतलाते हैं[3]।

संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटककी रचना बुन्देलखंडके चन्देलराजा कीर्तिवर्माके समय हुई थी और कहा जाता है कि वि० सं० ११२२ में यह उक्त राजाके समक्ष खेला भी गया था। इसके तीसरे अंकमें क्षपणक (जैनमुनि) नामक पात्रको बहुत ही निन्द्य और घृणित रूपमें चित्रित किया है। वह देखनेमें राक्षस जैसा है और श्रावकोंको उपदेश देता है कि तुम दूरसे चरण-वन्दना करो और यदि वह तुम्हारी स्त्रियोंके साथ अतिप्रसंग करे, तो तुम्हें ईर्ष्या न करनी चाहिए। फिर एक कापालिनी उससे चिपट जाती है जिसके आलिंगनको वह मोक्षसुख समझता है और फिर महा-भैरवके धर्ममें दीक्षित होकर कापालिनीकी जूठी शराब पीकर नाचता है[5]।

१—मथुरादास नाम विस्तारयौ, देवीदास पिताको धारयौ।
अन्तर्वेद देसमैं रहै, तीजे नाम मल्ह कवि कहै॥ ८

२—कृष्णभट्ट करता है जहाँ, गंगासागर भेटे तहाँ।

३—सोरहसै संवत जब लागा, तामहिं बरस एक त्रदर्श (?) भागा।
कातिक कृष्णपक्ष द्वादसी, ता दिन कथा जु मनमैं बसी॥

इसमें 'त्रदर्श' पाठ कुछ समझमें नहीं आया, और तब यह संवत् १६०३ कैसे हो गया?

४—निर्णयसागर प्रेस, बम्बईद्वारा प्रकाशित।

५—वादिचन्द्रसूरिने (जैन) ने शायद इन्हीं आक्षेपोंका बदला चुकानेके लिए 'ज्ञानसूर्योदय नाटक' संस्कृतमें लिखा है। मैंने इसका हिन्दी अनुवाद करके सन् १९१० के लगभग जैनग्रन्थरत्नाकर द्वारा प्रकाशित किया था।

दूसरे कवि हैं लालदास। ना० प्र० सभाकी खोज रिपोर्ट (१९०१) के अनुसार आगरेमें लालदास नामक कविने वि० स० १७३४ में 'अवधविलास' नामका एक ग्रन्थ लिखा था। मोह-विवेक-जुद्ध भी इन्हींका लिखा हुआ होगा, जिसकी प्रति श्रीनाहटाजीके ग्रन्थसग्रहमें है। उन्होंने इसका आद्यन्त्य अश भेजा है—

आदि—सकल साधु गुराके पग परौं, रामचरन हिरदैपर धरौं।
गुरु परमानदकौ सिर नाऊ, निरमल बुद्धि देहि गुन गाऊ॥

अन्त—लालदास परसादतैं, सफल भए सब काज।
विष्णुभक्ति आनद बढ्यौ, अति विवेककौ राज॥
तब लग जोगी जगतगुरु, जब लग रहै उदास।
सब जोगी आस्था .., जय गुरु जोगीदास॥

यह प्रति स० १७६७ की लिखी हुई है, पर इसमें रचनाकाल नहीं दिया है। नाहटाजी लिखते हैं कि आगरानिवासी लालदासके 'इतिहास भाषा' का निर्माणकाल स० १६४३ है, सो वे ही लालदास मोहविवेकजुद्धके कर्त्ता होंगे।

उनका समय कोई भी हो, पर वे किसी वैष्णव सम्प्रदायके हैं।

तीसरे कवि हैं गोपाल। गोपाल्दास ब्रजवासी नामक कविकी दो रचनाओंका उल्लेख सभाकी खोज-रिपोर्ट (सन् १९०२) में किया गया है, एक 'मोह-विवेक' और दूसरी 'परिचय स्वामी दादूजी'। रागसागरोद्भवमें भी इनके पद मिलते हैं। उन्होंने 'मोह-विवेक' की रचना स० १७०० में की थी। ये सन्त दादू दयालके अनुयायी थे[1]।

इस परिचयसे हम समझ सकते हैं कि ये तीनों ही कवि अजैन हैं और अद्वैतवादी, दादूपथी, कृष्णभक्तिपथी आदि हैं और जिस प्रबोधचन्द्रोदयको इन्होंने अपना आधार मानकर मोहविवेकजुद्ध लिखे हैं, वह जैनधर्मको बहुत ही घृणितरूपमें चित्रित करनेवाला है। तब क्या बनारसीदासजीको अपना 'मोह-

---

१—नाहटाजी लिखते हैं कि दादूपन्थी 'जन गोपाल' का समय खोज-विवरणमें १६५७ के लगभग बतलाया है और उनके रचे हुए 'मोह-विवेक' का उल्लेख 'दादू सम्प्रदायका सक्षिप्त इतिहास' के पृ० ७६ पर किया है। पर 'जन गोपाल' और 'गोपाल' दो पृथक् भी हो सकते हैं।

विवेकयुद्ध' लिखनेके लिए इससे अच्छा आधार और नहीं मिल सकता था। वास्तवमें मोहविवेकयुद्धके कर्ता ये बनारसीदास कोई दूसरे ही हैं और उनका धर्म जैनी ना किसी पन्थका है।

इसके लिए दो बातें कही जाती हैं, एक तो यह कि मोहविवेकयुद्धकी प्रतियाँ अनेक जैनभण्डारोंमें पाई गई हैं और दीवानजीके भण्डारकी एक बटे भण्डारके एक गुटकेमें बनारसीविलासके साथ यह भी लिखा हुआ है और दूसरी बात यह कि इसमें दो दोहे इस प्रकार हैं—

श्री जिनभक्ति सुदृढ़ बल, मंदर मुनि सरसंत ।
कहै काम तव मैं नहीं, त्यों ही सु आयमन्त ॥ ५८
अविभचारिणी जिनभगति, आतम अंग सहाय ।
कहै काम ऐसी जहाँ, मेरी तहाँ न बसाय ॥ ३२

इसके सिवाय अन्तमें 'बरनन करत बनारसी, समकित नाम सुभाय' पद पढ़ा हुआ है।

परन्तु एक तो जब जैनभण्डारोंमें सैकड़ों अजैन ग्रन्थ संग्रह किये गये हैं तब उनमें इसका भी संग्रह आश्चर्यजनक नहीं और दूसरे उक्त दोहोंके पाठोंमें हमें बहुत सन्देह है। प्रतिलिपि करनेवाले 'हरिभगति' की जगह 'जिनभगति' पाठ आसानीसे बना सकते हैं। जिनभक्तिको 'अव्यभिचारिणी' विशेषण किसी जैन रचनामें अब तक नहीं देखा गया। वह हरिभक्ति रामभक्तिके लिए ही प्रयुक्त होता है।

इसके सिवाय मोह, विवेक, काम, क्रोध आदि शब्दोंको देखकर ही तो इसपर जैनधर्मकी छाप नहीं लग सकती। ये शब्द तो प्रायः सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें समानरूपसे व्यवहृत हैं। इनका कर्त्ता जैन होता तो कहीं न कहीं क्रोध मान आदिको 'कषाय' कहता, विवेकको 'सम्यग्ज्ञान' कहता, पर इसमें कहीं भी किसी जैन पारिभाषिक शब्दका उपयोग नहीं किया गया है।

इसमें जो पौराणिक उदाहरण आये हैं वे भी विचारणीय हैं। काम कहता है—

महादेव मोहिनी नचायो, घरमें ही ब्रह्मा भरमायो।
सुरपति ताकी गुरुकी नारी, और काम को सके सहारी ॥

सिंगी रिषिसे बनमहिं मारे, मोतैं कौन कौन नहि हारे।
मायामोह तजैं घरवास, मोतैं भागि जाहि बनवास।
कद-मूल जे भछन कराहीं, तिनिहूकौं मैं छाडौं नाहीं ॥
इक जागत इक सोवत मारू, जोगी जती तपी सघारू ॥

महादेव और मोहिनी, इन्द्र और गुरुपत्नी अहल्या ब्रह्मा और उनकी कन्या, शृंगी ऋषि और वन आदिकी कथाएँ जैन ग्रन्थोंमें इस रूपमें कहीं नहीं आतीं, कन्दमूल भक्षण करनेवाले जोगी जती तापस तो निश्चयसे यह बतलाते हैं कि इनका कर्ता जैन नहीं है।

लोभ कहता है—

देवी देवा लोभ कराहीं, बलिके बाँधे भूतल जाहीं।
मुए पितर मॉगैं जु सराधा, माँगहि पिंड भूत आराधा ॥ ६६
सती अऊत जु पूजा मागैं, जीवत क्यों छूटैं मो आगैं ॥
जोगी रिद्धिकाज सिध साधैं, सन्यासी सब ही आराधैं ॥ ६७
पडित चारौं वेद बखानैं, जगु समझावे आपु न जानै।
सत्य ब्रह्म झूठी सब माया, बाहुड़ि मन पूजामहि आया ॥ ६९

उक्त पक्तियोंपर भी विचार करना चाहिए।

कविवर बनारसीदासजीकी रचनाओंके साथ इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। न तो इसकी भाषा ही ठीक है और न छन्द ही। इसे उनकी प्रारम्भिक रचना मानना भी उनके साथ अन्याय करना है।

२ नये पद—बनारसीविलासके प्रथम सस्करणमें मैंने तीन नये पदसग्रह करके प्रकाशित किये थे और जयपुरके नये सस्करणमें उनके सम्पादकोने दो और नये पद दिये हैं। परन्तु विचार करनेसे उक्त पॉचों ही पद किसी दूसरे 'बनारसी' के मालूम होते हैं और आश्चर्य नहीं जो वे मोहविवेकजुद्धके कर्ताके ही हों।

३ मांझा और पद—वीरवाणीके वर्ष ८, अंक १० में प० कस्तूरचन्दजी कासलीवालने दीवान बधीचन्दजीके शास्त्रभण्डारके गुटकोंमें मिली हुई इस नामकी

१—ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या।

दो कविताएँ प्रकाशित की हैं। 'माझा' में १३ पद्य हैं। भाषा बड़ी ही ऊटपटांग और पञ्जाबीमिश्रित है। इसकी चौथी पंक्तिकी लम्बाई देखकर सन्देह होता है कि इसमें 'दास बनारसी' जबर्दस्ती ऊपरसे डाला गया है। पंक्ति यह है— 'कहत दास बनारसी अलप सुख कारने तैं नरभवबाजी हारी।' जब कि अन्य पंक्तियाँ इतनी लम्बी नहीं हैं। छठी पंक्ति है—"मानुषजनम अमोलक हीरा, हार गँवायो न्यारा।' इसी वजनकी अन्य भी पंक्तियाँ हैं। 'पद' में कहा है—'जगतमें ऐसी रीति चली। चलतेमाँ गाड़ी फटे, सो ऐसी बात भली।' आदि। यह बहुत अशुद्ध छपा है और किसी सन्तका ही मालूम होता है। कबीरके 'चलती-सी गाड़ी फटे, नगद मालको खोया' का अनुकरण जान पड़ता है।

अप्राप्त रचनाएँ

डा० माताप्रसादजी गुप्तने अर्द्धकथाकी भूमिकामें कुछ रचनाओंके प्राप्त न होनेका संकेत किया है। वे लिखते हैं कि "नाममाला, बारह व्रतके कवित्त, अतीत व्यवहार कथन तथा 'आँख दोइ विधि' के पाठ प्राप्त नहीं हैं।" (इनके उल्लेख अर्धकथानकमें हैं।) परन्तु इनमें उन्हें कुछ भ्रम हुआ है। इनमेंसे 'नाममाला' तो प्राप्त है और प्रकाशित हो चुकी है। 'बारह व्रतके कवित्त' का जो उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

> नगर आगरे पहुँचे आइ, सब निज निज घर बैठे जाइ।
> बानारसी गयौ पौसाल, सुनी जती स्रावककी चाल ॥ ५८६
> बारह व्रतके किए कवित्त, अंगीकार किए धरि चित्त।
> चौदह नेम सभालै नित्त, लागे दोष करै प्राछित्त ॥ ५८७

अर्थात् जात्रासे लौटकर सब लोग आगरे आ गये। बनारसीदास पौसाल या उपासरेमें गये और वहाँ यतियों और श्रावकोंका आचार धर्म सुना, उसमें बारह व्रतोंके (किसीके) बनाये हुए कवित्त सुने और उन्हें चित्त लगाकर अंगीकार किया। फिर चौदह नियमोंको पालने लगे। यदि उनमें कहीं कोई दोष लगता था तो उसका प्रायश्चित्त करते थे। अर्थात् हमारी समझमें उन्होंने बारह व्रतोंके कोई कवित्त स्वयं नहीं बनाये, किसीके बनाये हुए सुने और उन व्रतोंको धारण किया। आगेकी 'चौदह नेम' आदि पंक्तिका सम्बन्ध भी इससे ठीक बैठ जाता है।

इसी तरह ‘ अतीतव्यवहारकथन ’ नामकी भी कोई अलग रचना नहीं है। अर्द्धकथाकी वह पक्ति इस प्रकार है—

कीनें अध्यातमके गीत, बहुत कथन विवहार अतीत।
सिवमदिर इत्यादिक और, कवित अनेक किए तिस ठौर ॥ ५९७

अर्थात् ग्यान पचीसी, ध्यान बत्तीसी आदिके बाद अध्यात्मके गीत बनाये, जिनमें अधिकाश कथन व्यवहारसे अतीत है, अर्थात् निश्चय दृष्टिसे है।

हमारी समझमें बनारसीविलासकी ‘अध्यात्मपदपक्ति’ ही अध्यातमके गीत हैं और उन गीतोंमें अधिकाश कथन व्यवहारसे अतीत अर्थात् निश्चय नयसे हैं।

आगे कहा है—

बरनी आखैं दोइ बिधि, करी बचनिका दोइ।
अष्टक गीत बहुत किए, कहौं कहालौं सोइ ॥ ६२८

यहाँ ‘ आख दोइ बिधि ’ नामकी रचनाका जो सकेत है वह उक्त अध्यात्म-पदपक्तिके १८ वे और १९ वे पद (राग गौरी) के लिए है और इस नामकी कोई अन्य रचना नहीं है। १८ वें की कुछ पक्तियाँ ये हैं—

भादू भाई, समुझ सबद यह मेरा
जो तू देखै इन आखिनसौं, तामैं कछू न तेरा ॥ १
ए आखैं भ्रमहीसौं उपजीं, भ्रमहीके रस पागी।
जह जह भ्रम तह तह इनकौ श्रम, तू इनहीकौ रागी ॥ २
खुले पलक ए कछु इक देखैं, मुदे पलक नहि सोऊ।
कबहू जाहि हौंहि फिर कबहूं, भ्रामक आखैं दोऊ ॥ ६

और १९ वें की कुछ पक्तियाँ ये हैं—

भौंदू भाई, ते हिरदेकी आखैं।
जे करखैं अपनी सुख सपति, भ्रमकी संपति नाखैं ॥ १
जे आँखैं अम्रत रस बरखैं, परखैं केवलिबानी।
जिन आखिन बिलोकि परमारथ, हौंहि कृतारथ प्रानी ॥ ८

अर्थात् अर्ध-कथानकमें जो ‘ आख दोइ बिधि ’ के रचनेका उल्लेख है वह इन्हीं दो पदोंके उद्देश्यसे है।

इसी अध्यात्मपदपक्तिका १० वॉ गीत 'राग बरवा' या बरवा छंद है, जिसका उल्लेख अर्द्ध कथामें न होनेसे डा० गुप्तने यह कल्पना की है कि "यह असभव नहीं कि 'बारह' 'बारव' या 'बरवा' का ही विकृत पाठ हो।" अर्थात् 'बारह व्रतके किए कवित्त' से मतलब 'बरवा छंद' ही हो।

हमारा विश्वास है कि बनारसीविलासका जो सग्रह दीवान जगजीवनने किया है उसमें बनारसीदासजीकी सभी रचनाऍ आगई हैं और यह सग्रह उनकी मृत्युके २५ दिन बाद ही कर लिया गया था। जगजीवन बनारसीदासजीकी अध्यातम-सैलीके ही एक प्रतिष्ठित सभ्य थे और आगरेमें ही रहते थे। मृत्युके कुछ ही समय पहले स० १७०० की 'कर्मप्रकृतिविधान' रचना भी उन्होंने इसमें शामिल कर ली है जिसका उल्लेख अर्धकथानकमें भी नहीं है। क्योंकि अर्ध-कथानक उससे पहले ही स० १६९८ मे लिखा जा चुका था और उसमें कविवरने अपनी सारी रचनाओंके समयक्रमसे कि वे कब कब रची गईं नाम दे दिये हैं और वे सभी बनारसीविलासमें सग्रह हो गई हैं।

अर्ध-कथानककी तिथियाँ

डा० माताप्रासादजी गुप्तने अर्ध-कथानकमें आई हुई चार तिथियोंकी जाच की है कि वे शुद्ध हैं या नहीं—

१ खरगसेनकी जन्मतिथि —श्रावण सुदी ५, रविवार, वि० स० १६०८।

२ बनारसीदासकी जन्मतिथि—माघसुदी ११, रविवार, स० १६४३, तृतीय चरण रोहिणी तथा वृषके चन्द्रमा।

३ नरोत्तमदासके साझेकी समाप्ति—वैशाख सुदी ७, सोमवार, स० १६७३।

४ अर्ध-कथानककी रचनातिथि —अगहन सुदी ५, सोमवार, स० १६९८।

वे लिखते हैं कि गतवर्ष-प्रणालीपर गणना करनेसे प्रथमके लिए दिन बुधवार, दूसरेके लिए मगलवार, तीसरेके लिए शनिवार और चौथेके लिए पुनः शनिवार

१—"एकादसी वार रविनद, नखत रोहिनी वृषको चंद।"

यह पाठ सब प्रतियोंमें है, केवल ब प्रतिमें 'एकादसी रविवार सुनन्द' पाठ है और शायद इसी प्रतिके आधारसे डा० सा० द्वारा सम्पादित 'अर्द्ध-कथा' का पाठ छपा है। रविनन्द=सूर्यपुत्रका अर्थ शनिवार होता है, रविवार नहीं। **ब** प्रतिकेके पाठका 'सुनन्द' निरर्थक भी पड़ता है।

आते हैं। वर्तमान वर्षप्रणालीपर करनेसे प्रथमके लिए शुक्रवार, दूसरेके लिए बृहस्पतिवार तीसरेके लिए सोमवार और चौथेके लिए रविवार आते हैं। अर्थात् गतववर्षप्रणालीपर कोई तिथि शुद्ध नहीं उतरती और वर्तमान वर्ष-प्रणालीपर केवल तीसरी शुद्ध उतरती है। दूसरी तिथिका शेप विस्तार भी ठीक नहीं उतरता। दोनों प्रणालियोंपर नक्षत्र मृगशिरा आता है।

इसी तरह सूक्तमुक्तावली, ज्ञानबावनी और कर्मप्रकृतिकी तिथियॉ भी जॉच करनेपर ठीक नहीं उतरीं। इसपर डा० मा० लिखते हैं "अर्द्ध-कथाकी ही भॉति शेप कृतियोंका सम्पादन प्रायः एकाध प्रतिके ही आधारपर किया गया है और कदाचित् उनके लिपिकारोंने भी प्रतिलिपियॉ यथेष्ट सावधानीके साथ नहीं की हैं।" परन्तु हमने पॉच प्रतिलिपियोंके आधारसे अर्द्ध-कथानकके पाठ ठीक किये हैं, और उनमे केवल एक ही स्थल ऐसा है जिसमें रविकी जगह शनि होना चाहिए, परन्तु शनिसे भी गणना ठीक नहीं उतरती।

हमारी गणित-ज्योतिपमे कोई गति नहीं है, इसलिए हम इस जॉचकी कोई जॉच नहीं कर सकते, परन्तु यह माननेको भी जी नहीं चाहता कि कविने अपनी रचनाओंमें जो तिथि, नक्षत्र, वार, दिये हैं वे भी ठीक नहीं दिये होंगे जब कि वे स्वय भी ज्योतिष पढे थे। हम आशा करते हैं कि इस विषयके जानकार परिश्रम करके इसपर विशेष प्रकाश डालनेकी कृपा करेंगे।

किंवदन्तियॉ

बनारसीविलासके प्रारम्भमें (सन् १९०५) मैंने बनारसीदासजीका विस्तृतजीवन-चरित लिखा था और उसके अन्तमे कुछ भक्तो ओर भावुक जनोंसे सुन-सुनाकर उनके सम्बन्धकी नीचे लिखी सात किंवदन्तियॉ या जनश्रुतियाँ सग्रह कर दी थीं—

१ शाहजहॉके साथ शतरज खेलना और उनके बुलानेपर एक दिन, मस्तक न झुकाना पडे इस खयालसे, छोटे दरवाजेसे पैर आगे करके उनकी बैठकमें पहुँचना।

२ जहॉगीरको सलाम करनेके लिए कहनेपर 'ग्यानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है' आदि कवित्त पढकर सुनाना।

३ एक सिपाहीसे तमाचे खाकर भी उसकी सिफारिश करके बादशाहसे तनख्वाह बढ़वा देना।

४ बाबा शीतलदास नामक सन्यासीको बारबार नाम पूछकर चिढाना और और उन्हें ज्वालाप्रसाद कहना।

५ दो दिगम्बर मुनियोंको बारबार उँगली दिखाकर अशान्त करना और इस तरह उनकी परीक्षा करना।

६ गोस्वामी तुलसीदासका अपने शिष्योंके साथ आगरे आना, कविवरसे मिलकर अपना रामचरितमानस (रामायण) भेंट करना और इसके बाद बनारसीदासका विराजै रामायण घटमाहिं' आदि पद रचकर सुनाना।

७ देहावसानके समय कण्ठ अवरुद्ध हो जानेपर कविवरका 'चले बनारसी-दास फेर नहिं आवना' आदि लिखकर लोगोंके इस भ्रमको निवारण करना कि उनका मन मायामें अटक रहा है।

इस तरहकी अनेक किंवदन्तियाँ थोड़ेसे हेरफेरके साथ अन्य सन्त महात्मा-ओंके सम्बन्धमें भी लिखीं और सुनी गई हैं परन्तु चूँकि बनारसीदासजीने अपनी अतमकथामें इनका कोई उल्लेख तो क्या संकेत भी नहीं किया है। उल्लेख न करनेका कोई कारण भी नहीं मालूम होता, इसलिए इनके सच होनेमें बहुत सन्देह है। पहले खयाल था कि आत्मकथा लिखनेके बाद वे बहुत समय तक जीवित रहे होंगे और इसलिए ये घटनाएँ उसके बाद घटित हुई होंगी। परन्तु अब तो यह निश्चय हो चुका है कि वे उसके बाद लगभग दो वर्ष ही जिये हैं और इस थोड़ेसे समयमें इन सातों घटनाओंको मान लेनेमें संकोच होता है।

यदि गोस्वामी तुलसीदाससे साक्षात् होनेकी बात सच होती तो उसका उल्लेख अर्धकथानकमें अवश्य होता। क्योंकि तुलसीदासका देहोत्सर्ग वि० सं० १६८० में हुआ था और अर्धकथानक १६९८ में लिखा गया है। इसी तरह जहाँगीरकी मृत्यु भी १६८४ में हो चुकी थी। 'ग्यानी पातशाह'वाला कवित्त नाटकसमयसार (चतुर्दश गुणस्थानाधिकार पद्य ११५) में है और यह ग्रन्थ १६९३ में पूर्ण हुआ था।

कुछ समय पहले जयपुरके स्व० पं० हरिनारायण शर्मा बी० ए० ने सन्त सुन्दरदासजीकी तमाम रचनाओंका 'सुन्दर ग्रन्थावली' नामक बहुत ही सुसम्पादित संग्रह दो जिल्दोंमें प्रकाशित किया था। उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामें एक जगह लिखा है कि "प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासजीके साथ सुन्दरदासजीकी मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजी सुन्दरदासजीकी योग्यता,

कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तब ही उतनी श्लाघा मुक्त-कंठसे उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी तो थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, तब ही वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी। नाटकसमयसारमें जो 'कीच सौ कनक जाके' पद्य है, उसे बनारसीदासजीने सुन्दरदासजीको भेजा था और सुन्दरदासजीने उसके उत्तरमें दो छन्द भेजे थे 'धूल जैसो धन जाके' और 'कामहीन क्रोध जाके' तथा।

१ - कीचसौ कनक जाकै नीचसौ नरेसपद,
मीचसी मिताई गरुवाई जाकै गारसी।
जहरसी जोगजाति कहरसी करामाति,
हहरसी हौंस पुदगलछवि छारसी॥
जालसौ जगविलास भालसौ भवनवास,
कालसौ कुटम्बकाज लोकलाज लारसी।
सीठसौ सुजसु जानै बीठसौ बखत मानै
ऐसी जाकी रीति ताहि बन्दत बनारसी॥—बन्धद्वार १९

२ - धूलि जैसौ धन जाकै सूलिसौ ससार सुख,
भूलि जैसौ भाग देखै अतकीसी यारी है।
पास जैसी प्रभुताई साँप जैसौ सनमान,
बड़ाई हू बीछनीसी नागिनीसी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ विधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत ताहि वन्दना हमारी है॥ १५

३—कामहीन क्रोध जाकै लोभहीन मोह ताकै,
मदहीन मच्छर न कोउ न विकारौ है।
दुखहीन सुख मानै पापहीन पुन्य जानै,
हरख न सोक आनै देहहीतैं न्यारौ है॥
निंदा न प्रसंसा करै रागहीन दोष धरै,
लैंनहीन दैंन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसौ कोऊ साध सु तौ रामजीकौ प्यारौ है॥
—साधुको अंग पृ० ४९४

' 'प्रीतिसी न पाती कोऊ ' । कोई कहते हैं पहले सुन्दरदासजीने पिछला छन्द भेजा था । कुछ हो इनका आपसमें प्रेम था और दोनोंकी काव्यरचनामें शब्द, वाक्य और विचारोंका साम्य स्पष्ट है । ये दोनों महात्मा आगरे कब मिले इसका पता नहीं है । हमको महन्त गंगारामजीसे तथा झुंझणूके श्रीमाल सेठ अमोलकचन्दजीसे यह कथा ज्ञात हुई थी । " इस किंवदन्तीमें जिन पद्योंको एक दूसरेके पास भेजनेके लिए कहा गया है, उन पद्योंसे तो ऐसी कोई बात ध्वनित नहीं होती, जिससे उसे सच माननेकी प्रवृत्ति हो सके । इस तरहके तो अनेक पद्य अनेक कवियोंकी रचनाओंमें मिलते हैं, परन्तु उससे यह नहीं माना जा सकता कि रचयिताओंने उन्हें एक दूसरेके पास भेजनेके उद्देश्यसे लिखा था । ये तीनों चारों पद्य जिन ग्रन्थोंके हैं उनमें वे अपने अपने स्थानपर सर्वथा उपयुक्त और प्रकरणके अनुकूल हैं, वहाँसे वे हटाये नहीं जा सकते ।

सन्त सुन्दरदासजीका जन्म-काल वि० स० १६५३ और मृत्यु-काल १७४६ है और ग्रन्थरचना-काल १६६४ से १७४२ तक माना जाता है, इसलिए बनारसीदासजीसे उनकी मुलाकात होना सम्भव तो है परन्तु जब तक कोई और प्रमाण न मिले तब तक इसे एक किंवदन्तीसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता ।

प्रीतिसी न पाती कोऊ प्रेमसे न फूल और,
चित्तसौ न चदन सनेहसौ न सेहरा ।
हृदैसौ न आसन सहजसौ न सिंघासन,
भावसी न सौंज और सून्यसौ न गेहरा ॥
सीलसौ सनान नाहिं ध्यानसौ न धूप और,
ग्यानसौ न दीपक अग्यान तमकेहरा ।
मनसी न माला कोऊ सोहसौ न जाप और,
आतमासौ देव नाहिं देहसौ न देहरा ॥ १७

—साख्यको अग पृ० ५९६

अर्द्ध-कथानक

(मूल पाठ)

हरिश चन्द्र ढोलिया
15, नवजीवन उपवन,
मोती डूंगरी रोड़, जयपुर-4

अर्ध-कथानक

श्रीपरमात्मने नमः । अथ बनारसीदासकृत अर्ध-कथानक लिख्यते[1]

दोहरा

पानि-जुगुल-पुट सीस धरि, मानि अपनपौ दास ।
आनि भगति चित जानि प्रभु, बंदौं पास-सुपास ॥ १ ॥

सवैया इकतीसा, बनारसी नगरीकी सिफथ[2]

गंगमाहि आइ धसी द्वै नदी बरुना असी,
बीच बसी बनारसी[3] नगरी बखानी है ।
कसिवार देस मध्य गांउ तातैं कासी नांउ,
श्रीसुपास-पासकी जनमभूमि मानी है ॥
तहां दुहू जिन सिवमारग प्रगट कीनौ,
तबसेती सिवपुरी जगतमैं जानी है ।
ऐसी बिधि नाम थपे नगरी बनारसीके,
और भांति कहै सो तौ मिथ्यामत-बानी है ॥ २ ॥

---

१ ड द ओंनमः सिद्धेभ्यः । श्री जिनाय नमः । अथ बनारसी अवस्था लिख्यते ।
२ ड निरुक्ति कथन । ३ ड बारानसी ।

दोहरा

जिन पहिरी जिन-जनमपुर-नाम-मुद्रिका-छाप ।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसौं आप ॥ ३ ॥

चौपाई

जैनधर्म श्रीमाल सुबस । बानारसी नाम नरहस ।
तिन मनमाहि बिचारी बात । कहौं आपनी कथा बिख्यात ॥ ४ ॥
जैसी सुनी बिलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख-बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताई मरजाद ॥ ५ ॥
भावी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातैं भई-बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौं बखानि ॥ ६ ॥
मध्यदेसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौं हिय खोलि ॥
भाखूं पूरव-दसा-चरित्र । सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥ ७ ॥

दोहरा

याही भरत सुखेतमैं, मध्यदेस सुभ ठाउ ।
बसै नगर रोहतगपुर[1], निकट बिहोली-गाउ ॥ ८ ॥
गांउ बिहोलीमैं बसै, राजबंस रजपूत ।
ते गुरु[2]-मुख जैनी भए, त्यागि करम अदभूत[3] ॥ ९ ॥
पहिरी माला मन्त्रकी, पायौ कुल श्रीमाल ।
थाप्यौ गोत बिहोलिआ, बीहोली-रखपाल ॥ १० ॥
भई बहुत बंसावली, कहौं कहॉ लौं सोइ ।
प्रगटे पुर रोहतगमैं, गांगॉ गोसल[4] दोइ ॥ ११ ॥
तिनके कुल बस्ता भयौ, जाकौ जस परगास ।
बस्तपालके जेठमल, जेठूके जिनदास ॥ १२ ॥

---

१ ड रुहतग्गपुर । २ ड गुरमुख । ३ अ अघभूत । ४ ब स ई गोसलगागो ।

मूलदास जिनदासके, भयौ पुत्र परधान ।
पढ़्यौ हिंदुगी पारसी, भागवान बलवान ॥ १३ ॥

मूलदास बीहोलिआ, बनिक वृत्तिके भेस ।
मोदी है[1] कै मुगलकौ, आयौ[2] मालवदेस ॥ १४ ॥

चौपई

मालवदेस परम सुखधाम । नरवर नाम नगर अभिराम ।
तहां मुगल पाई जागीर । साहि हिमाऊंकौ बरै[3] बीर ॥ १५ ॥
मूलदाससौं बहुत कृपाल । करै उचापति सौंपै माल ।
संबत सोलहसै जब जान । आठ बरस अधिके परबान ॥१६॥
सावन सित पंचैमि[4] रबिबार । मूलदास-घर सुत अवतार ।
भयौ हरख खरचे बहु दाम । खरगसेन दीनौं यहु नाम ॥ १७
सुखसौं बरस दोइ चलि गए । घनमल नाम और सुत भए ।
बरस तीन जब बीते और । घनमल काल कियौ तिस ठौर ॥ १८

दोहरा

घनमल घन-दल उडि गए, काल-पवन-संजोग ।
मात-तात तरुवर तए, लहि आतप सुत-सोग ॥ १९

चौपई

लघु-सुत-सोक कियौ असराल । मूलदास भी कीनौ काल ॥
तेरहोत्तरे संबत बीच । पिता-पुत्रकौं आई मीच ॥ २०

१ ई हैकर । २ ड आया । ३ अ प्रतिके हासियेपर इस शब्दका अर्थ 'उमराव' दिया है । ४ ब पाचैं ।

खरगसेन सुत माता साथ । सोक-विआकुल भए अनाथ ॥
मुगल गयौ थो[1] काहू गांउ । यह सब बात सुनी तिस ठांउ ॥ २१

दोहरा

आयौ मुगल उतावलो, सुनि मृलाकौ काल ।
मुहर-छाप घरं[2] खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२
माता पुत्र भए दुखी, कीनौ बहुत कलेस ।
ज्यौं त्यौं करि दुख देखते, आए पूरब देस ॥ २३

चौपई

पूरबदेस जौनपुर गाउ । बसै गोमती-तीर सुठांउ ।
तहां गोमती इहि विध बहै । ज्यौं देखी त्यौं कविजन कहै ॥ २४

दोहरा

प्रथम हि दंक्खनमुख[3] बही, पूरब मुख परवाह ।
बँहुरों[4] उत्तरमुख बही, गोवै नदी अथाह ॥ २५

गोवै[5] नदी त्रिविधिमुख बही । तट रवनीकं[6] सुविस्तर मही ।
कुल पठान जौनासह नांउ । तिन तहा आइ बसायो गांउ ॥ २६
कुतवा पढ़्यौ छत्र सिर तानि । बैठि तखत फेरी निज आनि ।
तब तिन तखत जौनपुर नाउ । दीनौ भयौ अचल सो गांउ ॥ २७
चारौं बरन बसैं तिस बीच । बसहिं छतीस पौंनि कुल नीच ।
बाभन छत्री बैस अपार । सूद्र भेद छत्तीस प्रकार ॥ २८

छत्तीस पौंन कथन । सवैया इकतीसा

सीसगर, दरजी, तंबोली, रंगवाल, ग्वाल,
बाढई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनियां ।

---

१ ब स ई हो । २ स कर । ३ ड दछिन, अ दक्षिन । ४ ब फिरकर, ई फिरकै । ५ अ गोवइ । ६ ब रमनीक, ई रमणीक ।

कंदोई, कहार, काछी, कलाल, कुलाल, माली,
कुंदीगर, कागदी, किसान, पटबुनियां ॥
चितेरा, बिंधेरा, बारी, लखेरा, ठठेरा, राज,
पटुवा, छेप्परबंध, नाई, भार-भुनियां ।
सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर,
धीवर[2], चमार एई छत्तीस पैउनियां[3] ॥ २९

चौपई

नगर जौनपुर भूमि सुचंग । मठ मंडप प्रासाद उतंग ।
सोभित सपतखने गृह घने । सघन पताका तंबू तने ॥ ३०
जहां बावन सराइ पुरकने । आसपास बावन परगने ।
नगरमाहिं बावन बाजार । अरु बावन मंडई उदार ॥ ३१

अनुक्रम भए तहां नव साहि । तिनके नाउ कहौं निरवाहि ।
प्रथम साहि जौनासह जानि । दुतिय बवक्करसाहि बखानि ॥ ३२
त्रितिय भयौ सुरहर सुलतान । चौथा दोस महम्मद जान ॥
पंचम भूपति साहि निजाम । छट्टम साहि बिराहिम नाम ॥ ३३
सत्तम साहिब साहि हुसैन । अट्टम गाजी सैंज्जित[4] सैन ॥
नवम साहि बख्या सुलतान । बरती जाँसु अखंडित आन ॥ ३४ ॥
ए नव साहि भए तिस ठांउ । यातैं[5] तखत जौनपुर नांउ ॥
पूरब दिसि पटनालौं आन । पैच्छिम[6] हद्द इटावा थान ॥ ३५ ॥

---

१ स छपरबद । २ अ धीमर । ३ जायसीने पदमावतमें गोहन पउनियोंके ३६ कुलोंका सकेत किया है । ४ स साजत । ५ ई ताहि । ६ अ पस्चिम ।

दक्खन[1] विंध्याचल सरहद्द । उत्तर परमित घाघर नद्द ॥
इतनी भूमि राज[2] विख्यात । वरिस तीनिसैकी यहु वात ॥ ३६ ॥
हुते पुव्व पुरखा परधान । तिनके वचन सुने हम कान ॥
वरनी कथा जथास्रुत जेम । मृषा-दोष नहिं लागै एम ॥ ३७ ॥

यह सव वरनन पाछिलौ, भयौ सुकाल वितीत ।
सोरहसै तैं अधिक, समै कथा सुनु मीत ॥ ३८ ॥
नगर जौनपुरमें वसै, मदनसिंघ श्रीमाल ।
जैनी गोत चिनालिया, वनजै हीरा-लाल ॥ ३९ ॥
मदन जौंहरीकौ सदनु. ढूढ़त वूझत लोग ।
खरगसेन मातासहित, आए करम-सजोग ॥ ४० ॥
छजमल[3] नाना सेनकौ[4], ताकौ अग्रज[5] एह ।
दीनौ आदर अधिक तिन[6], कीनौ अधिक सनेह ॥ ४१ ॥

चौपई

मदन कहै पुत्री सुनु एम । तुमहिं अवस्था व्यापी केम ॥
कहै सुता पूरव विरतत । एहि विधि मुए पुत्र अर कत ॥ ४२ ॥
सरबस लूटि लियो ज्यौं मीर । सो सव वात कही धरि धीर ॥
कहै मदन पुत्रीसौं रोइ । एक पुत्रसौं सव किछु होइ ॥ ४३ ॥
पुत्री सोच न करु मनमाह । सुख-दुख दोऊ फिरती छाह ॥
सुता दोहिता कठ लगाइ । लिए वस्त्र भूखन पहिराइ ॥ ४४ ॥
सुखसौ रहहि न व्यापै काल । जैसा घर तैसी ननसाल ॥
वरिस तीनि वीते इह भाति । दिन दिन प्रीति रीति सुख सांति ॥४५

१ अ ड दक्खिन । २ स राजु । ३ अ वजमल । ४ अ प्रतिके हासियेमें इस शब्दका अर्थ 'खरगसेन' लिखा है । ५ अ ड भाई । ६ ई तिस ।

आठ बरसकौ बालक भयौ । तब चटसाल पढ़नकौं गयौ ॥
पढ़ि चटसाल भयौ बितंपन्न[1] । परखै रजत-टका-सोवन्न ॥ ४६ ॥
गेह उचापति लिखै बनाइ । अत्तो जमा कहै समुझाइ ॥
लेना देना विधिसौं लिखै । बैठै हाट सराफी सिखै ॥ ४७ ॥
बरिस च्यारि जब बीते और । तब सु करै उद्दमकी[2] दौर ॥
पूरब दिसि बगाला थान । सुलेमान सुलतान पठान ॥ ४८ ॥
ताकौ साला लोदी खान । सो तिन राख्यौ पुत्र समान ॥
सिरीमाल ताकौ दीवान । नाउ राइ धंना जग जान ॥ ४९ ॥
सींघड़ गोत्र बगाले बसै । सेवैं सिरीमाल पांचैसै[3] ॥
पोतदार कीए तिन सर्व । भोग्य-संजोग[4] कमावहिं दर्व ॥ ५० ॥
कँरै बिसास[5] न लेखा लेइ । सबकौं फारकती लिखि देइ ॥
पोसह-पडिकौंनासौं पेम । नौतन गेह करनकौ नेम ॥ ५१ ॥

दोहरा

खरगसेन वीहोलिया, सुनी राइकी बात ।
निज मातासौं मंत्र करि, चले निकसि परभात ॥ ५२ ॥
माता किछु खरची दई, नाना जानै नांहि ।
ले घोरा असवार होइ, गए राइजी पाहि ॥ ५३ ॥
जाइ राइजीकौं मिल्यौ, कह्यौ सकल विरतंत ।
करी दिलासा बहुत तिन, धरी बात उर अंत ॥ ५४ ॥
एक दिवस काहू समै, मनमैं सोचि विचारि ।
खरगसेनकौं रायनैं, दिए परगने च्यारि ॥ ५५ ॥

---

१ अ व्युतपन्न । २ अ उदम, ब ड उद्दिम । ३ अ पच्चसै । ४ स भाग्यपयोग, ड भागपयोग । ५ ब कर विस्वास ।

चौपई

पोतदार कीनौं निज सोइ, दीनै साथि कारकुन दोइ ।
जाइ परगनें कीनौं काम, करहि अमल तहसीलहि दाम ॥ ५६ ॥
जोरि खजाना भेजहि तहा, राइ तथा लोदीखा जहां ॥
इहि विधि वीत मास छ सात, चले समेतसिखरिकी जात ॥ ५७ ॥

दोहरा

संघ चलायौ रायजी, दियौ हुकम सुलतान ।
उहा जाइ पूजा करी, फिरि आए निज थान ॥ ५८ ॥
आइ राइ पट-भौनमैं, बैठे संध्याकाल ।
विधिसौं सामाइक करी, लीनौं कर जपमाल ॥ ५९ ॥
चौविहार करि मौन धरि, जपै पंच नवकार ।
उपजी सूल उदरविषैं, हूओ हाहाकार ॥ ६० ॥
कही न मुखसौं वात किछु, लही मृत्यु ततकाल ।
गही और थिति जाइ तिनि, ढही देह-दीवाल ॥ ६१ ॥

सवैया तेईसा

पुन संजोग जुरे रथ पाइक, माते मतंग तुरंग तवेले ।
मानि विभौ अंगयौ सिर भार, कियौ विसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाइ करी थिति पूरन, अंत चले उठि आपु अकेले ।
हारे हमालकी पोटसी डारि कै, और दिवालकी ओट हो खेले ॥ ६२ ॥

चौपई

एहि विधि राइ अचानक मुआ । गांउ गांउ कोलाहल हुआ ॥
खरगसेन सुनि यहु विरतंत । गयौ भागि घेर त्यागि तुरंत ॥ ६३ ॥

---

१ ड धन ।

कीनौं दुखी देरिद्री भेख । लीनौं ऊवट पंथ अदेख ॥
नदी गांउ बन परवत घूमि । आए नगर जौनपुर-भूमि ॥ ६४ ॥
रजनी समै गेह निज आइ । गुरुजन-चरननमैं सिर नाइ ॥
किछु अंतर-धनु हुतौ जु साथ । सो दीनौं माताके हाथ ॥ ६५ ॥
एहि विधि वरस च्यारि चलि गए । वरस अठारहके जव भए ।
कियौ गवन तव पच्छिम दिसाँ । सवत सोलह सै छब्बिसाँ ॥ ६६ ॥
आए नगर आगरेमाहि । सुदरदास पीतिआ पांहि ।
खरगसेनसौं राखै प्रेम । करै सराफी वेचै हेम ॥ ६७ ॥
खरगसेन भी थैली करी । दुहू मिलाइ दामसौं भरी ।
दोऊ सीर करहिं वेपार । कला निपुन धनवत उदार ॥ ६८ ॥
उभय परस्पर प्रीति गँहंत । पिता पुत्र सव लोग कहंत ।
वरस च्यारि ऐसी विधि भए । तव मेरठिपुर व्याहन गए ॥ ६९ ॥

छप्पै

सूरदास श्रीमाल ढोर मेरठी कहावै ।
ताकी सुता वियाहि, सेन अर्गलपुर आवै ॥
आइ हाट वैठे कमाइ, कीनी निजै संपति ।
चाचीसौं नहिं वनी, लियौ न्यारो वर दपति ॥
इस बीचि वरस द्वै तीनिमैं, सुंदरदास कलत्रजुत ।
मरि गए त्यागि धन धाम सव, सुता एक, नहिं कोउ सुत ॥ ७० ॥

दोहरा

सुता कुमारी जो हुती, सो परनाई सेनि ।
दाज मान वहुविधि दियौ, दीनी कंचन रेनि ॥ ७१ ॥

---

१ ड दारिदी । २–३ अ दीस, छव्वीस । ४ व करत । ५ अ सुख ।

संपति सुंदरदासकी, जु कछु लिखी मिलि पंच।
सो सब दीनी बहिनिकौं, सेन न राखी रंच ॥ ७२ ॥
तेतीसै संवत समै, गए जौनपुर गाम।
एक तुरगम एक रथ, बहु पाइक बहु दाम ॥ ७३ ॥
दिन दस बीते जौनपुर, नगरमांहि करि हाट।
साझी करि बैठे तुरित, कियौ बनजकौ ठाट ॥ ७४ ॥

रामदास बनिआ धनपती। जाति अगरवाला सिवमती ॥
सो साझी कीनौं हित मानै। प्रीति रीति परतीति मिलान ॥ ७५ ॥
करहि सराफी दोऊ गुनी। बनजहिं मोती मानिक चुनी ॥
सुखसौं काल भली विधि गमै। सोलहसै पैंतीस समै ॥ ७६ ॥
खरगसेन घर सुत अवतरयौ। खरच्यौ दरब हरस मन धरयौ ॥
दिन दसम पहुच्यौ परलोक। कीना प्रथम पुत्रकौ सोक ॥ ७७ ॥
सैंतीसै संवतकी बात। रुहतग गए सतीकी जात ॥
चोरन्ह लूटि लियौ पथमाहि। सर्वस गयौ रह्यौ कछु नाहि ॥ ७८
रहे वस्त्र अरु दंपति-देह। ज्यौं त्यौं करि आए निज गेह ॥
गए हुते मागनकौं पूत। यहु फल दीनौं सती अऊत ॥ ७९
तऊ न समुझे मिथ्या बात। फिरि मानी उनहीकी जात ॥
प्रगट रूप देखै सब फोकै[3]। तऊ न समुझै मूरख लोकै[3] ॥ ८०
घर आए फिर बैठे हाट। मदनसिंघ चित भए उचाट ॥
माया तजी भई सुख साति। तीन बरस बीते इस भाति ॥ ८१
संबत सोलहसै इकताल। मदनसिंघनैं कीनौं[4] काल ॥
धर्म कथा फली सब ठौर। बरस दोइ जब बीते और ॥ ८२

---

१ ब जान। २ अ सोग। ३ अ लोग। ४ अ कीधो।

तब सुधि करी सतीकी बात । खरगसेन फिर दीनी जात ॥
संवत सोलहसै तेताल । माघ मास सित पक्ष रसाल ॥ ८३
एकादसी वार रवि-नंद । नखत रोहिनी वृषकौ चंद ॥
रोहिनि त्रितिय चरन अनुसार । खरगसेन-घर सुत अवतार ॥ ८४
दीनौं नाम विक्रमाजीत । गावहिं कामिनि मंगल-गीत ॥
दीजहि दान भयौ अति हर्ष । जनम्यौ पुत्र आठएं वर्ष ॥ ८५
एहि विधि वीते मास छ सात । चले सु पार्श्वनाथकी जात ॥
कुल कुटुंब सब लीनौ साथ । विधिसौं पूजे पारसनाथ ॥ ८६
पूजा करि जोरे जुग पानि । आगें बालक राख्यौ आनि ॥
तब कर जोरि पुजारा कहै । " बालक चरन तुम्हारे गहै ॥ ८७
चिरंजीवि कीजै यह बाल । तुम्ह सरनागतके रखपाल ॥
इस बालकपर कीजै दया । अब यहु दास तुम्हारा भया " ॥ ८८
तब सु पुजारा साधै पौन । मिथ्या ध्यान कपटकी मौन ॥
घडी एक जब भई वितीत । सीस घुमाइ कहै सुनु मीत ॥ ८९
" सुपिनंतर किछु आयौ मोहि । सो सब बात कहा मैं तोहि ॥
प्रभु पारस-जिनवरकौ जच्छ । सो मोपै आयौ परतच्छ ॥ ९० ॥
तिन यहु बात कही मुझपाहि । इस बालककौ चिंता नाहि ॥
जो प्रभु-पास-जनमकौ गाउ । सो दीजै बालककौ नांउ ॥ ९१ ॥
तौ बालक चिरजीवी होइ । यहु कहि लोप भयौ सुर सोइ ॥ "
जब यहु बात पुजारे कही । खरगसेन जिय जानी सही ॥ ९२ ॥

दोहरा

हरषित कहै कुटंब सब, स्वामी पास सुपास ।
दुहुकौ जनम बनारसी, यहु बनारसी-दास ॥ ९३ ॥

१ ब एकादसी रविवार सुनन्द । २ अ निज । ३ ब पुजेरा । ४ ब सुपनतर । ५ ड भई । ६ अ मानी ।

एहि बिधि धरि बालककौ नांउ । आए पलटि जौनपुर गांउ ॥
सुख समाधिसौं बरतै बाल । संवत सोलह सै अठताल ॥ ९४ ॥
पूरब करम उदै संजोग । बालककौं संग्रहनी रोग ।
उंपज्यौ औषध कीनी घनी । तऊ न बिथा जाइ सिसुतनी ॥ ९५ ॥
बरस एक दुख देख्यौ बाल । सहज समाधि भेई ततकाल ॥
बहुरों बरस एकलौं भला । पंचासै निकसी सीतला ॥ ९६ ॥

दोहरा

बिथा सीतला उपसमी, बालक भयौ अरोग ।
खरगसेनके घरि सुता, भई करम-संजोग ॥ ९७

आठ बरसकौ हूओ बाल । विद्या पढ़न गयौ चटसाल ॥
गुर पांड़ेसौं विद्या सिखै । अक्खर बांचै लेखा लिखैं ॥ ९८
बरस एक लौं विद्या पढ़ी । दिन दिन अधिक अधिक मति बढ़ी ॥
विद्या पढ़ि हूओ बितपन्न । संवत सोलह सै बावन्न ॥ ९९

दोहरा

खरगसेन बनिज रतन, हीरा मानिक लाल ।
इस अंतर नौ बरसकौ, भयौ बनारसि बाल ॥ १००
खैराबाद नगर बसै, तांबी परबत नाम ।
तासु पुत्र कल्यानमल, एक सुता तसु धाम ॥ १०१ ॥
तासु पुरोहित आइओ, लीनैं नाऊं साथ ।
पत्र लिखत कल्यानकौ, दियौ सेनके हाथ ॥ १०२ ॥
करी सगाई पुत्रकी, कीनौ तिलक लिलाट ।
बरस दोइ उपरांत लिखि, लगन ब्याहकौ ठाट ॥ १०३ ॥

---

१ अ उपजी । २ अ लई । ३ ब तसु । ४ स ई नापित ।

भई सगाई बावनें, परचौ त्रेपनें काल ।
महघा अंन न पाइयै, भयौ जगत बेहाल ॥ १०४ ॥
गयौ काल बीते दिन घने । संवत सोलह सै चौवने ॥
माघ मास सित पख बारसी । चले विवाहन बानारसी ॥ १०५ ॥
करि विवाह आए निज धाम । दूजी और सुता अभिराम ॥
खरगसेनके घर अवतरी । तिस दिन वृद्धा नानी मरी ॥ १०६ ॥

दोहरा

नानी मरन सुता जनम, पुत्रबधू आगौन ।
तीनौं कारज एक दिन, भए एक ही भौन ॥ १०७ ॥
यह संसार विडम्बना, देखि प्रगट दुख खेद ।
चतुर चित्त त्यागी भए, मूढ़ न जानहि भेद ॥ १०८ ॥
इहि विधि दोइ मास बीतिया । आयौ दुलिहिनिकौ पीतिया ॥
ताराचंद नाम श्रीमाल । सो ले चल्यौ भतीजी नाल ॥ १०९ ॥
खैराबाद नगर सो गयौ । इहां जौनपुर बीतिक भयौ ॥
विपदा उदै भई इस बीच । पुरहाकिम नौवाब किलीचं ॥११०॥

दोहरा

तिन पकरे सब जौंहरी, दिए कोठरीमाहि ॥
बडी बस्तु मॅगै कछु, सो तौ इनपै नांहि ॥ १११ ॥
एक दिवस तिनि कोप करि, कियौ हुकम उठि भोर ।
बांधि बांधि सब जौंहरी, खडे किए ज्यौं चोर ॥ ११२ ॥
हने कटीले कोररे, कीने मृतक समान ।
दिए छोड तिस वार तिन, आए निज निज थान ॥११३॥

२ स त्रिरधा । ४ स इ विटम्बना । ५ ब ड वीतक । ४ ब कलीच ।

आइ सबनि कीनौ मतौ, भागि जाहु तजि भौन ।
निज निज परिगह साथ ले, परै काल-मुख कौन ॥ ११४ ॥

चौपई

यहु कहि भिन्न भिन्न सब भए । फूटि फाटिकै चहुदिसि गए ॥
खरगसेन लै निज परिवार । आए पच्छिम[1] गगापार ॥ ११५ ॥
नगरी साहिजादपुर नाउ । निकट कड़ौ[2] मानिकपुर गांउ ॥
आए साहिजादपुर बीच । बरसै मेघ भई अति कीच ॥ ११६ ॥
निसा अंधेरी बरसा घनी । आइ सराइ बसे गृह-धनी ॥
खरगसेन सब परिजन साथ । करहिं रुदन ज्यौं दीन अनाथ ॥११७

दोहरा

पुत्र कलत्र सुता जुगल, अरु संपदा अनूप ।
भोग-अंतराई-उदै, भए सकल दुखरूप ॥ ११८ ॥

चौपई

इस अवसर तिस पुर थानिया । करमचंद माहुर[3] बानिया ॥
तिन अपनौं घर खाली कियौ । आपु निवास और घर लियौ ॥११९॥
भई वितीतै[4] रैंनि इक जाम । टेरै खरगसेनकौ नाम ॥
टेरत बूझत आयौ तहां । खरगसेनजी बैठे जहां ॥१२०॥
'रामराम' करि बैठ्यौ पास । बोल्यौ तुम साहब मैं दास ॥
चलहु कृपा करि मेरे संग । मैं सेवक तुम चढ़ौ तुरंग ॥ १२१ ॥
जथाजोग है डेरा एक । चलिए तहां न कीजै टेक ॥
आए हितसौं तासु निकेत । खरगसेन परिवारसमेत ॥ १२२ ॥
बैठे सुखसौं करि विश्राम । देख्यौ अति विचित्र सो धाम ॥
कोरे कलस धरे बहु माट । चादरि सोरि तुलाई खाट ॥ १२३ ॥

---

१ ई स पच्छिम। २ ड करा, अ करी मानिकपुर। ३ ब माहोर। ४ ब वितीति।

भरयौ अंनरसौं कोठा[1] एक । भख्य पदारथ और[2] अनेक ॥
सकल बस्तु पूरन करि गेह। तिन दीनौं करि बहुत सनेह ॥१२४॥
खरगसेन हठ कीनौ महा । चरन पकरि तिन कीनी हहा ॥
अति आग्रह करि दीनौ सर्व । बिनय बहुत कीनी तजि गर्व ॥१२५॥

दोहरा

घन बरसै पावस समै, जिन दीनौ निज भौन ।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसौं बरनै कौन ॥ १२६ ॥

चौपई

खरगसेन तहा सुखसौं रहै । दसा बिचारि कबीसुर कहै ।
वह दुख दियौ नवाब किलीच । यह सुख साहिजादपुरबीच ॥१२७
एक दिष्टि बहु अंतर होइ । एक दिष्टि सुख-दुख सम दोइ ॥
जो दुख देखै सो सुख लहै । सुख भुजै सोई दुख सहै ॥ १२८ ॥

दोहरा

सुखमैं मानै मैं सुखी, दुखमैं दुखमय होइ ।
मूढ़ पुरुषकी दिष्टिमैं, दीसै सुख दुख दोइ ॥ १२९ ॥
ग्यानी संपति विपतिमैं, रहै एकसी भांति ।
ज्यौं रवि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति ॥ १३० ॥
करमचंद माहुर बनिक , खरगसेन श्रीमाल ।
भए मित्र दोऊ पुरुष, रहैं रयनि दिन नाल[3] ॥ १३१ ॥
इहि विधि कीनौ मास दस, साहिजादपुर बास ।
फिर उठि चले प्रयागपुर, बसै त्रिबेणी पास ॥ १३२ ॥

---

१ व ठौ। २ अ अवर। ३ अ लाल।

चौपई

बसै प्रयाग त्रिवेनी पास । जाकौ नांउ इलाहाबास ॥
तहां दानि वसुधा-पुरहूत । अकबर पातिसाहकौ पूत ॥ १३३ ॥
खरगसेन तहां कीनौ गौंन । रोजगार कारन तजि भान ॥
बनारसी बालक घरि रह्यौ । कौड़ी-बेच बनिज[1] तिन गह्यौ ॥१३४॥
एक टका द्वै टका कमाइ । काहूकी ना धरै तमाइ ॥
जोरै नफा एकठा करै । लै दादीके आगें धरै ॥ १३५

दोहरा

दादी बांटै सीरनी, लाडू नुकती[2] नित्त ।
प्रथम कमाई पुत्रकी, सती अऊत निमित्त ॥ १३६

चौपई

दादी मानै सती अऊत । जानै तिन दीनौ यह पूत ॥
देखै सुपिन करै जब सैन । जागे कहै पितरके बैन ॥ १३७
तासु विचार करै दिन राति । ऐसी मूढ़ जीवकी जाति ॥
कहत न बनै कहै का कोइ । जैसी मति तैसी गति होइ ॥ १३८

दोहरा

मास तीनि औरौं गए, बीते तेरह मास ।
चीठी आई सेनकी, करहु फतेपुर बास ॥ १३९ ॥
डोली द्वै[3] भाडै करी, कीनैं च्यारि मजूर ।
सहित कुटुंब बनारसी, आए फत्तेपूर ॥ १४० ॥

चौपई

फत्तेपुरमैं आए तहाँ । ओसवालके घर हैं जहाँ ॥
बासू साह अध्यातम-जान । बसै बहुत तिन्हकी संतान ॥१४१॥

१ ड ई बनज । २ अ ड निकुती । ३ ब इक ।

वासू-पुत्र भगौतीदास । तिन दीनौ तिन्हकौ आवास ॥
तिस मंदिरमैं कीनौ वास । सहित कुटब बनारसिदास॥१४२॥

सुख समाधिसौं दिन गए, करत सु केलि बिलास[1] ।
चीठी आई बापकी, चले इलाहाबास ॥ १४३ ॥

चले प्रयाग बनारसी, रहे फतेपुर लोग ।
पिता-पुत्र दोऊ मिले, आनंदित विधि-जोग ॥ १४४ ॥

चौपई

खरगसेन जौंहरी उदार । करै जवाहरकौ वेपार[2] ॥
दानिसाहिजीकी सरकार । लेवा देई रोक-उधार ॥ १४५ ॥

चौंरि[3] मास बीते इस भाति । कबहूं दुख कबहू सुख सांति ॥
फिरि आए फत्तेपुर गाउ । सकल कुटंब भयौ इक ठांउ ॥ १४६ ॥

मास दोई[4] बीते इस बीच । सुनी आगरे गयौ किलीच ॥
खरगसेन परिवारसमेत । फिरि आए आपनै निकेत ॥ १४७ ॥

जहा तहांसौं सब जौंहरी । प्रगटे जथा गुपत भौहरी ॥
संवत सोलह सै छप्पनै । लागे सब कारज आपनै ॥ १४८ ॥

बरस एकलौं बरती छेम । आए साहिब साहि सलेम ॥
बड़ा साहिजादा जगबद । अकब्बर पातिसाहिकौ नंद ॥ १४९ ॥

आखेटक कोल्हूबन काज । पातिसाहिकी भई अवाज ॥
हाकिम इहा जौनपुर थान। लघु किलीच नूरम सुलतान ॥१५०॥

---

१ ब करते सकल विलास । २ ब व्यौहार । ड ब्यापार । ३ ब च्यार ।
४ ब दोक ।

ताहि हुकम अकबरकौ भयौ । सहिजादा कोल्हूवन गयौ ॥
तातैं सो किछु कर तू जेम । कोल्हूवन नहिं जाय सलेम ॥ १५१ ॥

एहि विधि अकबरकौ फुरमान । सीस चढ़ायौ नूरम खान ॥
तब तिन नगर जौनपुर बीच । भयौ गढ़पती ठानी मीच ॥१५२॥

जहां तहां रूधी सब वाट । नांउ न चलै गौमती-घाट ॥
पुल दरवाजे दिए कपाट । कीनौ तिन विग्रहकौ ठाठ ॥ १५३ ॥

राखे बहु पायक असवार । चहु दिसि बैठे चौकीदार ॥
कोट कंगूरेन्ह राखी नाल । पुरमैं भयौ ऊंचलाचाल ॥ १५४ ॥

करी बहुत गढ़ संजोवनी । अंन वैस्न जलकी ढोवनी ॥
जिरह जीन बदूक अपार । बहु दारू नाना हथियार ॥ १५५ ॥

खोलि खजाना खरचै दाम । भयौ आपु सनमुख सग्राम ।
प्रजालोग सब व्याकुल भए । भागे चहु ओर उठि गए ॥ १५६ ॥

महा नगरि सो भई उजार । । अब आई अँब आई धार ॥
सब जौंहरी मिले इक ठौर । नगरमांहि नर रह्यौ न और ॥१५७॥

क्या कीजै अब कौन बिचार । मुसकिल भई सहित परिवार ॥
रहे न कुसल न भागे छेमें । पकरी सांप छछूंदरि जेम ॥१५८॥

तब सब मिलि नूरमके पास । गए जाइ कीनी अरदास ॥
नूरम कहै सुनहु रे साहु । भाँवै इहां रहौ कै जाहु ॥ १५९ ॥

मेरौ मरन बन्यौ है आइ । मैं क्या तुमकौं कहौं उपाइ ॥
तब सब फिरि आए निज धाम । भागहु जो किछु करहि सो राम ॥१६०

---

१ स उचाला । २ ब बस्तु । ३ अ आई यह । ४ अ खेम । ५ अ भावै इहा उहाकौ जाहु ।

दोहरा

आपु आपुकौं सब भगे, एकहि एक न साथ ।
कोऊ काहूकी सरन, कोऊ कहूं अनाथ ॥ १६१ ॥

चौपई

खरगसेन आए तिस ठांउ । दूलह साहु गए जिस गांउ ॥
लछिमनपुरा गांउके पास । तहां चौधरी लछिमनदास ॥ १६२ ॥
तिन लै राखे जंगलमांहि । कीनौं कौल बोल दै बाहि ॥
इहि बिधि बीते दिवस छ सात । सुनी जौनपुरकी कुसलात ॥ १६३ ॥
साहि सलेम गोमती तीर । आयौ तब पठयौ इक मीर ॥
लालाबेग मीरकौ नांउ । है वकील आयौ तिस ठाउ ॥ १६४ ॥
नरम गरम कहि ठाढ़ौ भयौ । नूरमकौं लिवाइ लै गयौ ॥
जाइ साहिके डारौ पाइ । निरभै कियौ गुनह बकसाइ ॥ १६५ ॥
जब यह बात सुनी इस भांति । तब सबके मन बरती सांति ॥
फिरि आए निज निज घर लोग । निरभै भए गयौ भय-रोग ॥ १६६ ॥
खरगसेन अरु दूलह साह । इनहू पकरी घरकी राह ॥
सपरिवार आए निज धाम । लागे आप आपने काम ॥ १६७ ॥
इस अवसर बानारसि बाल । भयौ प्रवान चतुर्दस साल ॥
पंडित देवदत्तके पास । किछु विद्या तिन करी अभ्यास ॥ १६८ ॥
पढ़ी 'नाममाला' सै दोइ । और 'अनेकारथ' अवलोइ ॥
जोतिस अलंकार लघु कोक । खंड स्फुट सै च्यारि सिलोक ॥ १६९ ॥

१ अ नाउकौ वास । २ अ सुनौ जौनपुरकी यह बात । ३ अ सलीम। ४ अ अपने अपने ।

विद्या पढ़ि विद्यामैं रमै । सोलह सै सतावने समै ॥
तजि कुल-कान लोककी लाज । भयौ बनारसि आसिखबाज ॥१७०

करै आसिखी धरि मन धीर । दरदबंद ज्यौं सेख फकीर ॥
इकटक देखि ध्यान सो धरै । पिता आपनेकौ धन हरै ॥ १७१ ॥

चोरै चूंनी मानिक मनी । आनै पान मिठाई घनी ॥
भेजै पेसकसी हित पास । आपु गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

इस अंतर चौमास बितीत । आई हिमरितु व्यौपी सीत ॥
खरतर अभैधरम उवझाइ । दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ ॥ १७३ ॥

भानचंद मुनि चतुर विशेष । रामचंद बालक गृह-भेष ॥
आए जती जौनपुरमांहि । कुल श्रावक सब आवहिं जांहि ॥१७४

लखि कुल-धरम बनारसि बाल । पिता साथ आयौ पोसाल ॥
भानचंदसौं भयौ सनेह । दिन पोसाल रहै निसि गेह ॥ १७५ ॥

भानचंदपै विद्या सिखै । पंचसंधिकी रचना लिखै ॥
पढ़ै सनातर-विधि अस्तोन । फुट सिलोक बहु बरन कौन ॥१७६॥

सामाइक पडिकौना पंथ । छंद कोस स्रुतबोध गरंथ ॥
इत्यादिक विद्या मुखपाठ । पढ़ै सुद्ध साधै गुन आठ ॥ १७७ ॥

कबहू आइ सबद उर धरै । कबहू जाइ आसिखी करै ॥
पोथी एक बनाई नई । मित हजार दोहा चौपई ॥ १७८ ॥

तामैं नवरस-रचना लिखी । पै विसेस बरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि बनारसि भए । मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥ १७९ ॥

---

१ ङ व्यापा ।

दोहरा

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रसमांहि ॥
खान-पानकी सुध नहीं, रोजगार किछु नांहि ॥ १८० ॥

चौपई

ऐसी दसा बरस द्वै रही। मात पिताकी सीख न गही।
करि आसिखी पाठ सब पढे। संवत सोलह सै उनसठे ॥ १८१ ॥

दोहरा

भए पंचदस बरसके, तिस ऊपर दस मास।
चले पाउजा करनकौं, कवि बनारसीदास ॥ १८२ ॥
चढ़ि डोली सेवक लिए, भूषन वसन बनाइ।
खैराबाद नगरविषै, सुखसौं पहुचे आइ ॥ १८३ ॥

चौपई

मास एक जब भयौ वितीत। पौषै[1] मास सितै[2] पख रितु सीत ॥
पूरब करम उदै संजोग। आकसमात वातकौ[3] रोग ॥ १८४ ॥

दोहरा

भयौ बनारसिदास-तनु, कुष्ठरूप सरवंग।
हाड हाड उपजी बिथा, केस रोम भुव-भंग ॥ १८५ ॥
बिस्फोटक अगनित भए, हस्त चरन चौरंग।
कोऊ नर साला ससुर, भोजन करै न संग ॥ १८६ ॥
ऐसी असुभ दसा भई, निकट न आवै कोइ।
सासू और बिवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥ १८७ ॥

---

१ ड पोष। २ अ रितु सित पख सीत। ३ अ वात सयोग।

जल-भोजनकी लैंहि सुध, दैंहि आनि मुखमांहि ।
ओखद लावहिं अंगमैं, नाक मूंदि उठि जांहि ॥ १८८ ॥

चौपई

इस अवसर नर नापित कोइ । ओखद-पुरी खवावै सोइ ॥
चने अलूनै भोजन देइ । पैसा टका किछू नहि लेइ ॥ १८९ ॥

चारि मास बीते इस भांति । तब किछु विथा भई उपसांति ॥
मास दोइ औरौ चलि गए । तब बनारसी नीके भए ॥ १९० ।

दोहरा

न्हाइ धोइ ठाढ़े भए, दै नाऊकौं दान ।
हाथ जोड़ि बिनती करी, तू मुझ मित्र समान ॥ १९१

नापित भयौ प्रसंन अति, गयौ आपने धाम ।
दिन दस खैराबादमैं, कियौ और बिसराम ॥ १९२

फिरि आए डोली चढ़े, नगर जौनपुरमांहि ।
सासु ससुर अपनी सुता, गौंने भेजी नांहि ॥ १९३

आइ पिताके पद गहे, मां रोई उर ठोकि ।
जैसे चिरी कुरीजकी, त्यौं सुत-दसा बिलोकि ॥ १९४

खरगसेन लजित भए, कुवचन कहे अनेक ।
रोए बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५

दिन दस बीस परे दुखी, बहुरि गए पोसाल ।
कै पढ़ना कै आसिखी, पकरी पहिली चाल ॥ १९६

१ ब देहमैं ।

चौपई

मासि चारि ऐसी विधि भए । खरगसेन पटनै उठि गए ॥
फिरि बनारसी खैराबाद । आए मुख लज्जित सविषाद ॥ १९७
मास एक फिरि दूजी बार । घरमैं रहे न गए बजार ॥
फिरि उठि चले नारि लै संग । एक सुडोली एक तुरंग ॥ १९८
आए नगर जौनपुर फेरि । कुल कुटंब सब बैठे घेरि ॥
गुरुजन लोग देहि उपदेस । आसिखबाज सुनें दरवेस ॥१९९
बहुत पढ़ैं बांभन अरु भाट । बनिकपुत्र तौ बैठे हाट ॥
बहुत पढ़ै सो मॅगै भीख । मानहु पूत बड़ेकी सीख ॥ २००

दोहरा

इत्यादिक स्वारथ वचन, कहे सबनि बहु भांति ।
मानै नहीं बनारसी, रह्यौ सहज-रस माति ॥ २०१

चौपई

फिरि पोसाल भानपै पढ़ै, आसिखबाजी दिन दिन बढ़ै ॥
काऊ कह्यौ न मानै कोइ, जैसी गति तैसी मति होइ ॥ २०२
कर्माधीन बनारसि रमै, आयौ संवत साठा समै ॥
साठै सबत एती बात, भई जु कछु कहौं बिख्यात ॥ २०३
साठै करि पटनेंसौं गौन । खरगसेन आए निज भौन ॥
साठै ब्याही बेटी बड़ी । बितरी पहिली संपति गडी ॥ २०४
बनारसीकैं [1]बेटी हुई । दिवस छ-सातमांहि सो मुई ॥
जहमति परे बनारसिदास । कीनैं लघन बीस उपास ॥ २०५

---

१ अ बेटी भई । इस प्रतिकी टिप्पणीमें इस लड़कीका नाम ‘ बीरबाई ’ लिखा है ।

लागी छुधा पुकारै सोइ । गुरुजन पथ्य देइ नहि कोइ ॥
तब मांगै देखनकौं रोइ । आध सेरकी पूरी दोइ ॥ २०६

खाट हेठ ल धरी दुराइ । सो बनारसी भखी चुराइ ॥
वाही पथसौं नीकौ भयौ । देख्यौ लोगनि कौतुक नयौ ॥२०७॥

साठै सवत करि दिढ़ हियौ । खरगसेन इक सौदा लियौ ॥
तामैं भए सौगुने दाम । चहल पहल हूई निज धाम ॥ २०८

यह साठे संबतकी कथा । ज्यौं देखी मैं बरनी तथा ॥
समै उनसठे सावन बीच । कोऊ संन्यासी नर नीच ॥ २०९

आइ मिल्यौ सो आकसमात । कही बनारसिसौं तिन बात ॥
एक मंत्र है मेरे पास । सो विधिरूप जपै जो दास ॥ २१०

बरस एक लौं साधै नित्त । दिढ़ प्रतीति आनै निज चित्त ॥
जपै बैठि छेरछोभी[१] मांहि । भेद न भाखै किस ही पांहि ॥ २११

पूरन होइ मंत्र जिस बार । तिसके फलका कहूं बिचार ॥
प्रात समय आवै गृहद्वार । पावै एक पड़्या दीनार ॥ २१२

बरस एक लौं पावै सोइ । फिरि साधै फिरि ऐसी होइ ॥
यह सब बात बनारसि सुनी । जान्या महापुरष है गुनी ॥ २१३

पकरे पाइ लोभके लिए । मांगै मंत्र बीनती किए ॥
तब तिन दीनौं मंत्र सिखाइ । अक्खर कागदमांहि लिखाइ ॥ २१४

वह प्रदेस उठि गयौ स्वतंत्र । सठ बनारसी साधै मंत्र ॥
बरस एक लौं कीनौ खेद । दीनौं नांहि औरकौं भेद ॥ २१५

---

१ ड छरछूवी, इ छरछोबी ।

चरस एक जब पूरा भया। तव बनारसी द्वारै गया ॥
नीची दिष्टि विलोकै धरा। कहुं दीनार न पावै परा ॥२१६॥

फिरि दूजै दिन आयौ द्वार। सुपने नहि देखै दीनार ॥
व्याकुल भयौ लोभके काज। चिंता वढ़ी न भावै नाज ॥२१७॥

कही भानसौं मनकी दुधा। तिनि जब कही वात यह मुधा ॥
तव वनारसी जोनी सही। चिंता गई छुधा लहलही ॥ २१८ ॥

जोगी एक मिल्यौ तिस आइ। बानारसी दियौ भौंदाइ ॥
दीनी एक संखोली हाथ। पूजाकी सामग्री साथ ॥ २१९

कहै सदासिव मूरति एह। पूजै सो पावै सिव-गेह ॥
तव वनारसी सीस चढ़ाइ। लीनी नित पूजै मन लाइ ॥ २२०

ठानि सनानि भगति चित धरै। अष्टप्रकारी पूजा करै ॥
सिव सिव नाम जपै सौ वार। आठ अधिक मन हरख अपार ॥२२१

दोहरा

पूजै तव भोजन करै, अंनपूजै पछिताइ।
तासु दंड अगिले दिवस, रूखा भोजन खाइ ॥ २२२

ऐसी विधि बहु दिन गएँ, करत गुपत सिवपूज।
आयौ संवत इकसठा, चैत मास सित दूज ॥ २२३

साहिव साहि सलीमकौ, हीरानंद मुकीम।
ओसवाल कुल जौंहरी, बनिक बित्तकी सीम ॥२२४

१ ब मानी। २ व त्रिन पूजै। ३ अ भए। ४ अ ड वृत्ति।

तिनि प्रयागपुर नगरसौं, कीनौ उद्दम सार।
संघ चलायौ सिखिरकौं, उतरयौ गंगापार ॥ २२५

ठौर ठौर पत्री दई, भई खबर जिततित्त।
चीठी आई सेनकौं, आवहु जात-निमित्त ॥ २२६

खरगसेन तब उठि चले, ह्वै तुरंग असवार।
जाइ नंदजीकौं मिले, तजि कुटंब घरबार ॥ २२७

चौपई

खरगसेन जात्राकौं गए। बानारसी निरंकुस भए ॥
करैं कलह मातासौं नित्त। पारस-जिनकी जात निमित्त ॥२२८

दही दूध घृत चावल चने। तेल तबोल पहुप अनगने ॥
इतनी वस्तु तजी ततकाल। पन लीनौ कीनौ हठ बाल ॥२२९

दोहरा

चैत महीनै पन लियौ, बीते मास छ सात।
आई पून्यौ कातिकी, चलै लोग सब जात ॥२३०

चले सिवमती न्हानकौं, जैनी पूजन पास।
तिन्हके साथ बनारसी, चले बनारसिदास ॥ २३१

कासी नगरीमैं गए, प्रथम नहाए गंग।
पूजा पास सुपासकी, कीनी धरि मन रंग ॥ २३२

जे जे पनकी वस्तु सब, ते ते मोल मगाइ।
नेवज ज्यौं आगें धरै, पूजै प्रभुके पाइ ॥ २३३

---

१ ब पार्श्वनाथकी। २ ब प्रथमै न्हाये। ३ ब चग।

दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारसमांहि ।
पूजा कारन द्योहरे, नित प्रभात उठि जाहि ॥ २३४

एहि विधि पूजा पासकी, कीनी[1] भगतिसमेत ।
फिरि आए घर आपनै, लिएं संखोली सेत ॥ २३५

पूजा संख महेसकी, करकै तौ किछु खाहि ।
देस विदेस इहा उहा, कबहूं भूली नाहि ॥ २३६

सोरठा

सखरूप सिवदेव, महा संख वानारसी ।
दोऊ मिले अबेवं[2], साहिव सेवक एकसे ॥ २३७

दोहरा

इस ही बीचि उरे परे, खरगसेनके भौन ।
भयौ एक अलपायु सुत, ताहि बखानै कौन ॥ २३८

चौपई

संवत सोलह सै इकसठे । आए लोग संघसौं नठे ॥
केई उबरे केई मुए । केई महा जहमती हुए ॥ २३९
खरगसेन पटनेंमौं आइ । जहमति परे महा दुख पाइ ॥
उपजी विथा उदरैम[3] रोग । फिरि उपसमी आउर्वल[4]-जोग ॥ २४०
संघ साथ आए निज धाम । नंद जौनपुर कियौ मुकाम ॥
खरगसेन दुख पायौ बाट । घरम आइ परे फिरि खाट ॥ २४१

---

१ अ कीधी । २ व अभेव । ३ अ उदरके । ४ ब आरवल, ड आयुवल ।

हीरानंद लोग-मनुहारि । रहे जौनपुरमें दिन चारि ॥
पंचम दिवस पारके बाग । छट्टे दिन उठि चले प्रयाग ॥ २४२

दोहरा

संघ फूटि चहुं दिसि गयौ, आप आपकौ होइ ।
नदी नांव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिले नहिं कोइ ॥ २४३

चौपई

इहि विधि दिवस कैकु चलि गए । खरगसेनजी नीके भए ॥
सुख समाधि बीते दिन घनें । बीचि बीचि दुख जाहि न गनें ॥२४४

दोहरा

इस अवसर सुत अवतर्यौ, बानारसिके गेह ।
भव पूरन करि मरि गयौ, तजि दुलभ नरदेह ॥ २४५

चौपई

संवत सोलह स बासठा । आयौ कातिक पावस नठा ॥
छत्रपति अकबर साहि जलाल । नगर आगरे कीनौं काल ॥ २४६
आई खबर जौनपुरमाह । प्रजा अनाथ भई बिनु नाह ॥
पुरजन लोग भए भयभीत । हिरदै व्याकुलता मुख पीत ॥ २४७

दोहरा

अकसमात बानारसी, सुनि अकबरकौ काल ।
सीढी परि बैठ्यौ हुतो, भयौ भरम चित चाल ॥ २४८

---

१ ब केऊ । २ ब कातिग ।

आइ तंवाला[1] गिरि पर्‌यौ, सक्यौ न आपा राखि।
फूटि भाल लोहू[2] चल्यौ, कह्यौ 'देव' मुख-भाखि ॥ २४९ ॥
लगी चोट पाखानकी, भयौ गृहांगन लाल।
'हाइ हाइ' सब करि उठे, मात तात बेहाल ॥ २५०

चौपई

गोद उठाय माइनैं लियौ। अंबर जारि घाउमैं दियौ ॥
खाट बिछाइ सुवायौ बाल। माता रुदन करै असराल ॥ २५१
इस ही बीच नगरमैं सोर। भयौ उदगल चारिहु ओर ॥
घर घर दर दर दिए कपाट। हटवानी नहिं बैठे हाट ॥ २५२
भले बस्त्र अरु भूसन भले। ते सब गाडे धरती तले ॥
हडवाई गाडी कहु और। नगदी माल निभरमी ठौर ॥ २५३
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन्ह पहिरे मोटे बस्त्र ॥
ओढ़े कंबल अथवा खेस। नारिन्ह पहिरे मोटे बेस ॥ २५४
ऊच नीच कोउ न पहिचान। धनी दरिद्री भए समान ॥
चौरि[3] धारि दीसै कहुं नाहि। यौं ही अपभय लोग डरांहि ॥ २५५

दोहरा

धूम धाम दिन दस रही, बहुरौ बरती साति।
चीठी आई सबनिक, समाचार इस भाति ॥ २५६
प्रथम पातिसाही करी, बावँन[4] बरस जलाल।
अब सोलहसै बासठे, कातिक हूओ काल ॥ २५७

---

१ ब 'तिवाला'। २ ब लोही ३ ब चोर धार।
४ डा० वासुदेवशरणजीकी राय है कि अकबरका ५२ वर्षतक राज्य करना हिजरी सनकी दृष्टिसे जान पड़ता है जिसमें चान्द्रमासकी गणना चलती है। यों अकबरका ५० वर्ष राज्य करना सुविदित है।

अकबरकौ नंदन बड़ौ, साहिब साहि सलेम।
नगर आगरेमैं तखत, बैठौ अकबर जेम ॥ २५८

नांउ धरायौ नूरदीं, जहांगीर सुलतान।
फिरी दुहाई मुलकमैं, बरती जहं तहं आन ॥ २५९ ॥

इहि बिधि चीठीमैं लिखी, आई घर घर बार।
फिरी दुहाई जौनपुर, भयौ सु जयजयकार ॥ २६० ॥

चौपई

खरगसेनके घर आनंद। मंगल भयौ गयौ दुख-दंद ॥
बानारसी कियौ असनान। कीजै उत्सव दीजै दान ॥ २६१ ॥

एक दिवस बानारसिदास। एकाकी ऊपर आवास ॥
बैठ्यौ मनमैं चिंतै एम। मैं सिव-पूजा कीनी केम ॥ २६२ ॥

जब मैं गिर्यौ पर्यौ मुरछाइ[1]। तब सिव किछु न करी सहाइ ॥
यहु बिचारि सिव-पूजा तजी। लखी प्रगट सेवामैं कजी ॥ २६३

तिस दिनसौं पूजा न सुहाइ। सिव-संखोली धरी उठाइ ॥
एक दिवस मित्रन्हके साथ। नौकृत पोथी लीनी हाथ ॥ २६४

नदी गोमतीके बिचँ[2] आइ। पुलके ऊपरि बैठे जाइ ॥
बाचे सब पोथीके बोल। तब मनमैं यहु उठी कलोल ॥ २६५

एक झूठ जो बोलै कोइ। नरक जाइ दुख देखै सोइ ॥
मैं तो कलपित बचन अनेक। कहे झूठ सब साचु न एक ॥२६६।

कैसैं बनै हमारी बात। भई बुद्धि यह आकसमात ॥
यहु कहि देखन लाग्यौ नदी। पोथी डार दई ज्यौं रदी ॥ २६७।

---

१ अ स मुरझाय। २ ब इ तट।

हाइ हाइ करि बोले मीत । नदी अथाह महाभयभीत ॥
तामैं फैलि गए सब पत्र । फिरि कहु कौन करै एकत्र ॥ २६८ ॥

घरी द्वैक पछितानैं मित्र । कहैं कर्मकी चाल विचित्र ॥
यहु कहिकैं सब न्यारे भए । बनारसी आपुन घर गए ॥ २६९

खरगसेन सुनि यहु बिरतंत । हूए मनमैं हरषितवंत ॥
सुतके मन ऐसी मति जगै । घरकी नाउँ रही-सी लगै ॥ २७०

दोहरा

तिस दिनसौं बानारसी, करै धरमकी चाह ।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुलकी राह ॥ २७१ ॥

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ ।
जैसैं[4] बालककी दसा, तरुन भए मिटि जाइ ॥ २७२ ॥

उदै होत सुभ करमके, भई असुभकी हानि ।
तातैं तुरित बनारसी, गही धरमकी बानि ॥ २७३ ॥

चौपई

नित उठि प्रात जाइ जिनभौन । दरसनु बिनु न करै दंतौन ।
चौदह नेम बिरति उच्चरै । सामाइक पड़िकौना करै ॥२७४

हरी जाति राखी परवांन । जावजीव बैंगन-पचखान ।
पूजाबिधि साधै दिन आठ । पँढ़ै बीनती पद मुख-पाठ ॥ २७५

---

१ अ ड घड़ी । २ अ बनारसी अपने । ३ ब नींउ । ४ अ जैसी ।
५ ड पूजापाठ पढै मुखपाठ ।

दोहरा

इहि विधि जैनधरम कथा, कहै सुनै दिन रात।
होनहार कोउ न लखै, अलख जीवकी जात ॥ २७६

तब अपजसी बनारसी, अब जस भयौ विख्यात।
आयौ संवत चौसठा, कहौं तहांकी बात ॥ २७७

खरगसेन श्रीमालकै, हुती सुता द्वै ठौर।
एक वियाही जौनपुर, दुतिय कुमारी और ॥ २७८

सोऊ व्याही चौसठे, संवत फागुन मास।
गई पोंडलीपुरविषैं[1], करि चिंतादुखनास ॥ २७९

बानारसिके दूसरौ, भयौ और सुत कीर।
दिवस कैकुमैं उडि गयौ, तजि पिंजरा सरीर ॥ २८०

चौपई

कबहूं दुख कबहू सुख सांति। तीनि बरस बीते इस भांति ॥
लच्छन भले पुत्रके लखे। खरगसेन मनमाहि हरखे ॥ २८१

संवत सोलह सै सतसठा। घरकौ माल कियौ एकठा ॥
खुला जवाहर और जडाउ। कागदमाहि लिख्यौ सब भाउ ॥२८२

द्वै पुहंची[2] द्वै मुद्रा बनी। चौबिस मानिक चौतिस मनी[3] ॥
नौ नीले पन्ने दस-दून। चारि गांठि चूनी परचून ॥ २८३

एती बस्तु जवाहररूप। घृत मन बीस तेल द्वै कूप ॥
लिए जौनपुर होईं[4] दुकूल। मुद्रा द्वै सत लागी मूल ॥ २८४

---

१ ड पाटलीपुर। २ ब पौहची। ३ ब चौतिस मानिक चौबिस मनी।
४ ब हौहि।

कछु घरके कछु परके दाम । रोक उधार चलायौ काम ।
जब सब सौंज[1] भई तैयार । खरगसेन तब कियौ बिचार ॥ २८५
सुत बनारसी लियौ बुलाय । तासौं बात कही समुझाय ।
लेहु साथ यहु सौंज समस्त । जाइ आगरे बेचहु बस्त ॥ २८६
अब गृहभार कंध तुम लेहु । सब कुटंबकौं रोटी देहु ॥
यहु कहि तिलक कियौ[2] निज हाथ । सब सामग्री दीनी साथ ॥२८७

दोहरा

गाडी भार लदाइकै, रतन जतनसौं पास ।
राखे निज कच्छाविषैं, चले बनारसिदास ॥ २८८
मिली साथ गाड़ी बहुत, पाच कोस नित जांहि ।
क्रम क्रम पंथ उलंघकरि, गए इटाएमांहि ॥ २८९
नगर इटाएके निकट, करि गाड़िन्हकौ घेर ।
उतरे लोग उजारमैं, हूई संध्या-बेर ॥ २९०
घन घमंडि आयौ बहुत, बरसन लाग्यौ मेह ।
भाजन लागे लोग सब, कहां पाइए गेह ॥ २९१
सौरि उठाई[3] बनारसी, भए पयादे पाउ ।
आए बीचि सराइमैं, उतरे द्वै उंवराउ[4] ॥ २९२
भई भीर बाजारमैं, खाली कोउ न हाट ।
कहू ठौर नहिं पाइए, घर घर दिए कपाट ॥ २९३
फिरत फिरत फावा भए, बैठन कहै न कोइ ।
तलै कीचसौं पग भरे, ऊपर बरसै तोइ ॥ २९४

१ ब सौज । २ ब दियौ । ३ ब ओढ बानारसी । ४ ब उमराव ।

अंधकार रजनी समै, हिम रितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यौ, पुरुष उठ्यौ लै बांस ॥ २९५

तिनि उठाइ दीनैं बहुरि, आए गोपुर पार।
तहा झौंपरी तनकसी, बैठे चौकीदार ॥ २९६

आए तहां बनारसी, अरु श्रावक द्वै साथ।
ते बूझैं तुम कौन हौ, दुःखित दीन अनाथ ॥ २९७

तिनसौं कहै बनारसी, हम ब्यौपारी लोग।
बिना ठौर व्याकुल भए, फिरैं करम संजोग ॥ २९८

चौपई

तब तिनक चित उपजी दया। कहैं इहां बैठौ करि मया ॥
हम सकार अपने घर जांहि। तुम निसि बसौ झौंपरी मांहि ॥२९९

औरौं सुनौ हमारी बात। सरियति खबरि भएं परभात ॥
बिनु तहकीक जान नहि देहि। तब बकसीस देहु सो लेहि ॥३००

मानी बात बनारसि ताम। बैठे तहं पायौ विश्राम ॥
जल मंगाइकै धोए पाउ। भीजे बस्त्रन्ह दीनी बाउ ॥ ३०१

त्रिन बिछाइ सोए तिस ठौर। पुरुष एक जोरावर और ॥
आयौ कहै इहां तुम कौन। यह झौंपरी हमारौ भौन ॥ ३०२

सैन करौं मैं खाट बिछाइ। तुम किस ठाहर उतरे आइ ॥
कै तौ तुम अब ही उठि जाहु। कै तौ मेरी चाबुक खाहु ॥३०३

तब बनारसी है हलबले। बरसत मेहु बहुरि उठि चले ॥
उनि दयाल होइ पकरी बांह। फिरि बैठाए छायामांह ॥३०४

१. ड सब नर, ई सकाल। २ ब सो।

दीनौ एक पुरानो टाट । ऊपर आनि बिछाई खाट ।
कहै टाटपर कीजै सैन । मुझे खाट बिनु परै न चैन ।। ३०५

'एवमस्तु' बानारसि कहै । जैसी जाहि परै सो सहै ॥
जैसा कातै तैसा बुनै । जैसा बोवै तैसा लुनै ।। ३०६

पुरुष खाटपर सोया भले । तीनौ जनें खाटके तले ॥
सोए रजनी भई बितीत । ओढ़ी सौरि न व्यापी सीत ।। ३०७

भयौ प्रात आए फिरि तहां । गाड़ी सब उतरी ही जहां ॥
बरसा गई भई सुख सांति । फिरि उठि चले नित्यकी भांति ॥ ३०८

आए नगर आगरे बीच । तिस दिन फिरि बरसा अरु कीच ।
कपरा तेल घीउ धरि पार । आपु छरे आए उर पौर ।। ३०९

मन चिंतवै बनारसिदास । किस दिसि जांहि कहां किस पास ॥
सोचि सोचि यह कीनौ ठीक । मोतीकटला कियौ रफीक ।। ३१०

तहां चांपसीके घर पास । लघु बहनेऊ बंदीदास ॥
तिसके डेरै जाइ तुरंत । सुनिए 'भला सगा अरु संत' ।। ३११

यह बिचारि आए तिस पांहि । बहनेऊके डेरेमांहि ॥
हितसौं बूझै बंदीदास । कपरा घीउ तेल किस पास ।। ३१२

तब बनारसी बोलै खरा । उधरनकी कोठीमौं धरा ॥
दिवस कैकु जब बीते और । डेरा जुदा लिया इक ठौर ।। ३१३

पट-गठरी राखी तिसमांहि । नित्य नखासे आवहि जांहि ॥
बस्त्र बेचि जब लेखा किया । ब्याज-मूरै दै टोटा दिया ।। ३१४

---

१ अ वार । २ ड ई मूल ।

एक दिवस बानारसिदास । गए पार उधरनके पास ॥
बेचा घीऊ तेल सब झारि । बढ़ती नफा रुपैया च्यारि ॥ ३१५
हुंडी आई दीनैं दाम । बात उहांकी जानै राम ॥
बेंचि खोचि आए उर पार । भए जवाहर बेंचनहार ॥ ३१६
देहिं ताहि जो मांगै कोइ । साधु कुसाधु[1] न देखै टोइ ॥
कोऊ वस्तु कहूं लै जाइ । कोऊ लेइ गिरौं धरि खाइ ॥ ३१७
नगर आगरेकौ व्यौपार । मूल न जानै मूढ़ गंवार ॥
आयौ उदै असुभकौ जोर । घटती होत चली चहु ओर ॥ ३१८

दोहरा

नारे मांहि इजारके, वंध्यौ हुतौ दुल म्यान ।
नारा टूट्यौ गिरि परचौ, भयौ प्रथम यह ग्यान ॥ ३१९
खुलौ जवाहर जो हुतौ, सो सब थौ[2] उसनांहि ॥
लगी चोट गुपती सही, कही न किस ही पांहि ॥ ३२०
मानिक नौरेके[3] पले, बांध्यौ साटि[4] उचाटि ॥
धरी इजार अलंगनी, मूसा लै गयौ काटि ॥ ३२१
पहुंची[5] दोइ जड़ाउकी, बैंची गाहकपांहि ॥
दाम करोरी लेइ रह्यौ, परि देवाले माहि ॥ ३२२
मुद्रा एक जड़ाउकी, ऐसैं डारी खोइ ।
गांठि देत खाली परी, गिरी न पाई सोइ ॥ ३२३
रेज परेजी बस्तु कछु, बुगचा बागे दोइ ॥
हंडवाई घरमैं रही, और बिसाति न कोइ ॥ ३२३

१ अ असाधु। २ अ थ्यौ। ३ ब नारेके सले। ४ ब सार उबाट। ५ ब पौहची।

चौपई

इहि विधि उदै भयौ जब पाप । हलहलाइकै आई ताप ॥
तब बनारसी जहमति परे । लंघन दस निकोररे करे ॥ ३२५
फिर पथ लीनौं नीके भए । मास एक बाजार न गए ॥
खरगसेनकी चीठी घनी । आवहिं पै न देइ आपनी ॥ ३२६

दोहरा

उत्तमचद जवाहरी, दूलहकौ लघु पूत ।
सो बनारसीका वडा, बहनेऊ अरिभूत ॥ ३२७
तिनि अपने घरकौं दिए, समाचार लिखि लेख ।
पूंजी खोइ बनारसी, भए भिखारी भेख ॥ ३२८
उहां जौंनपुरमैं सुनी, खरगसेन यह बात ॥
हाइ हाइ करि आइ घर, कियौ बहुत उतपात ॥ ३२९
कलह करी निज नारिसौं, कही बान दुख रोइ ॥
हम तौ प्रथम कही हुती, सुत आवै घर खोइ ॥ ३३० ॥
कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत ।
पूंजी खोई बेहया, गया बनजका सूत ॥ ३३१ ॥
भए निरास उसास भरि, करि घरमैं बकबाद ।
सुत बनारसीकी बहू, पठई खैराबाद ॥ ३३२ ॥
ऐसी बीती जौनपुर, इहां आगरेमांहि ।
घरकी बस्तु बनारसी, बेंचि बेंचि सब खांहि ॥ ३३३ ॥

लटा कुटा जो किछु हुतौ, सो सब खायौ झांरि[1] ।
हंडवाई खाई सकल, रहे टका द्वै चारि ॥ ३३४ ॥

तब घरमैं बैठे रहैं, जांहि न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार[2] ॥ ३३५ ॥

ते बांचहिं रजनीसमै, आवहिं नर दस बीस ।
गावहिं अरु बातैं करहिं, नित उठि देंहि असीस ॥३३६॥

सो सामा घरमैं नहीं, जो प्रभात उठि खाइ ।
एक कचौरीवाल नर, कथा सुनै नित आइ ॥ ३३७ ॥

वाकी हाट उधार करि, लेंहि कचौरी सेर ।
यह प्रासुक भोजन करहिं, नित उठि[3] सांझ सवेर ॥३३८॥

कबहू आवहिं हाटमंहि, कबहू डेरामांहि ।
दसा न काहूसौं कहैं, करज कचौरी खांहिं[4] ॥ ३३९ ॥

एक दिवस बानारसी, समौ पाइ एकंत ।
कहै कचौरीवालसौं, गुपत गेह-विरतंत ॥ ३४० ॥

तुम उधार दीनौ बहुत, आगै अब जिनि देहु ।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु ॥ ३४१ ॥

कहै कचौरीबाल नर, बीस रुपैया खाहु ।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहं भावै तहं जाहु ॥ ३४२ ॥

तब चुप भयौ बनारसी, कोउ न जानै बात ।
कथा कहै बैठौ रहै, बीते मास छ-सात ॥ ३४३ ॥

---

१ ब इ डारि । २ ब उच्चारि । ३ ब प्रति । ४ अ प्रतिमें यहाँ ३४१ नम्बर पड़ा है और आगे अन्त तक यह दो नम्बरोंकी भूल चली गई है ।

कहौं एक दिनकी कथा, तांबी ताराचंद ।
ससुर बनारसिदासकौ, परवतकौ फरजंद ॥ ३४४ ॥
आयौ रजनीके समै, बानारसिके भौन ।
जब लौं सब बैठे रहे, तब लौं पकरी मौन ॥ ३४५ ॥
जब सब लोग बिदा भए, गए आपने गेह ।
तब बनारसीसौं कियौ, ताराचंद सनेह ॥ ३४६ ॥
करि सनेह विनती करी, तुम नेउते परभात ।
कालि उहां भोजन करौ, आवस्सिक यह बात ॥ ३४७ ॥

चौपई

यह कहि निसि अपने घर गयौ । फिरि आयौ प्रभात जब भयौ ॥
कहै बनारसिसौं तब सोइ । उहां प्रभात रसोई होइ ॥ ३४८ ॥
तातैं अब चलिए इस बार । भोजन करि आवहु बाजार ॥
ताराचंद कियौ छल एह । बानारसी गयौ तिस गेह ॥ ३४९ ॥
भेज्यौ एक आदमी कोइ । लटा कुटा ल आयौ सोइ ॥
घरका भाड़ा दिया चुकाइ । पकरे बानारसिके पाइ ॥ ३५० ॥
कहै बिनैसौं तारा साहु । इस घर रहौ उहां जिन जाहु ॥
हठ करि राखे डेरामाहि । तहा बनारसि रोटी खांहि ॥ ३५१ ॥
इहि बिधि मास दोइ जब गए । धरमदासके साझी भए ॥
जसू अमरसी भाई दोइ । ओसवाल दिलैवाली सोइ ॥ ३५२ ॥
करहिं जवाहर-वनज बहूत । धरमदास लघु बंधु कपूत ॥
कुबिसन करै कुसंगति जाइ । खोवै दाम अमल बहु खाइ ॥३५३॥

१ ब सु निज निज । २ अ चलिए घर अब भई रसोइ । ३ अ दिवाली ।
४ ब बाधवपूत ।

यह लखि कियौ सीरकौ संच । दी पूंजी मुद्रा सै पंच ॥
धरमदास वानारसि यार । दोऊ सीर करहिं व्यौपार ॥ ३५४ ॥

दोऊ फिरैं आगरे मांझ । करहिं गस्त घर आवहिं सांझ ।
ल्यावहिं चूंनी मानिक मनी । वेंचहिं वहुरि खरीदहिं घनी ॥३५५॥

लिखहिं रोजनामा खतिआइ । नामी भए लोग पतिआइ ॥
वेंचहिं लेंहिं चलांवहिं काम । दिए कचौरीवाले दाम ॥ ३५६ ॥

भए रुपैया चौदह ठीक । सव चुकाइ दीनै तहकीक ॥
तीनि चार करि दीनौं माल । हरषित कियौ कचौरीवाल ॥३५७॥

दोहरा

वरस दोइ साझी रहे, फिर मन भयौ विषाद ।
तव वनारसीकी चली, मनसा खैरावाद ॥३५८॥

एक दिवस वानारसी, गयौ साहुके धाम ।
कहै चलाऊ हम भए, लेहु आपने दाम ॥ ३५९ ॥

चौपई

जस्तु साह तव दियौ जुआव । वेचहु थैलीकौ असवाव ॥
जव एकठे हौंहि सव थोक । हमकौं दाम देहु तव रोक ॥३६०॥

तव वनारसी वेची वस्त । दाम एकठे किए समस्त ॥
गनि दीनैं मुद्रा सै पंच । वाकी कछू न राखी रंच ॥३६१॥

दोहरा

वरस दोइमैं दोइ सै, अधिके किए कमाइ ।
वेची वस्तु वजारमैं, वढ़ंता गयौ समाइ । ॥ ३६२ ॥

---

१ व और । २ अ वजावहिं । ३ अ ड विढता ।

सोलह से सत्तरि समै, लेखा कियौ अचूक ।
न्यारे भए बनारसी, करि साझा द्वै टूक ॥ ३६३ ॥

चौपई

जो पाया सो खाया सर्व । वाकी कछू न बांच्या[1] दर्व ॥
करी मसक्कति गई अकाथ । कौड़ी एक न लागी हाथ ॥३६४॥
निकसी [2]धौंधी सागर मथा । भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि । पूजी गई गांड़िमैं पैठि ॥ ३६५ ॥
सो वनारसीकी गति भई । फिरि आई दरिद्रता नई ॥
वरस डेढ़ लौं नाचे भले । है खाली घरकौं उठि चले ॥ ३६६ ॥
एक दिवस फिरि आए हाट । घरसौं चले गलीकी वाट ॥
सहज दिष्टि कीनी जव नीच । गठरी एक परी [3]पैथ वीच ॥३६७॥
सो बनारसी लई उठाइ । अपने डेरे खोली आइ ॥
मोती आठ और किछु नांहि । देखत खुसी भए मनमांहि ॥३६८॥
ताइत एक गढ़ायौ नयौ । मोती मेले संपुट दयौ ॥
बांध्यौ कटि कीनौ बहु यत्न । जनु पायौ चिंतामनि रत्न ॥३६९॥
अंतरधनु राख्यौ निज पास । पूरब चले बनारसिदास ॥
चले चले आए तिस ठांउ । खराबाद नाम जहां गांउ ॥३७०॥
कल्ला साहु ससुरके धाम । संध्या आइ कियौ विश्राम ॥
रजनी वनिता पूछै बात । कहौ आगरेकी कुसलात ॥ ३७१ ॥
कहै बनारसि माया-बैन । बनितौं[4] कहै झूठ सब फैन ॥
तब बनारसी सांची कही । मेरे पास कछू नहिं सही ॥ ३७२ ॥

---

१ अ वाचा । २ अ योथी । ३ अ मग । ४ अ ड नारी ।

जो कछु दाम कमाए नए । खरच खाइ फिरि खाली भए ॥
नारी[1] कहै सुनौ हो कंत । दुख सुखकौ दाता भगवंत ॥३७३॥

दोहरा

समौ पाइकै दुख भयौ, समौ पाइ सुख होइ ।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुन्न फल दोइ ॥ ३७४ ॥

चौपई

कहत सुनत अर्गलपुर-बात । रजनी गई भयौ परभात ॥
लहि एकंत कंतके पानि । बीस रुपैया दीए आनि ॥ ३७५ ॥
ऐ[2] मैं जोरि धरे थे दाम । आए आज तुम्हारे काम ॥
साहिब चिंत न कीज कोइ । पुरुष जिए तो सब कछु होइ ॥३७६॥
यह कहि नारि गई मां पास । गुपत बात कीनी परगास ॥
माता काहूसौं जिनि कहौ । निज पुत्रीकी लज्जा वहौ ॥३७७॥

दोहरा

थोरे दिनमैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय ।
नाही तौ दिन कैकुमैं, निकसि जाइगौ पीय ॥ ३७८ ॥

चौपई

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा । बात न कहै जात है गड़ा ।
कहै माइ जिनि होइ उदास । द्वै सै मुद्रा मेरे पास ॥ ३७९ ॥
गुपत देउं तेरे करमांहि । जो वै बहुरि आगरे जांहि ।
पुत्री कहै धन्य तू माइ । मैं उनकौं निसि बूझा जाइ ॥ ३८० ॥

---

१ ब बनिता कहै सुनो तुम कत । २ ब प्रतिमें यह पक्ति नहीं है ।

रजनी समै मधुर मुख भास। वनिता कहै बनारसि पास।
कंत तुम्हारौ कहा बिचार[1]। इहां रहौ कै करौ बिहार॥ ३८१॥
बानारसी कहै तियपांहि। हम तू साथ जौनपुर जांहि।
वनिता कहै सुनहु पिय बात। उहां महा बिपदा उतपात॥ ३८२
तुम फिर जाहु आगरेमांहि। तुमकौं और ठौर कहुं नांहि।
बानारसी कहै सुन तिया। बिनु[2] धन मानुषका धिग जिया॥ ३८३
दे धीरज फिरि बोलै बाम। करहु खरीद देउं मैं दाम॥
यह कहि दाम आनि गनि दिए। बात गुपत राखी निज हिए॥ ३८४॥
तब बनारसी बहुरौ जगे। एती बात करनकौं लगे॥
करैं खरीद धोवावैं चीर। ढूंढैं मोती मानिक हीर॥ ३८५॥
जोरहिं 'अजितनाथके छंद'। लिखहिं 'नाममाला' भरि बंदै[3]॥
च्यारौं काज करहिं मन लाइ। अपनी अपनी बिरिया पाइ॥ ३८६
इहि बिधि च्यारि महीनें गए। च्यारि काज संपूरन भए॥
करी 'नाममाला' सै दोइ। राखे 'अजित छंद' उरपोइ॥ ३८७
कपरा धोइ भयौ तैयार। लियौ मोल मोतीकौ हार॥
अगहन मास सुकल बारसी। चले आगरै बानारसी॥ ३८८॥

दोहरा

बहुरौं आए आगरै, फिरिकै दूजी बार।
तब कटले परबेजके, आनि उतारयौ भार॥ ३८९॥

चौपई

कटलेमांहि ससुरकी हाट। तहां करहि भोजनकौ ठाठ॥
रजनी सोवहि कोठीमांहि। नित उठि प्रात नखासे जांहि॥ ३९०

---

१ अ विचार, ब ई व्यौहार। २ ब धिग बिनु दाम पुरुषकौ जिया।
३ ब वृंद।

फरि वठहि वहु करै उपाइ । मदा कपरा कछु न विकाइ ।
आवहि जाहि करहि अति खेद । नहि समुझै भावीकौ भेद ॥ ३९१

दोहरा

मोती-हार लियौ हुतौ, दै मुद्रा चालीस ।
सौ वेच्यौ सत्तरि उठे, मिले रुपइआ तीस ॥ ३९२ ॥

चौपई

तव वनारसी करै विचार । भला जवाहरका व्यापार[1] ॥
हुए पौन दूनें इस मांहि । अव सौ वस्त्र खरीदहि नांहि ॥३९३॥
च्यारि मास लौं कीनौ धंध । नहिं विकाइ कपरा पग वध ॥
वैनीदास खोवरा गोत । ताकौ ' दास नरोत्तम ' पोत ॥ ३९४ ॥

दोहरा

सो वनारसीकौ हितू, और वदलिआ ' थान ' ।
रात दिवस क्रीडा करहिं, तीनौं मित्र समान ॥ ३९५ ॥

चौपई

चढ़ि गाडीपर तीनौं डौल । पूजा हेतु गए भर कौल ।
कर पूजा फिरि जोरे हाथ । तीनौं जनें एक ही साथ ॥ ३९६ ॥
प्रतिमा आगै भाखैं एहु । हमकौं नाथ लच्छिमी देहु ॥
जब लच्छिमी देहु तुम तात । तब फिरि करहिं तुम्हारी जात ॥
यह कहिक आए निज गेह । तीनौं मित्र भए इक देह ।
दिन अरु रात एकठे रहैं । आप आपनी बातैं कहैं ॥ ३९८ ॥
आयौ फागुन मास विख्यात । बालचंदकी चली बरात ॥
ताराचंद मौठिया गोत । नेमाकौ सुत भयौ उदोत ॥ ३९९

---

१ व व्यौहार।

कही वनारसिसौं तिन वात । तू चलु मेरे साथ वरात ॥
तव अंतरधन मोती काढ़ि । मुद्रा तीस और द्वै वाढ़ि ॥ ४००
वेंचि खोंचिकै आनैं दाम । कीनौ तव वरातिकौ साम ॥
चले वराति वनारसिदास । दूजा मित्र नरोत्तम पास ॥ ४०१
मुद्रा खरच भए सव तिहां । ह्वै वरात फिरि आए इहा ॥
खैरावादी कपरा झारि । वेच्यौ घटे रुपइया च्यारि ॥ ४०२
मूल-ब्याज दै फारिक भए । तव सु नरोत्तमके घर गए ॥
भोजन करकै दोऊ यार । वैठे[2] कियौ परस्पर प्यार ॥ ४०३

दोहरा

कहै नरोत्तमदास तव, रहौ हमारे गेह ।
भाईसौं क्या भिन्नता, कपैटीसौं क्या नेह ॥ ४०४

तव वनारसी ऊतर भनै । तेरे घरसौं मोहि न वनै ।
कहै नरोत्तम मेरे भौन । तुमसौं वोलै ऐसा कौन ॥ ४०५
तव हठकरि राखे घरमांहि । भाई कहै जुदाई नांहि ।[3]
काहू दिवस नरोत्तमदास । ताराचंद मौठिय [illegible]
वैठे तव उठि वोले साहु । तुम वनार[illegible]
यह कहि रासि देइ तिस वार । [illegible] ॥४०७॥
आइ पार वूझे दिन भले । [illegible] ॥
सेवकं कोउ न लीनौं [illegible] ठैल ॥ ४०८

---

१ व दास । २ व [illegible] । ३ ड [illegible]
४ व सेवक [illegible]

दोहरा

प्रथम नरोत्तमको ससुर, दुतिय नरोत्तमदास ।
तीजा पुरुष बनारसी, चौथा कोउ न पास ॥ ४०९

चौपई

भाड़ा किया पिरोजाबाद । साहिजादपुरलैं मरजाद ॥
चले साहिजादेपुर गए । रथसौं उतरि पयादे भए ॥ ४१० ॥
रथका भाड़ा दिया चुकाइ । सांझि आइकै बसे सराइ ॥
आगै और न भाड़ा किया । साथ एक लीया बोझिया ॥ ४११ ॥
पहर डेढ़ रजनी जब गई । तब तहं मकर चांदनी भई ॥
इनके मन आई यह बात । कहहिं चलहु हूवा परभात ॥ ४१२ ॥
तीनौं जनें चले ततकाल । दै सिर बोझ बोझिया नाल ॥
चारौं भूलि परे पथमाहि । दच्छिन दिसि जंगलमैं जाहि ॥ ४१३
महा बीझ बन आयौ जहां । रोवन लग्यौ बोझिया तहां ॥
बोझ डारि भाग्यौ तिस ठौर । जहा न कोऊ मानुष और ॥ ४१४
तब तीनिहु मिलि कियौ बिचार । तीनि भाग कीन्हा सब भार ॥
तीनि गांठि बांधी सम भाइ । लीनी तीनिहु जनें उठाइ ॥ ४१५
कबहू कांधै कबहूं सीस । यह बिपत्ति दीनी जगदीस ॥
अरध रात्रि[5] जब भई बितीत । खिन रोवैं खिन गावैं गीत ४१६
चले चले आए तिस ठाउ । जहां बसै चोरन्हकौ गांउ ॥
बोला पुरुष एक तुम कौन । गए सूखि मुख पकरी मौन । ४१७

---

१ ब चलते साहिजादपुर । २ अ एक । ३ ब महा बिकट । ४ ब यहु बिपता । ५ ब राति ।

इन्ह परमेसुरकी लौ धरी । वह था चोरन्हका चौधरी ॥
तब बनारसी पढ़ा सिलोक । दी असीस उन दीनी धोक ॥ ४१८
कहै चौधरी आवहु पास । तुम्ह नारायण मैं तुम्ह दास ॥
आइ बसहु मेरी चौपारि । मोरे तुम्हरे बीच मुरारि ॥ ४१९
तब तीनौं नर आए तहां । दिया चौधरी थानक जहा ॥
तीनौं पुरुष भए भयभीत । हिरदैमांहि कंप मुख पीत ४२०

दोहरा

सूत काढ़ि डोरा वट्यौ, किए जनेऊ चारि ।
पहिरे तीनि तिहूं जनें, राख्यौ एक उबारि ॥ ४२१
माटी लीनी भूमिसौं, पानी लीनौं ताल ।
विप्र भेष तीनौं बनैं, टीका कीनौं भाल ॥ ४२२ ॥

चौपई

पहर दोइ लौं बैठे रहे । भयौ प्रात बादर पहपहे ॥
हय-आरूढ़ चौधरी-ईस । आयौ साथ और नर बीस ॥ ४२३ ॥
उनि कर जोरि नबायौ सीस । इन उठिकै दीनी आसीस ॥
कह चौधरी पडितराइ । आवहु मारग देहुं दिखाइ ॥ ४२४ ॥
पराधीन तीनौं उठि चले । मस्तक तिलक जनेऊ गले ॥
सिरपर तीनिहु लीनी पोट । तीन कोस जंगलकी ओट ॥ ४२५ ॥
गयौ चौधरी कियौ निबाह । आई फत्तेपुरकी राह ॥
कहै चौधरी इस मगमांहि । जाहु हमहिं आग्या हम जांहि ॥४२६॥

---

१ अ तीन ।

फत्तेपुर इन्ह रूखन तले । 'चिरं जीव' कहि तीनौं चले ॥
कोस दोइ दीसै लखैरांउ । फिर द्वै कोस फतेपुर-गाउ ॥ ४२७ ॥
आइ फतेपुर लीनी ठौर । दोइ मजूर किए तहां और ॥
वहुरौं त्यागि फतेपुर-वास । गए छ कोस इलाहाबास ॥ ४२८ ॥
जाइ सराइ उतारा लिया । गंगाके तट भोजन किया ॥
वानारसी नगरम गयौ । खरगसेनकौ दरसन भयौ ॥ ४२९ ॥
दौरि पुत्रनैं पकरे पाइ । पिता ताहि लीनौ उर लाइ ॥
पूछै पिता बात एकंत । कह्यौ बनारसि निज बिरतंत ॥ ४३० ॥
सुतके वचन हिएमैं धरे । खाइ पछार भूमि गिरि परे ॥
मूर्छागति आई ततकाल । सुखमैं भयौ ऊचलाचाल ॥ ४३१ ॥
घरी चारि लौं वेसुध रहे । स्वासा जगी फेरि लहलहे ॥
वानारसी नरोत्तमदास । डोली करी इलाहाबास ॥ ४३२ ॥
खरगसेन कीनैं असवार । वेगि उतारे गंगापार ॥
तीनौं पुरुष पियादे पाइ । चले जौनपुर पहुंचे आइ ॥ ४३३ ॥
वानारसी नरोत्तम मित्त । चले बनारसि वनज-निमित्त ॥
जाइ पास-जिन पूजा करी । ठाढ़े होइ विरति उच्चरी ॥४३४॥

अडिल्ल

सांझसमै दुविहार, प्रात नौकारसहि ।
एक अधेला पुन्न, निरंतर नेम गहि ॥
नौकरवाली एक जाप, नित कीजिए ।
दोष लगै परभात, तौ घीउ न लीजिए ॥ ४३५ ॥

---

१ ब लखगाव । २ व भाय ।

दोहरा

मारग वरत जथासकति, सब चौदसि उपवास ।
साखी कीनैं पास जिन, राखी हरी पचास ॥ ४३६ ॥
दोइ विवाह सुरित (?) द्वै, आगैं करनी और ।
परदारा-संगति तजी, दुहू मित्र इक ठौर ॥ ४३७ ॥
सोलह सै इकहत्तेर, सुकल पच्छ वैसाख ।
विरति धरी पूजा करी, मानहु पाए लाख ॥ ४३८ ॥

चौपई

पूजा करि आए निज थान । भोजन कीना खाए पान ॥
करै कछू व्यौपार विसेख । खरगसेनकौ आयौ लेख ॥ ४३९ ॥
चीठीमांहि वात विपरीत । वांचन लागे दोऊ मीत ॥
वानारसीदासकी चाल । खैरावाद हुती पिउसाल ॥ ४४० ॥
ताके पुत्र भयौ तीसरौ । पायौ सुख तिनि दुख वीसरौ ॥
सुत जनमैं दिन पंद्रह हुए । माता बालक दोऊ मुए ॥ ४४१ ॥
प्रथम बहूकी भगिनी एक । सो तिन भेजी कियौ विवेक ।
नाऊं आनि नारिअर दियौ । सो हम भले मूहूरत लियौ ॥४४२
एक वार ए दोऊ कथा । संडासी लुहारकी जथा ॥
छिनमहि अगिनि छिनक जलपात । त्यौं यह हरख-शोककी वात ।
यह चीठी वाची तब दुहू । जुगुल मित्र रोए करि उहूं ॥
बहुतै रुदन बनारसि कियौ । चुप ह्वै रहे कठिन करि हियौ ॥ ४४४

१ अ कीने । २ ब नापित तिल्क आनि कर कियौ ।

चहुरौं लागे अपने काज । रोजगारकौ करन इलाज ।
लेंहि देंहि थोरा अरु घना । चूंनी मानिक मोती पना ॥ ४४५ ॥
कबहूं एक जौनपुर जाहि । कबहूं रहै बनारसमाहि ।
दोऊ सक्रुत रहैं इक ठौर । ठानहिं भिन्न भिन्न पग दौर ॥ ४४६ ॥
करहिं मसक्कति आलस नांहि । पहर तीसरे रोटी खांहि ॥
मास छ सात गए इस भाति । चहुरौं कछु पकरी उपसांति ॥४४७
घोरा दौरहि खाइ सवार । ऐसी दसा करी करतार ॥
चीनी किलिच खान उमराउ । तिन बुलाइ दीयौ सिरपाउ ॥४४८

दोहरा

बेटा बड़ो किलीचकौ, च्यार हजारी मीर ।
नगर जौनपुरकौ धनी, दाता पंडित वीर ॥ ४४९ ॥
चीनी किलिच बनारसी, दोऊ मिले बिचित्र ।
वह यासौं किरिपा करै, यह जानै मैं मित्र ॥ ४५० ॥
एहि बिधि बीते बहुत दिन, बीती दसा अनेक ।
बैरी पूरव जनमकौ, प्रगट भयौ नर एक ॥ ४५१ ॥
तिनि अनेक बिधि दुख दियौ, कहौं कहां लौं सोइ ।
जैसी उनि इनसौं करी, ऐसी करै न कोइ ॥ ४५२ ॥

चौपई

बानारसी नरोत्तमदास । दुहुकौं लेन न देइ उसास ॥
दोऊ खेद खिन्न तिनि किए । दुख भी दिए दाम भी लिए ॥४५३
मास दोइ बीते इस बीच । कहूं गयौ थौ चीनि किलीच ॥
आयौ गढ़ मौवासा जीति । फिरि बनारसीसेती प्रीति ॥ ४५४ ॥

दोहा

[illegible] ॥ ४५५ ॥

चौपई

बानारसी कहै किछु [illegible] ॥
तब [illegible] ॥ ४५६ ॥
[illegible] ॥
सोलह [illegible] ॥ ४५७ ॥
बानारसी [illegible] ॥
मांस छ मास रहे उस देस [illegible] ॥ ४५८ ॥
फिरि दोऊ आए निज ठौर । [illegible] ॥
इहां नगर कीनौ अविवेकु । [illegible] ॥ ४५९ ॥

दोहा

आउ वित्त निज गृहचरित, दान मान अपमान ।
औषध मैथुन मंत्र निज, ए नव अकह-कहान ॥ ४६० ॥

चौपई

तातैं यह न कही विख्यात । नौ बातन्हमैं यह भी बात ॥
कीनी बात भली अरु बुरी । पटनैं कासी जौनापुरी ॥ ४६१ ॥
रहे बरस द्वै तीनिहु ठौर । तब किछु भई औरकी और ॥
आगानूर नाम उमराउ । तिसकौं साहि दियौ सिरपाउ ॥ ४६२ ॥
सो आवतौ सुन्यौ जब सोर । भागे लोग गए चहु ओर
तब ए दोऊ मित्र सुजान । आए नगर जौनपुर थान ॥ ४६३ ॥

---

१ स प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है ।

घरके लोग कहूं छिपि रहे । दोऊ थार उतर दिसि वहे ॥
दोऊ मित्र चले इक साथ । पाउ पियादे लाठी हाथ ॥ ४६४ ॥
आए नगर अजोध्यामांहि । कीनी जात रहे तहा नाहि ॥
चले चले रौनांही गए । धर्मनाथके सेवक भए ॥ ४६५ ॥

दोहरा

पूजा कीनी भगतिसौं, रहे गुपत दिन सात ।
फिरि आए घरकी तरफ, सुनी पथमह बात ॥ ४६६ ॥
आगानूर बनारसी, और जौनपुर वीच ।
कियौ उदंगल वहुत नर, मारे करि अधमीच ॥ ४६७ ॥
हक नाहक पकरे सबै, जड़िया कोठीवाल ।
हुंडीवाल सराफ नर, अरु जौंहरी दलाल ॥ ४६८
काहू मारे कोररा, काहू वेड़ी पाइ ।
काहू राखे भाखसी, सबकौं देइ सजाइ ॥ ४६९

चौपई

सुनी वात यह पंथिक पास । वानारसी नरोत्तमदास ।
घर आवत हे दोऊ मीत । सुनि यह खबरि भए भयभीत ॥ ४७०
सुरहुरंपुरकौं बहुरौं फिरे । चढ़ि घड़नाई सरिता तिरे ।
जंगलमाहिं हुतौ मौवास । जहां जाइ करि कीनौ वास ॥ ४७१
दिन चालीस रहे तिस ठौर । तब लौं भई औरकी और ॥
आगानूर गयौ आगरे । छोड़ि दिए प्रानी नागरे ॥ ४७२
नर द्वै चारि हुते बहुधनी । तिन्हकौं मारि दई अति घनी ॥
बांधि लै गयौ अपने साथ । हक नाहक जानै जिननाथ ॥ ४७३

१ ख रोनाई । २ ब सुरहुरपुरसौं ।

इस अन्तर ए दोऊ जनैं । आए निरभय घर आपनैं ।
सब परिवार भयौ एकत्र । आयौ सबलसिंघकौ पत्र ॥ ४७४
सबलसिंघ मौठिआ मसंद । नेमीदास साहुकौ नंद ॥
लिख्यौ लेख तिन अपने हाथ । दोऊ साझी आवहु साथ ॥ ४७५

दोहरा

अब पूरबमैं जिनि रहौ, आवहु मेरे पास ।
यह चीठी साहू लिखी, पढ़ी बनारसिदास ॥ ४७६
और नरोत्तमके पिता, लिख दीनौ बिरतंत ।
सो कागद आयौ गुपत, उनि बांच्यौ एकंत ॥ ४७७
बांचि पत्र बानारसी, के कर दीनौ आनि ।
बांचहु ए चाचा लिखे, समाचार निज पानि ॥ ४७८
पढ़ने लगे बानारसी, लिखी आठ दस पांति ।
हेम खेम ताके तले, समाचार इस भांति ॥ ४७९
खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष ।
कपटरूप तुझकौं मिले, करि धूरतका भेषं ॥ ४८०
इनके मत जो चलहिगा, तौ मांगहिगा भीख ।
तातैं तू हुसियार रहु, यहै हमारी सीख ॥ ४८१
समाचार बानारसी, बांचे सहज सुभाउ ।
तब सु नरोत्तम जोरि कर, पकरे दोऊ पाउ ॥ ४८२
कहै बनारसिदाससौं, तू बंधव तू तात ।
तू जानहि उसकी दसा, क्या मूरखकी बात ॥ ४८३

---

१ ऊपरके 'पढन लगे' से लेकर यहाँ तककी ये चार पंक्तियाँ अ प्रतिमें ४८१ के बाद लिखी हैं ।

तब दोऊ खुसहाल ह्वै, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित्त सराहै मित्त ॥ ४८४

रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त ।
पढ़ै[२] रैन दिन भाटसौ, घर बजार जित कित्त ॥ ४८५

सवैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जग मानियै ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानियै ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसकौ वितान तानियै ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानियै ॥ ४८६

चौपई

बानारसि चिंतै मनमांहि । ऐसो मित्त जगतमैं नाहि ॥
इस ही बीच चलनकौ साज । दोऊ सांझी[३] करहिं इलाज ॥ ४८७

खरगसेनजी जहमति परे । आइ असाधि वैदनैं करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । लाहनि कछु कराई तास ॥ ४८८

संबत तिहत्तरे बैसाख । सातैं सोमवार सित पाख ॥
तब साझेका लेखा किया । सब असबाब वांटिकै लिया ॥ ४८९

२ अ पढै रातदिन एकसौ । ३ अ साजी, ब सायी ।

दोहरा

दोइ रोजनामैं किए, रहे दुहके पास ।
चले नरोत्तम आगरै, रहे बनारसिदास ॥ ४९०

रहे बनारसि जौनपुर, निरखि तात बेहाल ।
जेठ अंधेरी पंचमी, दिन वितीत निसिकाल ॥ ४९१

खरगसेन पहुचे सुरग, कहवति लोग विख्यात ।
कहां गए किस जोनिमैं, कहै केवली बात ॥ ४९२

कियौ सोक बानारसी, दियौ नैन भरि रोइ ।
हियौ कठिन कीनौ सदा, जियौ न जगमैं कोइ ४९३

चौपई

मास एक बीत्यौ जब और । तब फिरि करी बनजकी दौर ॥
हुंडी लिखी, रजत सै पंच । लिए, करन लागे पट संच ॥ ४९४

पट खरीदि कीनौं एकत्र । आयौ बहुरि साहुकौ पत्र ।
लिखा सिंघजी चीठीमाहिं । तुझ बिनु लेखा चूकै नाहि ४९५

तातैं तू भी आउ सिताब । मैं बूझौं सो देहि जुवाब ॥
बानारसी सुनत बिरतंत । तजि कपरा उठि चले तुरंत ॥ ४९६

बांभन एक नाम सिवराम । सौंप्यौ ताहि बस्त्रका काम ।
मास असाढ़मांहि दिन भले । बानारसी आगरै चले ॥ ४९७

दोहरा

एक तुरंगम नौ नफर, लीनें साथि बनाइ ।
नांउ घैसुआ गाउमैं, बसे प्रथम दिन आइ ॥ ४९८

ताही दिन आयौ तहां, और एक असवार।
कोठीवाल महेसुरी, वसै आगरै चार ॥ ४९९

चौपई

षट सेवक इक साहिब सोइ। मथुरावासी बांभन दोइ ॥
नर उनीसकी जुरी जमांति। पूरा साथ निला इस भाति ॥ ५००
कियौ कौल उतरहिं इकठौर। कोऊ कहूं न उतरै और ॥
चले प्रभात साथ करि गोल। खेलहिं हंसहिं करहिं कल्लोल ॥५०१

दोहरा

गांउ नगर उलंधि बहु, चलि आए तिस ठांउ।
जहां घाटमपुरके निकट, बसै कोररौ गांउ ॥ ५०२
उतरे आइ सराइमैं, करि अहार विश्राम।
मथुरावासी विप्र द्वै, गए अहीरी-धाम ॥ ५०३
दुहुमैं वांभन एक उठि, गयौ हाटमैं जाइ।
एक रुपैया काढ़ि तिनि, पैसा लिए भनाइ ॥ ५०४
आयौ भोजन साज ले, गयौ अहीरी-गेह।
फिरि सराफ आयौ तहा, कैहै रुपैया एह ॥ ५०५
गैरसाल है बदलि दै, कहै विप्र मम नांहि।
तेरा तेरा यौं कहत, भई कलह दुहुमांहि ॥ ५०६
मथुरावासी विप्रनैं, मार्‌यौ बहुत सराफ।
बहुत लोग बिनती करी, तऊ करै नहिं माफ ॥ ५०७

---

१ व कोरड़ा। २ व भुनाय। ३ व कह्यौ।

भाई एक सराफकौ, आइ गयौ इस बीच ।
मुख मीठी बातें करै, चित कपटी नर नीच ॥ ५०८
तिन बांभनके वस्त्र सब, टेकटोहे[1] करि रीस ।
लखे रुपैया गांठिमैं, गिनि देखे पच्चीस ॥ ५०९
सबके आगै फिरि कहै, गैरसाल सब दर्व ।
कोतवालपै जाइकै, नजरि गुजारौ सर्व ॥ ५१०
विप्र जुगल मिसु करि परे, मृतकरूप धरि मौन ।
बनिया सबनि दिखाइ लै, गयौ गांठि निज भौन ॥ ५११
खरे दाम घरमैं धरे, खोटे ल्यायौ जोरि ।
मिही कोथैली[2]मांहि भरि, दीनी गांठि मरोरि ॥ ५१२ ॥
लेइ कोथली हाथमैं, कोतवालपै जाइ ।
खोटे दाम दिखाइकै, कही बात समुझाइ ॥ ५१३ ॥

चौपई

साहिबजी ठग आये घनें । फैले फिरहिं जांहि नहिं गनें ॥
संध्यासमै हौंहि इक ठौर । ह्वै असबार करहु तब दौर ॥ ५१४ ॥
यह कहि बनिक निरौलो[3] भयौ । कोतवाल हाकिमपै गयौ ॥
कही बात हाकिमके कान । हाकिम साथ दियौ दीवान ॥ ५१५ ॥
कोतवाल दीवान समेत । सांझ समै आए ज्यौं प्रेत ।
पुरजन लोक साथि सै चारि । जनु सराइमैं आई धारि ॥ ५१६ ॥
बैठे दोऊ खाट बिछाइ । बांभन दोऊ लिए बुलाइ ।
पूछै मुगल कहहु तुम कौन । कहै विप्र मथुरा मम भौन ॥ ५१७ ॥

---

१ अ एकटोहे । २ ड ई कोथरी । ३ ड निरासौ ।

फिरि महेसरी लियौ बुलाय । कहं तू जाहि कहांसौं आइ ॥
तब सो कहे जौनपुर गांउ । कोठीवाल आगरे जांउ ॥ ५१८ ॥
फिरि वनारसी बोलै बोल । मैं जौंहरी करौं मनिमोल ।
कोठी हुती वनारसमांहि । अब हम बहुरि आगरै जांहि ॥ ५१९ ॥

दोहरा

साझी नेमा साहुके, तखत जौनपुर भौन ।
ब्यौपारी जगमैं प्रकट, ठगके लच्छन कौन ॥ ५२० ॥

चौपई

कही बात जब बानारसी । तब वे कहन लगे पारसी ॥
एक कहै ए ठग तहकीक । एक कहै ब्यौपारी ठीक ॥ ५२१ ॥
कोतवाल तब कहै पुकारि । बांधहु बेग करहु क्या रारि ॥
बोलै हाकिमकौ दीवान । अहमक कोतबाल नादान ॥ ५२२ ॥
रांति समै सूझ नहिं कोइ । चोर साहुकी निरख न होइ ॥
कछु जिन कहौ रातिकी राति । प्रात निकसि आवैगी जाति ॥ ५२३ ॥
कोतबाल तब कहै बखानि । तुम ढूढ़हु अपनी पहिचानि ॥
कोररा, घाटमपुर अरु बरी । तीनि गांउकी सरियति करी ॥ ५२४ ॥
और गांउ हम मानंहि नांहि । तुम यह फिकिर करहु हम जांहि ।
चले मुगल बादा बदि भोर । चौकी बैठाई चहुओर ॥ ५२५ ॥

दोहरा

सिरीमाल बानारसी, अरु महेसुरीजाति ।
करहिं मंत्र दोऊ जैनें, भई छमासी राति ॥ ५२६ ॥

---

१ ब रजनी समै न [illegible] २ अ [illegible] ब पुरुष ।

चौपई

पहर राति जब पिछली रही । तब महेसुरी ऐसी कही ॥
मेरो लहुरा भाई हरी । नाउ सु तौ ब्याहा है बरी ॥ ५२७ ॥
हम आए थे इहां बरात । भली यादि आई यह बात ।
बानारसी कहै रे मूढ़ । ऐसी बात करी क्यौं गूढ़ ॥ ५२८ ॥

दोहरा

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि ।
अब मोकौं सुमिरन भई, तू निचिंत मन होहि ॥ ५२९ ॥

चौपई

तब बनारसी हरषित भयौ । कछु इक सोच रह्यौ कछु गयौ ॥
कबहू चितकी चिंता भगै । कबहू बात झूठसी लगै ॥ ५३० ॥
यौं चिंतवत भयौ परभात । आइ पियादे लागे घात ॥
सूली दै मजूरके सीस । कोतवाल भेजी उनईस ॥ ५३१ ॥
ते सराइमैं डारी आनि । प्रगट पियादे कहैं बखानि ।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग । ए उनीस सूली तुम जोग ॥५३२॥

दोहरा

घरी एक बीते बहुरि, कोतबाल दीबान ।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान ॥ ५३३ ॥

चौपई

तब बनारसी बोलै बानि । बरीमांहि निकसी पहचानि ॥
तब दीबान कहै स्याबास । यह तो बात कही तुम रास ॥ ५३४

१ अ कही । २ ब भई ।

मेरे साथ चलो तुम वरी। जो किछु उहां होइ सो खरी ॥
महेसुरी हूओ असवार। अरु दीवान चला तिस लार ॥ ५३५
दोऊ जनें वरीमैं गए। समधी मिले साहु तव भए ॥
साहु साहुघर कियौ निवास। आयौ मुगल वनारसी पास ॥ ५३६
आइ कह्यौ तुम साचे साहु। करहु माफ यह भया गुनाहु ॥
तव वनारसी कहै सुभाउ। तुम साहिव हाकिम उमराउ ॥ ५३७
जो हम कर्म पुरातन कियौ। सो सव आइ उदै रस दियौ ॥
भावी असिट हमारा मता। इसमैं क्या गुनाह क्या खता ॥ ५३८
दोऊ मुगल गए निज धाम। तह वनारसी कियौ मुकाम।
दोऊ वांभन ठाढ़े भए। वोलहिं दाम हमारे गए ॥ ५३९

दोहरा

पहर एक दिन जव चढ़्यौ, तव वनारसीदास।
सेर छ सात फुलेल ले, गए मुगलके पास ॥ ५४०
हाकिमकौं दीवानकौं, कोतवालके गेह।
जथाजोग सवकौं दियौ, कीनौं सवसन नेह ॥ ५४१
तव वनारसी यौं कहै, आजु सराफ ठगाइ।
गुनहगार कीजै उसहि, दीजै दाम मंगाइ ॥ ५४२
कहै मुगल तुझ विनु कहैं, मैं कीन्हौ उस खोज।
वह निज सवै ही साथ लै, भागा उस ही रोज ॥ ५४३

सोरठा

मिला न किस ही ठौर, तुम निज डेरे जाइ करि।
सिरिनी वांटहु और, इन दामनिकी क्या चली ॥ ५४४

---

१ अ वसही साखि।

चौपई

तब बनारसी चिंतै आम । बिना जोर नहिं आवहि दाम ।
इहां हमारा किछु न बसाय । तातैं बैठि रहै घर जाय ॥ ५४५

दोहरा

यह विचार करि कीनी दुवा । कही जु होना था सो हुवा ॥
आए अपने डेरेमांहि । कही बिप्रसौं दमिका (?) नाहिं ॥ ५४६
भोजन कीनौ सबनि मिलि, हूऔ संध्याकाल ।
आयौ साहु महेसुरी, रहे राति खुसहाल ॥ ५४७

चौपई

फिरि प्रभात उठि मारग लगे । मनहु कालके मुखसौं भगे ॥
दूजै दिन मारगके बीच । सुनी नरोत्तम हितकी मीच ॥ ५४८

दोहरा

चीठी बैनीदासकी, दीनी काहू आनि ।
बांचत ही मुरछा भई, कहूं पांउ कहुं पानि ॥ ५४९
बहुत भांति बानारसी, कियौ पंथमैं सोग ।
समुझावै मानै नहीं, घिरे आइ बहु लोग ॥ ५५०
लोभ मूल सब पापकौ, दुखकौ मूल सनेह ।
मूल अजीरन ब्याधिकौ, मरन मूल यह देह ॥ ५५१
ज्यौं त्यौं कर समुझे बहुरि, चले होहि असवार ।
क्रम क्रम आए आगरै, निकट नदीके पार ॥ ५५२
तहां बिप्र दोऊ भए, आड़े मारग बीच ।
कहहिं हमारे दाम बिनु, भई हमारी मीच ॥ ५५३

---

१ ड अ देखत । २ अ सब ।

चौपई

कही सुनी वहुतेरी वात। दोऊ विप्र करैं अपवात ॥
तव बनारसी सोचि विचारि। दीनैं दामनि[1] मेटी रारि ॥ ५५४

दोहरा

बारह दिए महेसुरी, तेरह दीनैं आप।
बांभन गए असीस दै, भए वनिक निष्पाप ॥ ५५५
अपने अपने गेह सब, आए भए निचीत।
रोए[2] बहुत बनारसी, हाइ मीत हा मीत ॥ ५५६
घरी चारि रोए बहुरि, लगे आपने काम।
भोजन करि संध्या समय, गए साहुके धाम ॥ ५५७

चौपई

आवंहि जांहि साहुके भौन। लेखा कागद देखै[3] कौन ॥
बैठे साहु विभौ-मदमाति। गावहिं गीत कलावत-पांति ॥ ५५८
धुरै पखावज बाजै ताति। सभा साहिजादेकी भांति ॥
दीजहि दान अखडित नित्त। कवि वंदीजन पढ़हि कवित्त ॥ ५५९
कही न जाइ साहिबी सोइ। देखत चकित होइ सब कोइ ॥
बानारसी कहै मनमांहि। लेखा आइ बना किस पांहि ॥ ५६०
सेवा करी मास द्वै चारि। कैसा बनज कहांकी रारि ॥
जब कहिए लेखेकी बात। साहु जुवाब देहि परभात ॥ ५६१
मासी घरी छमासी जाम। दिन कैसा यह जानै राम ॥
सूरज उँदै अस्त है कहा। विषयी विषय-मगन है जहां ॥ ५६३

१ स ई दाम जु। २ ब कीनौ रुदन बनारसी। ३ अ पूछइ। ४ इस पक्तिसे लेकर ५६७ तककी पक्तियाँ ब प्रतिमें नहीं हैं। ५ ब ऊगै अथवै कहा।

एहि बिधि बीते बहुत दिन, एक दिवस इस राह ।
चाचा बेनीदासके, आए अंगासाह ॥ ५६३
अंगा चंगा आदमी, सज्जन और बिचित्र ।
सो बहनेऊ सिंघका, बानारसिका मित्र ॥ ५६३
तासौं कही बनारसी, निज लेखेकी बात ।
भैया, हम बहुतै दुखी, दुखी नरोत्तम तात ॥ ५६५
तातैं तुम समुझाइकै, लेखा डारहु पारि ।
अगिली फारकती लिखौ, पिछिलो कागद फारि ॥ ५६६

चौपई

तब तिस ही दिन अंगनदास । आए सबलसिंघके पास ॥
लेखा कागद लिए मंगाइ । साझा पाता दिया चुकाइ ॥ ५६७
फारकती लिखि दीनी दोइ । बहुरौ सुखुन करै नहिं कोइ ॥
मता लिखाइ दुहूपै लिया । कागद हाथ दुहूका दिया ॥ ५६८
न्यारे न्यारे दोऊ भए । आप आपने घर उठि गए ॥
सोलह सै तिहत्तरे साल । अगहन कृष्णपक्ष हिमकाल ॥ ५६९
लिया बनारसि डेरा जुदा । आया पुन्य कँरमका उदा ॥
जो कपरा था बांभन हाथ । सो उनि भेज्या आछै साथ ॥ ५७०
आई जौनपुरीकी गांठि । धरि लीनी लेखेमों सांठि ॥
नित उठि प्रात नखासे जांहि । बेचि मिलावहिं पूंजीमांहि ॥ ५७१
इस ही समय ईति बिस्तरी । परी आगरै पहिली मरी ॥
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठिका रोग ॥ ५७२

१–२ ड फारखती । ३ ब सुपन । ४ अ घरकौं । ५ अ कालका ।

निकसै गांठि मरै छिनमांहि । काहूकी वसाइ किछु नांहि ॥
चूहे मरहिं वैद मरि जाहि । भयसौं लोग अंन नहिं खांहि ॥ ५७३

नगर निकट वांभनका गांउ । सुखकारी अजीजपुर नांउ ॥
तहां गए वानारसिदास । डेरा लिया साहुके पास ॥ ५७४

रहहिं अकेले डेरेमांहि । गर्भित वात कहनकी नाहि ॥
कुमति एक उपजी तिस थान । पूरवकर्मउदै परवान ॥ ५७५

मरी निवर्त्त भई विधि जोग । तव घर घर आए सव लोग ।
आए दिन केतिक इक भए । वानारसी अमरसर गए ॥ ५७६

उहां निहालचंदकौ व्याह । भयौ वहुरि फिरि पकरी राह ।
आए नगर आगरेमांहि । सवलसिंघके आवहिं जांहि ॥ ५७७

दोहरा

हुती जु माता जौनपुर, सो आई सुत पास ।
खैराबाद विवाहकौं, चले वनारसिदास ॥ ५७८ ॥

चौपई

करि विवाह आए घरमांहि । मनसा भई जातकौं जांहि ॥
वरधमान कुंअरजी दलाल । चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल ॥ ५७९

अहिछत्ता-हथनापुर-जात । चले वनारसि उठि परभात ॥
माता और भारजा संग । रथ वैठे धरि भाउ अभंग ॥ ५८० ॥

पचहत्तरे पोह सुभ घरी । अहिछत्तेकी पूजा करी ॥
फिरि आए हथनापुर जहां । सांति कुंथु अर पूजे तहां ॥ ५८१

१ व दयाल ।

दोहरा

सांति-कुंथ-अरनाथकौ, कीनौ एक कबित्त ।
ताकौं पढ़ै बनारसी, भाव भगतिसौं नित्त ॥ ५८२

छप्पै

श्री बिससेन नरेस, सूर नृप राइ सुदंसनै ।
अचिरा सिरिआ देवि, करहिं जिस देव प्रसंसन ॥
तसु नंदन सारंग, छाग नंदावत लंछन ।
चालिस पैंतिस तीस, चाप काया छबि कचन ॥
सुखरासि बनारसिदास भनि, निरखत मन आनंदई ॥
हथिनापुर, गजपुर, नागपुर, सांति कुंथ अर बंदई ॥ ५८३

चौपई

करी जात मन भयौ उछाह । फिरयौ संघ दिलीकी राह ॥
आई मेरठि पंथ बिचाल । तहां बनारसीकी न्हनसाल ॥ ५८४ ॥
उतरा संघ कोटके तले । तब कुटुंब जात्रा करि चले ॥
चले चले आए भर कोल । पूजा करी कियौ थौ कौल ॥ ५८५
नगर आगरै पहुचे आइ । सब निज निज घर बैठे जाइ ॥
बानारसी गयौ पौसालै । सुनी जती श्रावककी चाल ॥ ५८६
बारह व्रतके किए कबित्त । अंगीकार किए धरि चित्त ॥
चौदह नेम संभालै नित्त । लागै दोष करै प्राछित्त ॥ ५८७
नित संध्या पड़िकौना करै । दिन दिन व्रत बिशेषता धरै ॥
गहै जैन मिथ्यामत बमै । पुत्र एक हूवा इस समै ॥ ५८८

१ ब सुनदन । २ ब ई आनदमय । ३ ब ई वदिजय । ४ ब प्यौसाल ।

छिहत्तरे संवत आसाढ़ । जनम्यौ पुत्र धरमरुचि बाढ़ ॥
बरस एक बीत्यौ जब और । माता मरन भयौ तिस ठौर ॥ ५८९
सतहत्तरे समै मा मरी । जथासकति कछु लाहनि करी ॥
उनासिए सुत अरु तिय मुई । तीजी और सगाई हुई ॥ ५९०
बेगा साहु कूकड़ी गोत । खैराबाद तीसरी पोत ।
समय असिए ब्याहन गए । आए घर गृहस्थ फिरि भए ॥५९१॥
तब तहां मिले अरथमल ढोर । करैं अध्यातम बातैं जोर ।
तिनि बनारसीसौं हित कियौ । समैसार नाटक लिखि दियौ ५९२
राजमल्लनैं टीका करी । सो पोथी तिनि आगै धरी ॥
कहै बनारसिसौं तू बांचु । तेरे मन आवेगा सांचु ॥ ५९३ ॥
तब बनारसि वांचै नित्त । भाषा अरथ बिचारै चित्त ॥
पावै नहीं अध्यातम पेच । मानै बाहिज किरिआ हेच ॥ ५९४ ॥

दोहरा

करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद ।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद ॥ ५९५ ॥

चौपई

बहुरौं चमत्कार चित भयौ । कछु बैराग भाव परिनयौ ॥
'ग्यान-पचीसी' कीनी सार । 'ध्यान-बतीसी' ध्यान विचार[1] ५९६
कीनैं 'अध्यातमके गीत' । बहुत कथन बिवहार-अतीत ॥
'सिवमंदिर' इत्यादिक और । कबित अनेक किए तिस ठौर ५९७
जप तप सामायिक पडिकौन । सब करनी करि डारी बौन ।
हरी-बिरति लीनी थीं जोइ । सोऊ मिटी न परमिति कोइ[2] ॥ ५९८

१ अ उदार । २ ब और ।

ऐसी दसा भई एकंत । कहौं कहां लौं सो विरतंत ॥
बिनु आचार भई मति नीच । सागानेर चले इस बीच ॥ ५९९
बानारसी बराती भए । तिपुरदासकौं ब्याहन गए ॥
ब्याहि ताहि आए घरमांहि । देवचढ़ाया नेबज खांहि ६००
कुमती चारि मिले मन मेल । खेला पैजारहुका खेल ॥
सिरकी पाग लैंहि सब छीनि । एक एककौं मारहिं तीनि ॥ ६०१

दोहरा

चन्द्रभान बानारसी, उदैकरन अरु थान ।
चारौं खेलहिं खेल फिरि, करहिं अध्यातम ग्यान ॥ ६०२
नगन होंहिं चारौं जनें, फिरहिं कोठरीमांहि ।
कहहिं भए मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहि ॥ ६०३
गनि गनि मारहिं हाथसौं, मुखसौं करहिं पुकार ।
जो गुंमान हम करैतहे, ताके सिर पैजार ॥ ६०४
गीत सुनैं बातैं सुनैं, ताकी बिंग बनाइ ।
कहैं अध्यातममैं अरथ, रहैं मृपा लौ लाइ ॥ ६०५

चौपई

पूरब कर्म उदै संजोग । आयौ उदय असाता भोग ।
तातैं कुमत भई उतपात । कोऊ कहै न मानै बात ॥ ६०६
जब लौं रही कर्मबासना । तब लौं कौन बिथा नासना ॥
असुभ उदय जब पूरा भया । सहजहि खेल छूटि तब गया ॥ ६०७
कहहिं लोग श्रावक अरु जती । बानारसी खोसरामती ॥
तीनि पुरुषकी चलै न बात । यह पंडित तातैं विख्यात ॥ ६०८

---

१ ब ई पादत्राण । २ अ गुनमान । ३ अ कर गहे, इ करत है । ४ ब करम ।
५ ड खुसरामती, ब पुष्करामती, ई पुसकरामती ।

निंदा थुति जैसी जिस होइ । तैसी तासु कहै सब कोइ ॥
पुरजन बिना कहे नहि रहै । जैसी देखै तैसी कहै ॥ ६०९

दोहरा

सुनी कहै देखी कहै, कलपित कहै बनाइ ।
दुराराधि ए जगत जन, इन्हसौं कछु न बसाइ ॥ ६१०

चौपई

जब यह धूमधाम मिटि गई । तब कछु और अवस्था भई ॥
जिनप्रतिमा निंदै मनमांहि । मुखसौं कहै जो कहनी नांहि । ६११
करै बरत गुरु सनमुख जाइ । फिरि भानहि अपने घर आइ ॥
खाहि रात दिन पसुकी भांति । रहै एकंत मृषामदमांति ॥ ६१२

दोहरा

यह बनारसीकी दसा, भई दिनहु दिन गाढ़ ।
तब संबत चौरासिया, आयौ मास असाढ़ ॥ ६१३
भयौ तीसरी नारिकै, प्रथम पुत्र अवतार ।
दिवस कैकु रहि उठि गयौ, अलपआ[1]यु संसार ॥ ६१४

चौपई

छत्रपति जहांगीर दिल्लीस । कीनौ राज बरस बाईस ॥
कासमीरके मारग बीच । आवत हुई अचानक मीच ॥ ६१५
मासि चारि अंतर परवांन । आयौ साहिजिहां सुलतान ।
बैठ्यौ तखत छत्र सिर तानि । चहू चक्कमैं फेरी आनि ॥ ६१६

---

१ ब आव ।

दोहरा

सौलह सै चौरासिए, तखत आगरे थान ।
बैठ्यौ नाम धराय प्रभु, साहिब साहि किरान ॥ ६१७
फिरि संवत पच्चासिएं, बहुरि दूसरी बार ।
भयौ बनारसिके सदन, दुतिय पुत्र अवतार ॥ ६१८

चोपई

बरस एक द्वै अंतर काल । कैथा-शेष हूऔ सो बाल ।
अलप आउ है आवहिं जांहि । फिर सतासिए संबतमाहि ॥ ६१९
बानारसीदास आबास । त्रितिय पुत्र हूऔ परगास ॥
उनासिए पुत्री अवतरी । तिन आऊषा पूरी करी ॥ ६२०
सब सुत सुता मरनपद गहा । एक पुत्र कोऊँ दिन रहा ॥
सो भी अलप आउँ जानिए । तातैं मृतकरूप मानिए ॥ ६२१
क्रम क्रम बीत्यौ इक्यानवा । आयौ सोलहसै बानवा ॥
तब ताई धरि पहिली दसा । बानारसी रह्यौ इकरसा ॥ ६२२

दोहरा

आदि अस्सिआ बानवा, अंत बीचकी बात ।
कछु औरौं बाकी रही, सो अब कहौं बिख्यात ॥ ६२३
चले बरात बनारसी, गए चाटसू गांउ ।
बच्छा-सुतकौं व्याहकै, फिरि आए निज ठांउ ॥ ६२४
अरु इस बीचि कबीसुरी, कीनी बँहुरि अनेक ।
नाम ' सुक्तिमुकतावली; ' किए कबित सौ एक ॥ ६२५

१ ई स पिन्चासिए । २ ड कथासेष । ३ ई स कोई । ४ ड आयु ।
५ य ड बहुत ।

'अध्यातम वत्तीसिका,' 'पैड़ी' 'फागु धमाल'।
कीनी 'सिंधुचतुर्दसी,' फूटक कवित रसाल ॥ ६२६
'शिवपच्चीसी' भावना, 'सहस अठोत्तर नाम।'
'करमछतीसी' 'झूलना', अंतर रावन राम ॥ ६२७
वरनी 'आंखैं दोइ विधि,' करी 'वचनिका' दोइ।
'अष्टक' 'गीत' बहुत किए, कहौं कहा लौं सोइ ॥ ६२८
सोलह सै वानवै लौं, कियौ नियत-रस-पान।
पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद-परवान ॥ ६२९
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान।
रूपचंद पंडित गुनी, आयौ आगम-जान ॥ ६३०

चोपई

तिहुंना साहु देहुरा किया। तहां आइ तिनि डेरा लिया ॥
सब अध्यातमी कियौ विचार। ग्रंथ बंचायौ गोमटसार ॥ ६३१
तामैं गुनथानक परवांन। कह्यौ ग्यान अरु क्रिया-विधान।
जो जिय जिस गुन-थानक होइ। तैसी क्रिया करै सब कोइ ॥ ६३२
भिन्न भिन्न विवरन बिस्तार। अंतर नियत बहिर विवहार ॥
सबकी कथा सवै विधि कही। सुनिकै संसै कछुव न रही ॥ ६३३
तब बनारसी औरै भयौ। स्यादवाद परिनति परिनयौ ॥
पांड़े रूपचंद गुर पास। सुन्यौ ग्रंथ मन भयौ हुलास ॥ ६३४
फिरि तिस समै बरस द्वै बीच। रूपचंदकौं आई मीच ॥
सुनि सुनि रूपचंदके बैन। बानारसी भयौ दिढ़ जैन ॥ ६३५

१ अ तिहिना साह। २ ड स सिव।

दोहरा

तव फिरि और कवीसुरी, करी अध्यातममांहि
यह वह कथनी एकसी, कहु विरोध किछु नांहि ॥ ६३६

हृदैमांहि कछु कालिमा, हुती सरदहन वीच ।
सोऊ मिटि समता भई, रही न ऊच न नीच ६३७

चोपई

अव सम्यक दरसन उनमान । प्रगट रूप जानै भगवान ॥
सोलह सै तिरानवै वर्ष । समैसार नाटक धरि हर्ष ॥ ६३८

भाषा कियौ भानके सीस । कवित सातसै सत्ताईस
अनेकांत परनति परिनयौ । संवत आइ छानवा भयौ ७३९

तव बनारसीके घर वीच । त्रितिये पुत्रकौं आई मीच
वानारसी वहुत दुख कियौ । भयौ सोकसौं व्याकुल हियौ ६४०

जगमैं मोह महा वलवान । करै एक सम जान अजान ।
वरस दोइ वीते इस भांति । तऊ न मोह होइ उपसांति ६४१

दोहरा

कैही पचावन वरस लौं, वानारसिकी वात ।
तीनि विवाहीं भारजा, सुता दोइ सुत सात ॥ ६४२ ॥

नौ वालक हूए मुए, रहे नारि नारि नर दोइ ।
ज्यौं तरवर पतझार है, रहैं ठूँठसे होइ ॥ ६४३ ॥

तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भौंति ।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति ॥ ६४४ ॥

---

१ व चरम । २ यह पद्य अ प्रतिमें नही है । ३ व वात ।

संसारी जानै नहीं, सत्यारथकी बात ।
परिगहसौं मानै बिभौ, परिगह बिन उतपात ॥ ६४५ ॥
अब बनारसीके कहौं, बरतमान गुन दोष ।
विद्यमान पुर आगरे, सुखसौं रहै सजोष ॥ ६४६ ॥

चौपई

भाषाकबित अध्यातममांहि । पटतर और दूसरौ नांहि ॥
छमावंत संतोषी भला । भली कबित पढ़िवेकी कला ॥ ६४७ ॥
पढ़ै ससकृत प्राकृत सुद्ध । विविध-देसभाषा-प्रतिबुद्ध ॥
जानै सबद अरथकौ भेद । ठानै नही जगतकौ खेद ॥ ६४८ ॥
मिठबोला सबहीसौं प्रीति । जैन धरमकी दिढ़ परतीति ॥
सहनसील नहिं कहै कुबोल । सुथिरचित्त नहिं डावाडोल ॥६४९॥
कहै सबनिसौं हित उपदेस । हृदै सुष्ट न दुष्टता लेस ॥
पररमनीकौ त्यागी सोइ । कुबिसन और न ठानै कोई ॥ ६५० ॥
हृदेय सुद्ध समकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्न कहे गुन जोइ । नहि उतकिष्ट न निर्मल कोइ ॥ ६५१

अथ दोषकथन

कहे बनारसिके गुन जथा । दोषकथा अब बरनौं तथा ।
क्रोध मान माया जलरेख । पै लछिमीकौ लोभ[3] विसेख ॥ ६५२ ॥
पोतै हास कर्मका[4] उदा । घरसौं हुवा न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीति । नही दान-पूजासौं प्रीति ॥ ६५३ ॥

१ ड पढित । २ व हिये । ३ अ मोह । ४ अ कर्म दा ।

थोरे लाभ हरख बहु धरै । अलप हानि बहु चिंता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाइ । सीखै भंडकला मनैं लाइ ॥ ६५४ ॥
भाखै अकथकथा बिरतंत । ठानै नृत्य पाइ एकंत ॥
अनदेखी अनसुनी बनाइ । कुकथा कहै सभामंहि आइ ॥ ६५५ ॥
होइ निमग्न हास रस पाइ । मृषावाद बिनु रहा न जाइ ॥
अकस्मात भय ब्यापै घनी । ऐसी दसा आइ करि बनी ॥ ६५६ ॥
कबहूं दोष कबहुं गुन कोइ । जाकौ उदौ सो परगट होइ ॥
यह बनारसीजीकी बात । कही थूल जो हुती बिख्यात ॥ ६५७ ॥
और जो सूछम दसा अनंत । ताकी गति जानै भगवंत ।
जे जे बातैं सुमिरन भईं । तेते बचनरूप परिनईं ॥ ६५८ ॥
जे बूझी प्रमाद इह मांहि । ते काहूपै कही न जांहि ॥
अलप थूल भी कहै न कोइ । भाषै सो जु केवली होइ ६५९

दोहरा

एक जीवकी एक दिन, दसा होहि जेतीक ।
सो कहि सकै न केवली, जानै जद्यपि ठीक । ६६० ।
मनपरजैधर अवधिधर, करहिं अलप चिंतौन ।
हमसे कीट पतंगकी, बात चलावै कौन । ६६१ ।
तातैं कहत बनारसी, जीकी दसा अपार ।
कछु थूलमैं थूलसी, कही बहिर बिबहार । ६६२
बरस पंच पंचास लौं, भाख्यौ निज बिरतंत ।
आगै भावी जो कथा, सो जानै भगवंत । ६६३

१ अ पन । २ ड ब बूडे । ३ अ रसाल ।

बरस पचावन ए कहे, बरस पचावन और ।
बाकी मानुष आउमैं, यह उतकिष्टी दौर । ६६४

बरस एक सौ दस अधिक, परमित मानुष आउ ।
सोलहसै अट्ठानबै, समै बीच यह भाउ ॥ ६६५

तीनि भांतिके मनुज सब, मनुजलोकके बीच ।
बरतहिं तीनौं कालमैं, उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ६६६

अथ उत्तम नर यथा—

जे परदोष छिपाइकै, परगुन कैहैं विशेष ।
गुन तजि निज दूषन कहैं, ते नर उत्तम भेष ॥ ६६७

अथ मध्यम नर यथा—

जे भाखहिं पर-दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ ।
कहहिं सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ ॥ ६६८

अथ अधम नर यथा —

जे परदोष कहैं सदा, गुन गोपहिं उर बीच
दोष लोपि निज गुन कहैं, ते जगमैं नर नीच ६६९

सौलह सै अट्ठानबै, संबत अगहनमास
सोमबार तिथि पंचमी, सुकल पक्ष परगास ६७०

नगर आगरेमैं बसै, जैनधर्म श्रीमाल ।
बानारसी बिहोलिआ, अध्यातमी रसाल ६७१

१ ड करैं । २ अ अट्ठावना, ड अट्ठानवा ।

चौपई

ताके मन आई यह बात। अपनौ चरित कहौं बिख्यात।
तब तिनि बरस पंच पंचास। परमित दसा कही मुख भास ६७२
आगै जु कछु होइगी और। तैसी समुझैंगे तिस ठौर।
बरतमान नर[1]-आउ बखान। बरस एक सौ दस परवांन[2] ६७३

दोहरा

तातैं अरध कथान यह, बानारसी चरित्र।
दुष्ट जीव सुनि हंसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र॥ ६७४
सब दोहा अरु चौपई, छसै पिचैत्तरि मान।
कहहिं सुनहिं बांचहिं पढ़हिं, तिन सबकौ कल्यान॥ ६७५

ईति[3] श्रीअर्द्धकथानक अधिकारः। सम्पूर्णः। शुभमस्तु।

सवत् १८४९ श्रावणमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ भौमवासरे लिखितं भगवानदास भिंडमैं। राम।

---

१ अ वर। २ अ तिहत्तर जान। ३ ब इतिश्री बनारसी अवस्था सपूरणम्। मिती आसाढ कृष्ण ७ सवत् १९०२। श्री। स इती बानारसी अवस्था सपूरण। ड इति श्री अर्द्धकथानक अधिकार सम्पूर्ण। श्री बनारसीदासजी-कृतिरिय। श्लोकसंख्या एक १०००। श्रीस्ताल्लेखकपाठकयोस्सदा कल्याण भवतु। ई इति बनारसी अवस्था सम्पूर्णम्।

नाम-सूची

२—विशेष स्थानोंका परिचय

अजीजपुर=ब्राह्मणोंका गॉव। आगरेसे १० मील उत्तर पश्चिम। अब भी यहॉपर ब्राह्मणोंकी बस्ती है।

अमरसर=जयपुरसे उत्तरकी ओर २४ मील और गोविन्दगढ स्टेशनसे १५ मील। शेखावतोंके आदिपुरुष राव शेखाजी वि० स० १४५५ के लगभग यहॉ गढ बनाकर रहे थे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके खरतरगच्छका यह एक विशिष्ट स्थान था। यहॉ इस गच्छके जिनकुशलसूरिकी चरण-पादुका वि० स० १६५३ में और कनकसोमकी १६६२ में स्थापित की गई थीं। कनकसोमने अपनी 'आर्द्रकुमार धमाल' की रचना यहींपर की थी। साधुकीर्ति, समयसुन्दर, विमलकीर्ति, सूरचन्द आदि और भी कई विद्वानोंकी कई छोटी बड़ी रचनायें (स० १६३८ से १६८० तक की) मिली हैं जो इसी अमरसरमें रची गई थीं[1]।

अर्गलपुर=यह आगरेका सस्कृत रूप है। संस्कृत-लेखकोंने अक्सर इसका प्रयोग किया है। बहुतोंने इसे उग्रसेनपुर भी लिखा है[2]।

अहिछत्ता=बरेली जिलेका रामनगर। जैनोंका प्रसिद्ध अहिच्छत्र तीर्थ।

इटावा=उत्तर प्रदेशके एक जिलेका मुख्य नगर।

इलाहाबास—इलाहाबाद। जहागीरनामेमें सर्वत्र इलाहाबास ही लिखा है। साधु सौभाग्यविजयजीने अपनी तीर्थमालामें भी इलाहाबास लिखा है।

कासिवार देश=काशी जिस प्रदेशमें थी, उसका नाम।

कड़ा मानिकपुर=इलाहाबाद जिलेका इसी नामका कसबा। जिलेका नाम भी पहले यही था।

कोररा या कुर्रा=आगरेसे लगभग २० मील दूर कुर्रा चित्तरपुर नामका गॉव।

कोल, कौल=अलीगढका पुराना नाम। अलीगढकी तहसीलका नाम अब भी कौल है।

खैराबाद=सीतापुर (अवध) जिलेमें लखनऊसे ४० मील।

---

१ देखो, जैनसत्यप्रकाश वर्ष ८, अक ३ में श्री अगरचन्द नाहटाका लेख।

२ श्रीआगराख्ये आदिनगरे पुराणपुरे श्रिया आगररूपे नगरे वा उग्रसेनाह्वये, उग्रसेन कम्पिताऽत्र प्रागुवासेति प्रवासात्।—युक्तिप्रबोध पृ० ६।

घाटमपुर=कुर्रा चित्तरपुरके पास है, जिला कानपुर।

घैंसुआ गाँव=जौनपुरसे आगरे जानेके रास्तेमें एक मंजिलपर।

चाटसू=जयपुर रियासतमें इसी नामसे प्रसिद्ध स्थान।

दिल्ली=वर्तमान देहली या दिल्ली।

नरवर=नरपुर, नरउर, ग्वालियर राज्यका एक प्राचीन स्थान। ज्ञानार्णवकी सं० १२९४ की लिखी हुई एक प्रतिकी लेखकप्रशस्तिमें शायद इसे ही 'नृपुरी' लिखा है।

पटना=बिहारकी राजधानी।

परवेजका कटरा=आगरेमें इस समय इस नामका कोई कटरा नहीं है। पहले रहा होगा।

पिरोजाबाद=फीरोजाबाद जिला आगरा।

फतेहपुर=इलाहाबादसे छह कोस।

बीहोली=बाबू उग्रसेनजी वकीलके अनुसार यह गाव करनाल जिलेमें पानीपतसे कुछ दूर जमुनाके किनारे है। रोहतकसे ३५ कोससे फासलेपर।

बरी=कोररा, घाटमपुरके नजदीक गाँव।

पाडलीपुर=पाटलिपुत्र या पटना (?)

मेरठि, मेरठिपुर=मेरठ, यू० पी० का प्रसिद्ध शहर।

रोहतगपुर=रोहतक (पूर्वीय पंजाबका जिला)।

रौनाही=नौराई (रत्नपुरी)। धर्मनाथ तीर्थंकरका जन्मस्थान। अयोध्याके पास सोहावल स्टेशनसे एक मील। यहाँ अब दो श्वेताम्बर और तीन दिगम्बर सम्प्रदायके जैन मन्दिर हैं।

लखरांउ=फतेहपुरके पास दो कोसकी दूरीपर।

लछिमनपुरा=बहुत करके ईस्टर्न रेल्वेकी इलाहाबाद रायबरेली लाइनका लछमनपुर नामका स्टेशन ही लछिमनपुरा है।

सांगानेर=जयपुरके समीप ७ मीलपर।

साहिजादपुर=इलाहाबाद जिलेमें गंगाके किनारे, दारानगरके पास। श्रीसौभाग्यविजयकृत तीर्थमालामें भी इसका उल्लेख है। वे वहाँपर गये थे—

दारानगर साहिजादपुर आया। देखी श्रावक गुरु मन भाया ॥
गगाजीतट नगरी विशाल। .. .. ॥

सुरहरपुर=यह शायद जौनपुरका ही दूसरा नाम है। जौनपुरके तीसरे बादशाह ख्वाजाजहॉका दूसरा नाम मलिक सरवर था जिसे बनारसीदासजीने सुरहर सुल्तान लिखा है। सभव है, इसी नामसे जौनपुर सुरहरपुर भी कहलाता हो। राहुलजीकी रायमें मुहम्मद तुगलकका ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे जौतपुर बसाया गया।

हथिनापुर=हस्तिनापुर। मेरठसे २० मील। जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

समेतसिखर=सम्मेद शिखर, हजारीबाग जिलेका 'पारसनाथ हिल' प्रसिद्ध जैन तीर्थ।

३—सम्बन्धित व्यक्तियोंका परिचय

मुनि भानुचन्द्र

इनका बनारसीदासजीने भान, भानु, भानु-सुगुरु, रविचन्द और भानुचन्द्र नामसे अनेक स्थानोंमें उल्लेख किया है[1]। ये श्वेताम्बर खरतरगच्छकी लघुशाखाके जिनप्रभसूरिके अन्वयमें हुए हैं[2]। इनके गुरुका नाम अभयधर्म उपाध्याय था।

अभयधर्म नामके एक और भी मुनि इसी खरतर गच्छमें हो गये हैं जिनके शिष्य कुशललाभ थे। कुशललाभने वि० स० १६२४ में वीरमगॉव (गुजरात) में रहते समय 'तेजसार रासा' की रचना की थी[3]। उनका विहार मारवाड़की ओर अधिक होता रहा है और वे निश्चय ही बनारसीदासजीके गुरु भानु-

---

१—गोयम-गणहर-पय नमौं, सुमरि सुगुरु 'रविचद'।
सरसुति देवि प्रसाद लहि, गाऊ अजित जिनिंद ॥—बनारसीविलास १९३
'भानु' उदय दिनके समै, 'चद'उदय निसि होत,
दोऊ जाके नाममैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ —ब० वि० १४३
इति प्रश्नोत्तर मालिका, उद्धव-हरि-सवाद।
भाषा कहत बनारसी, 'भानुसुगुरु' परसाद ॥ —ब० वि० पृ० १८८
सॅवरौ सारदसामिनि औ गुरु 'भान'।
कछु बलमा परमारथ करौ बखान ॥ — ब० वि० प० २३८
ओंकार परनाम करि, 'भानु' सुगुरु धरि चित्त।
रचौं सुगम नामावली, बाल-विबोधनिमित्त ॥ १
जे नर राखैं कठ निज, होइ सुमति परगास।
'भानु' सुगुरु परसादतैं, परमानद विलास ॥—नाममाला

२—खरतरगणस्य श्राद्धः लघुशाखीयखरतरगणस्य श्रावकः।
—युक्तिप्रबोध द्वि० गाथाकी टीका

३—श्रीखरतरगच्छि सहि गुरुराय, गुरुश्रीअभयधर्मउवझाय।
सोलहसै चउवीसिमझार, श्रीवीरमपुर नयरमझार ॥ २
अधिकारइ जिनपूजातणइ, वाचक कुशललाभ इमि भणइ।
—आनन्दकाव्यमहोदधि सप्तमभागकी भूमिका पृ० १५६

चन्द्रसे बहुत पहले हुए हैं। बृहत् खरतर गच्छके इन अभयधर्म उपाध्यायका स्वर्गवास १६२० के लगभग हुआ है।

स्व० पूरनचन्द नाहरके लेखसग्रह (न० १७६ और २६१) में सवत् १६८६ और १६८८ की प्रतिष्ठा की हुई चरणपादुकाये हैं, जो सभवतः भानुचन्द्रके गुरु अभयधर्मकी ही हैं।

अर्धकथानकमें अभयधर्म उपाध्यायका अपने दो शिष्यों—भानुचन्द्र और रामचन्द्र—के साथ जौनपुरमें आनेका उल्लेख है जिनमें भानुचन्द्रको विशेष चतुर कहा गया है। इन्हींके पास १६५७ में बनारसीदासजीने विद्या पढना शुरू किया था[1]। इसके आगे कहींपर उनके साथ साक्षात् होनेका जिक्र नहीं है, परन्तु अपनी रचनाओंमें वे बराबर उनका उल्लेख करते रहे हैं। सवत् १६९३ में नाटकसमयसारकी भाषा करनेके प्रसगमें भी उन्होंने अपनेको 'भानके सीस' कहा है[2]। भानुचन्द्रके सम्बन्धमें इससे अधिक और कुछ पता न लगा, उनकी या उनके गुरुकी कोई रचना भी नहीं मिली।

नाममाला, बनारसीविलास और अर्धकथानकमें भी बनारसीदासजीने अपने गुरुका भक्तिपूर्वक उल्लेख किया है।

पांडे राजमल्ल

बनारसीदासजीने समयसार नाटकमें लिखा है—

पाडे राजमल्ल जिनधरमी, समयसार नाटकके मरमी।
तिन गिरथकी टीका कीनी, बालाबोध सुगम कर दीनी॥ २३॥

इसी बालबोध टीकाका उल्लेख अर्धकथानकमें भी किया है (५९२-९४) कि वि० स० १६८४ मे अध्यात्म-चर्चाके प्रेमी अरथमल ढोर मिले और उन्होंने समयसार नाटककी राजमल्लकृत टीका दी और कहा कि तुम इसे पढो,

---

१—खरतर अभैधरम उवझाइ, दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ॥ १७३
भानचद मुनि चतुरविशेष, रामचद बालक गृहमेष॥ १७४
भानचदसौं भयौ सनेह, दिन पौसाल रहै निसि गेह॥ १७५
भानचदपै विद्या सिखै . ..

२—सोलहसै तिरानवे वर्ष, समैसार नाटक धरि हर्ष॥ ६३८
भाषा कियौ भानके सीस, कवित सातसौ सत्ताईस॥

इससे सत्य क्या है सो तुम्हारी समझमें आ जायगा। हमारी समझमें ये राजमल्ल वही हैं, जो जम्बूस्वामीचरित, लाटी-संहिता, अध्यात्मकमलमार्तण्ड, छन्दोविद्या (पिंगल) और पचाध्यायी (अपूर्ण) के कर्ता हैं। छन्दोविद्याको छोड़कर इनके शेष सब ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

जम्बूस्वामीचरितका रचनाकाल १६३२, लाटीसहिताका १६४१ और अध्यात्मकमलमार्तण्डका १६४४ है। छन्दोविद्याका रचनाकाल मालूम नहीं हुआ, पर वह अकबरके समयमें नागोरके महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालको प्रसन्न करनेके लिए लिखा गया था। पचाध्यायी चूँकि उनकी अपूर्ण रचना है, अतएव यह उनकी अन्तिम रचना जान पड़ती है। अरथमलने नाटक समयसारकी बालबोध टीका (भाषा) स० १६८० में बनारसीदासजीको दी थी। अतएव वह पचाध्यायीसे कुछ पहले ही बन गई होगी।

जम्बूस्वामीचरितकी रचना अग्रवालवंशी साहु टोडरकी प्रार्थनापर अर्गलपुर या आगरेमें, लाटीसंहिता साहु फामनके लिए वैराट नगरमें, और छन्दोविद्या महान् धनी राजा भारमल्ल श्रीमालके लिए शायद नागोरमें हुई। अध्यात्मकमलमार्तण्ड और पचाध्यायी ये दो ग्रन्थ किसीके लिए नहीं, आत्मतुष्टिके लिए लिखे जान पड़ते हैं।

अध्यात्मकमलमार्तण्ड २५० पद्योंका छोटासा ग्रन्थ है जिसके पहले परिच्छेदमें मोक्ष और मोक्षमार्गका लक्षण, दूसरेमें द्रव्यसामान्य, तीसरेमें द्रव्यविशेष और चौथेमें सात तत्त्व नव पदार्थोंका वर्णन है और इसके पठनका फल सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होना बतलाया है। डा० जगदीशचन्द्रजी जैनने जम्बूस्वामीचरितकी प्रस्तावनामें लिखा है कि "अमृतचन्द्रसूरिके आत्मख्याति-समयसारकी तरह इसके आदिमें भी चिदात्मभावको नमस्कार करके संसार-तापकी शान्तिके लिए कविने अपने ही मोहनीय कर्मके नाशके लिए इस ग्रन्थकी रचना की है और उसमें कुन्दकुन्द आचार्य और अमृतचन्द्रको स्मरण किया है। कविने इस छोटेसे ग्रन्थमें आत्मख्यातिके ढंगपर अनेक छन्द

१-२-३—माणिक्यचन्द्र-जैनग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित।

४—सेठ नाथारंगजी गाँधी, शोलापुर द्वारा प्रकाशित।

५—देखो, अनेकान्त वर्ष ४ अंक २-४ में 'राजमल्लका पिंगल।'

अल्कार आदिसे सुसज्जित अध्यात्मशास्त्रकी अति सुन्दर रचना करके जैन साहित्यके गौरवको वृद्धिगत किया है।"

अर्थात् राजमल्ल अमृतचन्द्रके नाटकसमयसारके मर्मज्ञ थे और इस लिए वे ही इस बालबोधटीकाके कर्ता मालूम होते हैं। बहुत सभव है कि अध्यात्म-कमलमार्तण्डके रचनाकाल १६४४ के लगभग ही उक्त टीका लिखी गई हो।

वि० स० १६८० में अरथमल ढोरने इस टीकाकी पोथी बनारसीदासको दी थी, और यह समय राजमल्लजीके ग्रन्थोंके रचनाकाल १६३२, १६४१ और १६४४ के साथ वेमेल नहीं जान पड़ता।

भारमल्लजी राक्या गोत्रके श्रीमाल वणिक थे जिनको प्रसन्न करनेके लिए राजमल्लजीने छन्दोविद्याकी रचना की और बनारसीदासजी तथा अरथमल्जी भी श्रीमाल थे। इसके सिवाय आगरा, वैराट आदिमें राजमल्लजीका आना जाना रहता था।

वे एक काष्ठासघी भट्टारकके शिष्य थे। एक एक भट्टारकके अनेकों शिष्य होते थे जो अपनी आम्नायके श्रावकोंको धर्म-बोध देनेके लिए भ्रमण करते रहते थे। ये पाडे कहलाते थे, और इन्हींमेंसे गद्दीके उत्तराधिकारी चुने जाते थे। राजमल्ल इसी तरहके पाडे जान पड़ते हैं।

इनके ग्रन्थोंमें भट्टारकोंकी और उनके अनुयायी धनी श्रावकोंकी लम्बी-लम्बी प्रशस्तियाँ हैं, परन्तु इन्होंने स्वयं अपना कोई परिचय नहीं दिया कि किस जाति या कुलके थे, सिर्फ इतना लिखा है कि काष्ठासघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायके थे। भट्टारकोंके शिष्य हो जानेपर कुल जाति बतलानेकी कोई जरूरत ही नहीं रहती। इनके ग्रन्थोंसे यह परिचय अवश्य मिलता है कि ये बहुत बड़े विद्वान् कवि और

१—स्व० ब्र० शीतलप्रसादने सन् १९२९ में इस टीकाको नाटक समय-सारके पद्य और अपना भावार्थ देकर प्रकाशित कराया था। इसमें ग्रन्थकर्त्ताकी कोई प्रशस्ति नहीं है और न रचनाकाल ही दिया है। जयपुरके भंडारोंमें इसकी कई प्रतियॉ हैं, उनमेंसे एक स० १७४३ की और दूसरी स० १७५८ की लिखी है। परतु किसी प्रतिमें प्रशस्ति या रचना-काल नहीं दिया है। श्री अगरचन्दजी नाहटाने मुझे बताया कि उन्होंने एक प्रति स० १६५७ की लिखी देखी थी।

मर्मज्ञ थे। उनकी गुरुपरम्परामें भी शायद उनकी जोटका कोई विद्वान् नहीं था। अध्यात्म-ज्ञानके प्रभावसे उनमें उदार मतसहिष्णुता भी थी। भारमल्लजी नागोरी तपागच्छके श्वेताम्बर श्रावक थे, फिर भी उन्होंने खुले दिलसे उनकी प्रशंसा की है।

स्व० ब्र० शीतलप्रसादजीने समयसारके कलशोंकी राजमल्लीय टीकाकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाण देकर बतलाया है कि पंचाध्यायीके कर्ता और समय-सार टीकाके कर्ता एक ही हैं। पंचाध्यायीमें कहा है—

स्पर्शरसगन्धवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसालफले।
कथमपि हि पृथक्कर्तुं न तथा शक्यास्त्वखंडदेशभाक् ॥ ८३ ॥

और बालबोध टीकामें यही बात यों कही है—

"—यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गन्ध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छै तिहितैं स्पर्शमात्रकै विचारता स्पर्शमात्र छै, रसमात्रकै विचारता रसमात्र छै, गंधमात्रकै विचारणता गंधमात्र छै, वर्णमात्रकै विचारता वर्णमात्र छै, तथा एक जीववस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमानि छै तिहितैं स्वद्रव्यरूप विचारता स्वद्रव्यमात्र छै, स्वक्षेत्ररूप विचारता स्वक्षेत्रमात्र छै, स्वभावरूप विचारता स्वभावमात्र छै, तिहितैं इसौ कह्यौ जो वस्तु सो अखंडित है। अखंडित शब्दकौ इसो अर्थ छै।"

पाण्डे राजमल्लजीने अपनेको काष्ठासंघके भट्टारक हेमचन्द्रकी आम्नायका बतलाया है और उनके समयमें क्षेमकीर्ति भट्टारक विद्यमान् थे जिनकी प्रशंसा लाटीसंहिताकी प्रशस्तिमें की गई है और शायद वे उन्हींके शिष्योंमेंसे एक थे और इसीसे पाण्डे कहलाते थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ आगरा, वैराट और नागोर आदि नगरोंमें रहते हुए रचे हैं।

समयसारकलशोंकी बालबोध टीका उस समयकी जयपुर आगरा आदिकी गद्य भाषाका नमूना है। 'बनारसीविलास' के परिचयमें हमने उसके कुछ अंश दे दिये हैं।

---

१ तत्पट्टेऽस्त्यधुना प्रतापनिलयः श्रीक्षेमकीर्तिर्मुनिः,
हेयाहेयविचारचारुचतुरो भट्टारकोऽणांशुमान् ।
यस्य प्रोषधपारणादिसमये पादोदबिन्दूत्करै—
र्जातान्येव शिरांसि धौतकलुषाण्याशाम्बराणां नृणाम् ॥ —लाटीसंहिता

पाण्डे रूपचन्द और पं० रूपचन्द

बनारसीदासने अपने नाटक समयसारमें उन पॉच साथियोंका उल्लेख किया है जिनके साथ बैठकर वे परमार्थकी चर्चा किया करते थे[1]— पडित रूपचद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास। इनमें सबसे पहले पडित रूपचद हैं।

अर्धकथानकमें एक और रूपचन्द गुरुका उल्लेख है जो सवत् १६९० के लगभग आगरेमें तिहुना साहुके मन्दिरमें आकर ठहरे थे और सब अध्यातमीयोंने जिनसे गोम्मटसार ग्रन्थ बॅचाया। ये पूर्वोक्त पॉच साथियोंमेंके प० रूपचन्दसे पृथक् हैं और इन्हें ‘ पाण्डे ’ तथा ‘ गुरु ’ कहा है।

गुरु रूपचन्दकी पाण्डे पदवीसे अनुमान होता है कि ये भी किसी भट्टारकके शिष्य थे। गोम्मटसार सिद्धान्तके सिवाय अध्यातमके भी वे मर्मज्ञ होंगे और इसीलिए उनके उपदेशसे बनारसीदासकी डॉवाडोल अवस्थामे सुस्थिरता आई थी। इनकी कोई रचना अब तक नहीं मिली। पाण्डे हेमराजने पचास्तिकायकी बालबोधटीकाके अन्तमें एक रूपचन्दका गुरु रूपसे स्मरण किया है—“ यह (ग्रन्थ) श्री रूपचन्द गुरुके प्रसादथी पाण्डे हेमराजने अपनी बुद्धि माफिक लिखत कीना। ” इस टीकाका रचनाकाल स० १७२१ है।

नाटक समयसारकी समाप्ति स० १६९३ की आश्विन सुदी १३ रविवारको हुई है जिसमें प० रूपचन्द आदि पॉच साथियोंकी परमार्थचर्चाका उल्लेख है जब कि पाण्डे रूपचन्दका स्वर्गवास इससे पहले ही हो चुका था। इसलिए दोनों रूपचन्द भिन्न भिन्न व्यक्ति थे, इसमे कोई सन्देह न रहना चाहिए।

साथी रूपचन्द भी बनारसीदास जैसे ही अध्यातमरसिक सुकवि थे। श्री अगरचन्दजी नाहटा द्वारा भेजे हुए पुराने दो गुटकोंमें रूपचन्दकी ‘ दोहरा शतक ’

१—देखो, नाटक समयसारके अन्तिम अध्यायके पद्य २६–३०

२—अर्धकथानक पद्य ६३०–३५।

३—पहला गुटका बनारसीदासके एकचित्त मित्र कॅवरपालके हाथका स० १६८४–८५ का लिखा हुआ है। इसमें अध्यातमकी और दूसरी बीसों पुरानी रचनाऍ सग्रह की गई हैं।

आदि रचनायें संग्रहीत हैं। दूसरे गुटकेके दोहरा शतकके अन्तमें लिखा है—

"रूपचंद सतगुरुनिकी, जन बलिहारी जाइ ॥
आपुन पै सिवपुर गए, भव्यनि पंथ दिखाइ ॥
इतिश्री रूपचन्द्रजोगीकृत दोहरा शतक समाप्त।"

इसका 'जोगी' पद रूपचंदके अध्यातमी होनेका प्रमाण है। यह शतक कहीं कहीं 'परमार्थी दोहाशतक' के नामसे मिलता है[२]। इस सुन्दर रचनाके तीन दोहे देखिए—

चेतन चित-परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै किछू न हत्थ ॥
चेतनसौं परचै नहीं, कहा भए व्रतधारि।
सालि बिहूने खेतकी, वृथा बनावति बारि ॥
बिना तत्त्व परचै बिना, अपर भाव अभिराम।
ताम और रस रुचत हैं, अमृत न चाख्यौ जाम ॥

श्री अगरचन्दजी नाहटाके भेजे हुए पहले गुटकेमें जो कँवरपालके हाथका लिखा हुआ है, रूपचन्दका एक सुन्दर पद दिया हुआ है—

प्रभु तेरी परम विचित्र मनोहर मूरति रूप बनी।
अंग अंगकी अनुपम सोभा, बरनि न सकत फनी ॥
सकल विकार रहित बिनु अंबर, सुंदर सुभ करनी।
निराभरन भासुर छबि सोहत, कोटि तरुन तरनी ॥
वसुरसरहित सांत रस राजत, खलि इहि साधुपनी।
जातिविरोधि जंतु जिहि देखत, तजत प्रकृति अपनी ॥
दरिसनु दुरित हरै चिर संचितु, सुर-नर-फनि मुहनी।
रूपचन्द कहा कहौं महिमा, त्रिभुवन-मुकुट-मनी ॥

रूपचन्दकी एक रचना 'गीत परमार्थी' है, जिसमें परमार्थ या अध्यात्मके

१—यह गुटका स्वयं कँवरपालका लिखा हुआ तो नहीं है, पर उनके पढ़नेके लिए लिखा गया था, सं० १७०४ के आसपास।

२—इसे हम जैनहितैषी भाग ६, अंक ५–६ मे बहुत समय पहले प्रकाशित कर चुके हैं।

बहुत ही सुन्दर गीत है[1]।' उनकी 'अध्यात्म सवैया' नामक रचनाका परिचय अभी हाल ही प० कस्तूरचन्द शास्त्री एम० ए० ने अनेकान्तमे दिया है[2]। इसमें सब मिलाकर १०१ इकतीसा तेईसा सवैया हैं, अर्थात् यह भी एक शतक है। नमूनेके तौरपर शतकका एक पद्य दिया जाता है—

अनुभौ अभ्यासमै निवास सुद्ध चेतनकौ,
अनुभौसरूप सुद्ध बोधकौ प्रकास है।
अनुभौ अनूप उपरहत अनत ग्यान,
अनुभौ अनीत त्याग ग्यान सुखरास है॥
अनुभौ अपार सार आपहीकौ आप जानै,
आपहीमै व्यास दीसै जामैं जड़ नास है।
अनुभौ अरूप है सरूप चिदानद चद,
अनुभौ अतीत आठकर्मसौं अफास है॥

इनके सिवाय मगलगीतप्रबन्ध (पचमगल)[3], खटोलनागीत और नेमिनाथरासा[4-5] नामकी तीन रचनाएँ और भी रूपचन्द्रकी मिलती हैं। इनमेंसे नेमिनाथ रासा और पचमंगलका शब्दसाम्य और उपमासाम्य दोनोंको एक ही कर्त्ताकी रचना माननेका सकेत देते हैं और खटोलना गीतकी भी दो पक्तियाँ पचमगलकी पंक्तियोंसे मिलती जुलती हैं—

सोरठ देस सुहावनो, पुहुमी पुर परसिद्ध।
रस गोरस परिपूरनु, धन-जन-कनकसमिद्ध॥
रूपचन्द जन बीनवै, हौं चरननिकौ दासु।
मैं इहलोक सुहावनो, विरच्यौ किंचित रासु॥

१—इसके छह गीत जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय द्वारा 'परमार्थ जकडी-सग्रह' में प्रकाशित किये गये थे। बृहज्जिनवाणीसग्रहमें भी इसके १० गीत सग्रह किये गये हैं।

२—देखो, अनेकान्त वर्ष १४, अक १० में 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज' शीर्षक लेख।

३—यह पचमगल नामसे घर घर पढा जाता है।

४-५—प० परमानदजी शास्त्रीने जैनग्रन्थप्रशस्तिसग्रहमें इन रचनाओंकी सूचना दी है।

जो यह सुरघर गावहिं, चित दै सुनहिं जु कान ।
मनवाछिन फल पावहीं, ते नर नारि सुजान ॥ ५०

पचमगल

१—पणविवि पंच परमगुरु जो जिनसासन—आदि
२—जो नर सुनहिं बखानहिं सुर घर गावहीं,
मनवाछित फल सो नर निहचै पावहीं । आदि
३—मयनरहित मूसोदर-अंबर जारिसौ,
किमपि हीन निज तनुतै भयौ प्रभु तारिसौ ॥

नेमिनाथ रासा

पणविवि पच परम गुरु, मनबचकाय तिसुद्धि ।
नेमिनाथ गुन गावउ, उपजै निर्मल बुद्धि ॥

खटोलना गीत

सिद्ध सदा जहॉ निवसहीं, चरम सरीर प्रमान ।
किंचिदून मयनोज्झित, मूसा गगन समान ॥

इस तरह ये तीनों रचनाऍ एक ही कविकी मालूम होती हैं ।

एक और पं० रूपचंद

इस नामके एक और विद्वान् उसी समय हुए हैं जिनके समवसरणपाठ या केवलज्ञान-कल्याणार्चा नामक सस्कृत ग्रथकी अन्त्य-प्रशस्ति 'जैनग्रथप्रशस्ति-सग्रह' (न० १०७) में प्रकाशित हुई है[1] । उससे मालूम होता है कि कुरु देशके सलेमपुरमें गर्गगोत्री अग्रवाल मामटके पुत्र भगवानदासके छह पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे रूपचन्द थे, जो निरालस थे, जैनसिद्धान्तदक्ष थे । उसी समय भट्टारक जगद्भूषणकी आम्नायमें गोलापूरब वशके सघपति भगवानदास हुए जिन्होंने जिनेन्द्रदेवकी प्रतिष्ठा कराई और उन्हींकी प्रेरणासे रूपचन्दने उक्त समवसरणपाठकी रचना की। सघपति भगवानदासकी उन्होंने निःसीम प्रशसा की

१—यह प्रशस्ति बहुत ही अशुद्ध और अस्पष्ट है । जगह जगह प्रश्नाक दिये हैं, जिनके कारण पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं होता । इसकी मूल प्रति कहाँ किस भडारमें है और प्रति लिखनेका समय स्थान क्या है, सो भी नहीं बतलाया गया ।

है। उन्हें भरतेश्वर, श्रेयान्स राजा, शक्र, आदि न जाने क्या क्या बना दिया है। ये रूपचन्द्र बोधविधानलब्धिके लिए वाराणसी गये थे और वहॉ पाणिनि व्याकरण, षट्दर्शन, आदि पढकर वहॉसे दरियापुर आ गये थे। शायद सेठ भगवानदासकी सहायतासे ही वे बनारस गये थे। शाहजहॉके राज्यमें सवत् १६९२ में समवसरणपाठकी रचना हुई।

प० परमानदजीने इस पाठके कर्त्ताको ही बनारसीदासका गुरु और दोहराशतक आदि हिन्दी कविताओंका कर्त्ता बतलानेका प्रयत्न किया है। परन्तु समवसरणपाठ स० १६९२ में रचा गया है और रूपचन्द्र पाडेकी मृत्यु इसके दो वर्ष बाद १६९४ के लगभग हो चुकी थी। समयसामीप्यके सिवाय और कोई प्रमाण दोनोंकी एकता सिद्ध करनेके लिए नहीं दिया गया। वे हिन्दीके भी कवि थे, इसका कोई सकेत नहीं मिलता। इस ग्रन्थके सिवाय और भी कोई रचना उनकी है, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ। उनके आगरे आनेका भी कोई उल्लेख नहीं है। इसके सिवाय वे पाडे भी नहीं थे।

मुनि रूपचन्द्र

बनारसीदासकृत नाटक समयसारकी भाषाटीकाके कर्त्ताका भी नाम रूपचन्द है, परन्तु ये न तो वे रूपचन्द्र हैं जिन्हें अर्धकथानकमें 'गुरु' और 'पाण्डे' कहा है और न परमार्थी दोहाशतक आदिके कर्त्ता रूपचन्द्र, जो बनारसीदासके साथी पच पुरुषोंमेंसे एक थे। उन्होंने अपनी उक्त भाषाटीका नाटक समयसारकी रचनाके कोई सौ वर्ष बाद सवत् १७७२ में बनाकर समाप्त की थी, इसलिए केवल नामसाम्यके कारण कोई इन्हें बनारसीदासका गुरु या साथी समझनेके भ्रममें नहीं पड़ सकता।

१—ब्र० नन्दलाल दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला भिण्ड (ग्वालियर) द्वारा प्रकाशित।

२—इस टीकाकी प्रस्तावना वयोवृद्ध प० झम्मनलाल तर्कतीर्थने लिखी है और उसमें उन्होंने रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बतला दिया है। (अर्थात् गुरुने शिष्यके ग्रन्थपर टीका लिखी!) टीकाके अन्तमें छपी हुई प्रशस्ति आदि देखनेका कष्ट न तो तर्कतीर्थजीने उठाया और न ब्र० नन्दलालजीने। और भी कुछ लेखकोंने इन रूपचन्द्रको बनारसीदासका गुरु बनानेमें ही अधिक लाभ समझा है।

जब (१९४३ में) 'अर्धकथानक' का पहला सस्करण प्रकाशित हुआ था, तब तक हमें यह टीका प्राप्त नहीं हुई थी। सन् १८७६ में स्व० भीमसी माणिकने इस टीकाके आधारसे नाटक समयसारकी जो गुजराती टीका प्रकाशित की थी, उसके प्रारम्भमें लिखा है कि इस ग्रन्थकी व्याख्या रूपचन्द नामक किसी पडितने की है जो हिन्दुस्तानी भाषामें होनेसे सबकी समझमें नहीं आ सकती। इसलिए उसका आश्रय लेकर हमने गुजरातीमे व्याख्या की है। इस गुजराती व्याख्याको हमने देखा था परन्तु उससे हम टीकाकारके सम्बन्धमें विशेष कुछ न जान सके थे, इसलिए हमने अनुमान किया था कि वह टीका बनारसीदासके साथी रूपचन्दकी होगी। परन्तु अब यह टीका प्रकाशित हो चुकी है[1] और उससे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इसके कर्त्ता रूपचन्द्र खरतरगच्छकी क्षेम शाखाके श्वेताम्बर साधु थे।

इसकी प्रशस्तिमें उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—मुनि शान्तिहर्ष-जिनहर्ष-—वाचकसुखवर्धन-दयासिंह और दयासिंहके शिष्य मुनि रूपचन्द्र। इनका जन्म ऑचलिया गोत्रके ओसवाल वशमें पाली (मारवाड) में सवत् १७४४ मे हुआ और स्वर्गवास सवत् १८३४ में। इस तरह उन्होंने ९० वर्षका दीर्घजीवन प्राप्त किया। उनकी पहली रचना (समुद्रवद्ध कवित्त) सवत् १७६७की और अन्तिम १८२३ की है। सस्कृत और राजस्थानीमें श्री अगरचन्दजी नाहटाको उनके लगभग ४० ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। उनमे ज्योतिष, वैद्यक, काव्य, कोशग्रन्थोंकी राजस्थानी और हिन्दी टीकायें आदि हैं।

रूपचन्दजीकी यह टीका वि० स० १७९२ आश्विन वदी १ सोमवारको सोनगिरिपुरमें समाप्त हुई और गणधरगोत्रीय मोदी जगन्नाथजीके समझनेके लिए इसका निर्माण किया गया। सोनगिरिपुरके राजाने मोदीका पद देकर फतेहचन्दजीका सन्मान बढाया था, और जगन्नाथ इन्हीं फतेहचदके पुत्र थे[2]।

१—वाग्देवतामनुजरूपधरा मरौ च, श्री ओसवशवद् अचलगोत्रशुद्धाः। श्रीपाठकोत्तमगुणैर्जगति प्रसिद्धाः सत्पल्लिकापुरवरे मरुमण्डले च। अष्टादशे च शतके चतुरुत्तरे च, त्रिंशत्तमेव च समये गुरु-रूपचन्द्राः। आराधना धवलभावयुता विधाय, आयुः सुख नवतिवर्षमित च भुक्ताः॥

२—पृथ्वीपति विक्रमके राज मरजाद लीन्हें, सत्रहसै बीतेपर बानुआ बरसमैं।

इस टीकाकी एक प्रति वि० स० १८३९ की लिखी हुई मिली है जो रूपचन्दके शिष्य विद्याशील और उनके शिष्य गजसार मुनिके द्वारा शुद्धिदन्तीपत्तन या सोजत (मारवाड) में लिखी गई थी । अर्थात् इस प्रतिके लेखक टीकाकारके प्रशिष्य हैं ।

इससे १३ वर्ष पहलेकी एक प्रति जयपुरके ग्रन्थभडारमें है जिसका अन्तिम अश प० कस्तूरचन्दजीकाशलीवालने भेजनेकी कृपा की है । "—इति कविकृत भाषा पूर्णा । श्रीरस्तु प० कल्याणकुशल लिपीकृतम् । स० १९२६ वर्षे । "

मुनि कान्तिसागरजीने सोनगिरिपुरके विषयमें ग्वालियरके पासके 'सोनागिरि' तीर्थका अनुमान किया था, परन्तु प्रज्ञाचक्षु प० सुखलालजीने मुझे बतलाया कि वह मारवाड़का जालौर स्थान है । जालौरके निकट जो पहाड़ है, वह कनकाचल या सुवर्णगिरि कहलाता है । अतएव रूपचन्दजीने इसीके पासके नगर जालौरमें अपनी टीका लिखी होगी ।[२]

स्व० धर्मानन्द कोसबीके पुत्र प्रो० दामोदर कोसम्बीने भर्तृहरिके 'शतकत्रयादिसुभाषितसग्रह' का एक अपूर्व सस्करण सिंघी जैन-ग्रन्थमालामें प्रकाशित किया है । उसके इट्रोडक्शनमें शतकत्रयकी मूल और सटीक प्रतियोंका जो विवरण

आसू मास आदि द्यौस सपूरन ग्रंथ कीन्हौ, वारतिक करिकै उदार वार ससिमैं । जो पै यहु भाषाग्रन्थ सबद सुबोध याकौ, तौहू बिनु सप्रदाय नावै तत्त्व बसमैं । यातैं ग्यानलाभ जानि सतनिकौ वैन मानि, बातरूप ग्रन्थ लिख्यौ महा सान्तरसमैं । खरतरगच्छनाथ विद्यमान भट्टारक, जिनभक्तसूरिजूके धर्मराज धुरमैं । खेमसा खमाझि जिनहर्षजू वैरागी कवि, शिष्य सुखवर्धन सिरोमनि सुघरमैं ॥ ताकै शिष्य दयासिंघ गणि गुणवत मेरे, धरम आचारिज विख्यात श्रुतधरमै । ताकौ परसाद पाइ रूपचन्द आनदसौं, पुस्तक बनायौ यह सोनगिरिपुरमैं ॥ मोदी थापिमहराज जाकौं सनमान दीन्हौ, फतैचन्द पृथीराम पुत्र नथमालके । फतेहचन्दजूके पुत्र जसरूप जगन्नाथ, गोत गुनधरमैं धरैया शुभ चालके ॥ तामैं जगन्नाथजूके बूझिवेके हेतु हम, ब्यौरिकै सुगम कीन्हे वचन दयालके । वाचत पढत अब आनद सदाए करौ, सगि ताराचन्द अरु रूपचन्द बालके ।

देसी भाषाकौ कहू, अरथ विपर्जय कीन ।
ताकौ मिच्छा दुक्कड, सिद्ध साखि हम कीन ॥

दिया है उसमें वाचक रूपचन्द्रकी राजस्थानी टीकाकी दो प्रतियोंका उल्लेख है। उनमें एक प्रति संवत् १७८८ की वाचक रूपचन्दके शिष्य चन्द्रवल्लभ द्वारा सोजत नगरमें बैठकर लिखी हुई है[1]—

" संवद्वसुनागाष्टशशिवर्षे चाश्विनमासके,
शुक्लपक्षनवम्याश्च सोमवारे लिखित प्रति ॥ १
वाचका रूपचंद्राख्यास्तच्छिष्यश्चंद्रवल्लभ.
शुद्धदन्तीपुरे रम्ये प्रयास सफल व्यधात् ॥ २

श्रीरस्तु श्री स्यात्। संवत् १७८८ वरसरै विषे आसोजमासरै विषे उजवाला पखरी नवमी तिथिरै विषे मंगलवाररै दिन आ परति लिखतौ हुऔ। वाचकरूपचंद्रजी तिणरै शिष्य चंद्रवल्लभ सोजितनगरमध्ये प्रयास सफल करतौ हुऔ।"

दूसरी प्रति संवत् १८२७ की लिखी हुई है। उसके अन्तका अंश यह है—
" तरणितेज खरतरै गच्छ जिणभगतिसूरि गुर। विजयमान वडवखत खेमसाखामधि सद्दर। वाणारस गुणवंत सुखवरधन अति सुजस। वाणारस विरुदाल श्रीदयालसिंघ सिष्य तस ॥ तसु चरणरेणुसेवातणे भल प्रसाद मनभाविया। इम रूपचन्द परगट अरथ सतक तीन समझाइया ॥२॥ छत्रपति कमधाछात सकलराजराजेसर। महाराजकुलमुगट श्री अभैसिंघ नरेसर। विजैराज तसु वीर सकल हुजदार-सिरोमणि। जीवराजघण जाण प्रसिध मंत्री चीरधणि। मनरूपपुत्र तसु प्रबलमति आग्रह तसु आरंभिया। इम रूपचन्द परगट अरथ सतक तीन समझाविया ॥ ३ ॥

इससे दो बातें मालूम होती हैं। एक तो नाटकसमयसार-टीकाके चार वर्ष पहले रूपचन्द्रके शिष्य चन्द्रवल्लभने शतकत्रयकी राजस्थानी भाषा टीकाकी प्रतिलिपि की थी और दूसरी यह कि रूपचन्दकी गुरुपरम्परा वही है जो नाटक समयसार टीकामें दी है—सुखवर्धन-दयासिंह-रूपचन्द। इस प्रशस्तिमें सुखवर्धनको जो 'वाणारस

१—मुनि कान्तिसागरने इस प्रतिको अपने संग्रहकी बतलाया है (विशाल-भारत, मार्च, १९४७ पृ० २०१) और ब्र० नन्दलालजीद्वारा प्रकाशित टीकामें भी इसी प्रतिकी यह प्रशस्ति दी हुई है।

२—तपागणपतिगुणपद्धति (पृ० ८५) के अनुसार जोधपुरनरेश गजसिंहके मंत्री जयमल्ल विजयसिंहसूरिको जालौर दुर्ग लाये और वहाँ एकके

गुणवत ' और दयासिंहको ' वाणारसविरुदाल ' विशेषण दिये हैं, सो क्या बनारसीदासको इंगित करते हैं ?)

पूर्वोक्त दूसरी प्रतिके अन्तिम अशसे मालूम होता है कि जिस समय बृहत्खरतर गच्छके प्रधान आचार्य जिनभक्तसूरि थे, उस समय उक्त गच्छकी ही क्षेमकीर्ति शाखामें विरागी कवि जिनहर्षके शिष्य सुखवर्धन, और उनके शिष्य दयालसिंह गणि हुए।

(नाटकसमयसारकी टीकाकी प्रतिमें लिपिकर्त्ताका जो परिचय दिया है उससे मालूम होता कि वे स्वय प० रूपचन्दजीके प्रशिष्य गजसार थे और उन्होंने शुद्धदन्तीपुर अर्थात् सोजत (मारवाड़) में पौषवदी ५ मगलवार सवत् १८३९ को प्रति लिखी थी[1]। अर्थात् रचना-कालसे लगभग ४७ वर्ष बाद इसकी प्रतिलिपि की गई है।)

(सोनगिरिपुर जोधपुर राज्यका जालौर ही जान पड़ता है। जालौरके पासके पर्वतका नाम स्वर्णगिरिपुर है। इसका उल्लेख श्वेताम्बर साहित्यमें अनेक जगह हुआ है[2]।)

बाद एक चातुर्मास करके स्वर्णगिरिशीर्षपर तीन जिन मन्दिर प्रतिष्ठापित किये। इसी स्वर्णगिरिके पासका नगर सोनगिरिपुर है।

१—" नन्दवह्निनागेन्दुवत्सरे विक्रमस्य च, पौषसितेतरपञ्चमीतिथौ, धरणीसुतवासरे श्रीशुद्धिदन्तीपत्तने श्रीमति विजयसिंहाख्यसुराज्ये, बृहत्खरतरगणे निखिलशास्त्रौघपारगामिनो महीयासः श्रीक्षेमकीर्तिशाखोद्भवाः पाठकोत्तमपाठका श्रीमद्रूपचन्द्रगणयस्तच्छिष्यः प० विद्याशीलमुनिस्तच्छिष्यो गजसारमुनिः समयसारनाटकग्रथ लिखितम्। श्रीमद्गवडीपुराधीशप्रसादाद्भावके भूयात् पाठकाना श्रोतृणा छात्राणा शश्वत। श्रीरस्तु। "

२-तपागच्छपट्टावलीमें लिखा है—" तत्र च श्रीयोधपुराधीश्वरश्रीगजसिंहराजस्य मुख्य मान्य श्री जयमल्ल नाम्ना जालोरदुर्गे प्रतिष्ठात्रयमन्तरान्तरा चतुर्मासत्रय श्रीगुरुणामाग्रहेण कारयित्वा स्वर्णगिरौ चैत्य स्वकारित प्रतिष्ठापयामास। " तपागणपतिगुणपद्धतिमें भी लिखा है कि विजयसिंहसूरिको जोधपुरनरेश गजसिंहके मत्री जयमल्ल जालोर दुर्ग लाये और वहाँ एकके बाद एक तीन चौमासे करके स्वर्णगिरिशीर्षपर तीन मदिर प्रतिष्ठापित किये।

अठारहवीं शताब्दिके उपाध्याय क्षमाकल्याणका एक अष्टक मिलता है जिसकी प्रति लश्करके श्वेताम्बर मन्दिरमें है। (उसके अनुसार रूपचन्दका जन्म ओसवाल वशके आंचलिया गोत्रमें मारवाडके पाली नगरमें हुआ था और स्वर्गवास संवत् १८३४ मे ९० वर्षकी अवस्थामें। इस हिसाबसे उनका जन्म १७४४ में हुआ होगा। ×)

दतिया राज्यके सोनागिरिको कुछ लोगोंने नाटक समयसार टीकाका रचना-स्थान बतलाया है, जो ठीक नहीं है। जालौर खरतरगच्छके साधुओंका केन्द्र रहा है।

इनका 'गोतमीय काव्य' नामका एक संस्कृत काव्य है जो देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्डकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है। उससे मालूम होता है कि इनका दूसरा नाम रामविजय था और जोधपुरके राजा अभयसिंह द्वारा ये सम्मानित थे। * जिनवल्लभसूरिने स० १८१७ में इन्हें उपाध्यायपद दिया था।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि नाटकसमयसारके टीकाकर्त्ता रूपचन्द न तो बनारसीदासजीके गुरु थे, न साथी और न समकालिक। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके थे और इस टीकाको ध्यानसे देखनेसे इसकी प्रतीति सहज ही हो जाती है। + वे जगह जगह लिखते हैं, "यह कथन दिगम्बर सम्प्रदायका है।" "याही प्ररूपणा दिगम्बर सम्प्रदायकी है।" "ये अठारह दूषण दिगम्बरसम्प्रदायके हैं। अन्य सम्प्रदायमे १८ दोष न्यारे कहे हैं।" ऊपर जो लेखककी प्रशस्ति दी गई है, उससे भी स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर खरतरगच्छके साधु थे।

चतुर्भुज

पञ्च पुरुषोंमे दूसरा नाम चतुर्भुजका है जो आगरेकी ज्ञातामण्डलीके एक सदस्य थे। इनके विषयमें बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी हम और कुछ नहीं जान सके।

× देखो, पृष्ठ ९ की पहली टिप्पणी।

* तच्छिष्योऽभयसिंहनामनृपतेः लब्धप्रतिष्ठामहा-
गभीरार्हतशास्त्रतत्त्वरसिकोऽहं रूपचन्द्राह्वया।
प्रख्यातापरनामरामविजयो गच्छेशदत्ताज्ञया,
काव्यं कार्षमिमं कवित्वकलया श्रीगौतमीये शुभम्॥

भगवतीदास

पञ्च पुरुषोंमें ये तीसरे हैं। अर्धकथानकके अनुसार ये अध्यात्मज्ञानी वासूसाह ओसवालके पुत्र थे और बनारसीदास उनके यहाँ अपने कुटुम्बसहित कोई छह महिनेतक ठहरे थे। यह सवत् १६५५ की बात है। अभी तक इनकी भी कोई रचना नहीं मिली और न इनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। पं० हीरानन्दजीने अवश्य ही अपने पद्यबद्ध पचास्तिकाय (वि० स० १७११) एक 'भगौतीदास ग्याता'का उल्लेख किया है और उक्त पञ्चपुरुषोंमेंके भगवतीदास ही प० हीरानन्दके अभिप्रेत मालूम होते हैं। ब्रह्मविलासके कर्त्ता भैया भगवतीदास भी आगरेके रहनेवाले कटारियागोत्रके ओसवाल थे। परन्तु वे कोई और ही मालूम होते हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासमें उनकी जितनी रचनायें सग्रहीत हैं वे सवत् १७३१ से १७५५ तक की हैं और नाटक समयसारकी रचना स० १६९३ में हुई है जिसमें बनारसीदासके साथ परमार्थकी चर्चा करनेवाले भगवतीदासका नाम गिनाया है। उस समय उनकी उम्र ५५-६० से कम न होगी। क्योंकि बनारसीदास उनके घर स० १६५५ में जाकर ठहरे थे। ब्रह्मविलासकी रचनायें स० १७५५ तक की हैं, अतएव तब तक वासूसाहुके पुत्र भगवतीदासके जीवित रहनेकी बात कष्टकल्पना होगी।

कुँअरपाल

अभी तक हम इतना ही जानते थे कि सोमप्रभकी सूक्तिमुक्तावलीका पद्यानुवाद बनारसीदासने कुँअरपालके साथ मिलकर किया था और बनारसीविलासमें सग्रहीत ज्ञान-बावनीमें भी कुँअरपालका उल्लेख है। बनारसीदासने उन्हें अपना एकचित्त मित्र बतलाया है और महोपाध्याय मेघविजयने युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासके परलोकगत होनेपर कुँअरपालने उनके

१—तहाँ भगौतीदास है ग्याता, घनमल और मुरारि विख्याता।

२—वासूसाह अध्यातम-जान, बसै बहुत तिन्हकी सतान।
बासूपुत्र भगौतीदास, तिन दीनौ तिन्हकौं आवास।
तिस मदिरमैं कीनौ बास, सहित कुटुंब बनारसिदास॥ १४२

मतको धारण किया और वे उनके अनुयायियोंमें गुरुके समान सर्वमान्य हो गये।

पर इधर उनके विषयमें कुछ और प्रकाश पड़ा है। एक तो पाण्डे हेमराजने अपनी दो रचनाओंमें कुँअरपाल ज्ञाताका उल्लेख किया है। ‘सितपट चौरासी-बोल’ में लिखा है—

नगर आगरेमैं बसै, कौंरपाल सग्यान।
तिस निमित्त कवि हेमनें, कियउ कवित परवान॥

और प्रवचनसारकी बालबोध-टीकामें लिखा है—

बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूँ मैं तैसे।
नगर आगरेमैं हितकारी, कौंरपाल ग्याता अधिकारी॥ ४॥
तिनि विचारि जियमैं यह कीनी, जो भाषा यह होइ नवीनी।
अलपबुधी भी अरथ बखानैं, अगम अगोचर पद पहिचानैं॥ ५॥
यह विचार मनमें तिनि राखी, पांडे हेमराजसौं भाखी।
आगैं राजमल्लनैं कीनी, समयसार भाषारसलीनी॥ ६॥
अब जो प्रवचनकी है भाखा, तो जिनधर्म बढ़ै सौ साखा।
सत्रहसै नव ओतरै, माघ मास सितपाख।
पचमि आदितबारकौं, पूरन कीनी भाख॥

इससे मालूम होता है कि स० १७०९ में कुँअरपाल आगरेमें अधिकारी ग्याता समझे जाते थे और उन्होंने राजमल्लजीकी बालबोधिनी टीकाके ढगकी प्रवचनसारकी भी टीका लिखानेका यह प्रयत्न किया था।

श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा भेजे हुए दो पुराने गुटकोंमेंसे एक गुटका स० १६८४-८५ में स्वय कुँवरपालके हाथका लिखा हुआ है और उसमें स्वय

१—‘चौरासी बोल’ मे रचनाका समय नहीं दिया है, परन्तु मेरी एक नोंध-पोथीमे सवत् १७०७ लिखा हुआ है।

२—आनन्दघनके पद, द्रव्यसग्रह भाषाटीका, फुटकर सवैया, और चतुर्विंशति स्थानानिके बाद लिखा है—“स० १६८४ आषाढ सु० ६ कौरा अमरसीका चोरडया श्री आगरामध्ये स्वय पठनार्थं।” तत्त्वार्थके अन्तमें लिखा है —“स० १६८५ सावण सुदि ८ लि० कौरा।” योगसारके अन्तमें “स० १६८५ आसोज वदी १३ दिने। लि० कवरा स्वय पठनार्थं।”

उनकी भी कई रचनाये हैं। दूसरा गुटका उनके लिए अन्य लेखकों द्वारा लिखा हुआ है और उसकी कई रचनाओंके नीचे लिखा है—" श्री जैसलमेरुमध्ये पुण्य-प्रभावक सा कुअरजी पठनार्थे " " लिखित श्री जैसलमेरुनगरे सुश्रावक सा० कुवरजी वाच्यमानः चिरजीयादिति श्रेयः।" इस गुटकेमे कुँअरपालकी भी 'समकितबत्तीसी' आदि कई रचनाएँ हैं।

समकितबतीसीमें ३३ पद्य हैं। क से लगाकर ह तकके एक एक अक्षरसे प्रारभ होनेवाले प्रत्येक पद्यकी अन्तिम पक्तिमे 'कँवरपाल' नाम आता है। ३१-३३ वें पद्योंमें कविने अपना परिचय और रचनाकाल दिया है—

खितमधि ओसवाल अति उत्तम, चोरोडिया विरद बहु दीजइ।
गौडीदास अस गरवत्तन, अमरसीह तसु नद कहीजइ॥
पुरि-पुरि कवरपाल जस प्रगटयौ, बहु विध तास बस वरणिजइ।
धरमदास जसकवर सदा धनि, बहसाखा विमतर जिम कीजइ॥ ३१
सुद्ध एक आगइ छक उत्तिम, अष्ट करम भजन दल आगर।
सत्ता सुद्ध भई जा फागुनि, बोधबीज उज्जलपद नागर॥
तव रेवइ नक्षत्र तीरथफल, सुनि हइ ग्यान जिके सुखसागर।
ए सवत् वाइक अति सुदर, कवरपाल समझइ नर नागर॥ ३२
हुऔ उछाह सुजस आतम सुनि, उत्तम जिके परम रस भिन्नै।
ज्यउ सुरही तिण चरहि दूध हुइ, ग्याता तेरह प्रन गुन गिन्नै॥
निजबुधि सार विचारि अध्यातम, कवित बतीस भेट कवि किन्नै।
कंवरपाल अमरेसतनूभव, अतिहितचित आदर कर लिन्नै॥ ३३

इससे मालूम होता है कि ओसवाल वशके चोरडिया गोत्रीय गौड़ीदासके दो पुत्र थे, बड़े अमरसिंह या अमरसी और छोटे जसू। जसूके पुत्र धरमदास या धरमसी थे और अमरसीके कँवरपाल। कँवरपालका नगर नगरमे जस फैल गया और उन्होंने सवत् १६८७ में उक्त समकितबत्तीसीकी रचना की[1]।

अर्धकथानकमें लिखा है कि जसू और अमरसी भाई-भाई थे और छोटे भाईके पुत्र (लघुबन्धवपूत) धरमदासके साझेमें बनारसीदासने जवाहरातका व्यापार किया था[2]।

१—श्री अगरचन्दजी नाहटा 'सत्ता' पदसे सवत् १६८१ अर्थ करते हैं, १६८७ सवत् नहीं।

२—देखो, अर्धकथानक पद्य ३५२, ५३, ५४।

(कुँवरपालके हाथके लिखे हुए गुटकेकी कई रचनाओंके नीचे उनके लिखनेका सवत् १६८४ और ८५ दिया हुआ है और पाडे हेमराजजीने प्रवचनसार टीका स० १७०९ में उनकी प्रेरणासे ही बनाई थी। उसके बाद वे और कब तक जीवित रहे, इसका पता नहीं।)

पहले गुटकेमें चौवीस ठाणाके लिख चुकनेके बाद उन्होंने अपनी दो कविता और दी हैं जिनमें अपना उपनाम 'चेतन कवर' दिया है—

बदौ जिनप्रतिमा दुखहरणी।
आरभ उदौ देख मति भूलो, ए निज सुधकी धरणी॥ वन्दौ०॥
वीतरागपदकू दरसावइ, मुक्ति पथकी करणी।
सम्यगदिष्टी नितप्रति ध्यावइ, मिथ्यामतकी टरणी॥ १॥
गुणश्रेणी जे कही एकदस, आतम अमरित झरणी।
तिणकौ कारण मूल जाणजिइ, रिपक भावकी वरणी॥ २॥
रतनागर चउवीसी अरिहत, गुणनिध सुण अघ चरणी।
चेतन कवर यहै लिव लागी, सुमति भई जब घरणी॥ इति॥
जोणी जाणै भेव वीतराग पदकौ कही।
मूढ़ न जाणै जेह, जिनठवणा वदै नही॥ १॥
जिनप्रतिमा जिनसम लेखीयइ,
ताकौ निमित पाय उर अतर, राग दोष नहि देखीयइ। जिन प्र०॥ १॥
सम्यगदिष्टी होइ जीव जे, तिण मन ए मति रेखीयइ।
यहु दरसन जाकूं न सुहावइ, मिथ्यामत भेखीयइ। जि०॥ २॥
चितवत चित चेतना चतुर नर, नयन मेष न मेखीयइ
उपशम कृया ऊपजी अनुपम, कर्म कटइ जे सेखीयइ॥ ३॥
वीतराग कारण जिण भावन, ठवणा तिण ही पेखीयइ।
चेतन कवर भये निज परिणति, पाप पुन्न दुइ लेखीयइ॥

(कुँवरपालजी अध्यातमी मित्रोंमें प्रधान थे और कवि भी। इससे आशा है, आगरा आदिके भण्डारोंमें उनकी और भी रचनायें मिलेगी। सवत् १६८४–८५ में वे आगरेमे थे और १७०९ मे भी, जब प्रवचसारटीकाकी रचना हुई है। जान पडता है जैसलमेरमें भी वे रहे हैं। शायद वह उनका मूल स्थान होगा और वहाँ आते जाते रहते होंगे। जैसलमेरमें भी सवत् १७०४ मे गजकुशल गणिने उनके पढ़नेके लिए सग्रहिणीसूत्र लिखा था।)

धरमदास

(बनारसीदासके पाँच साथियोंमें एक धरमदास भी थे और ये उक्त कुँअर-पालके चचेरे भाई ही जान पड़ते हैं। ये जसासाहुके पुत्र थे। अर्धकथानक (३५३) के अनुसार ये कुसगतिमें पड़ गये थे, नशा करते थे और इनके साथ बनारसीदासने साझेमें व्यापार किया था। पूर्वोक्त दूसरे गुटकेमें इनकी 'गुरुशिष्यकथनी' नामकी एक कविता मिली है, जो यहाँ दी जा रही है—)

इण ससार समुद्रकौ, ताकै पैं तट्टा।
सुगुरु कहै सुणि प्राणिया, तू धरजे भ्रम वट्टा॥
पूरव पुन्य प्रमाण तै, मानव भव खट्टा।
हिव अहि लौ हारे मता, भाजे भव भट्टा।
लालच मैं लागौ रवे, करि कूड़ कपट्टा॥ २
उलझैगौ तू आपसू, ज्यूं जोगी जट्टा।
पाचिस पाप सताप मैं, ज्यू भौ भरमट्टा।
भमसी तू भव नव नवा, नाचै ज्यू तट्टा॥
ऐमिंदर ऐ मालिया, ऐ ऊँचा अट्टा॥ ३
है वर गै वर हींसता, गो महिषी थट्टा।
जाल दुलीचा ढूव खा, पल्लिंग सुघट्टा॥
माणिक मोती मुंद्रडा, परवाल प्रगट्टा।
आइ मिल्या है एकठा, जैसा थल्वट्टा॥ ४
लोभै ललचाणौ थकौ, मत लागि लपट्टा।
काल तकै सिर ऊपरै, करिसी चटपट्टा।
जे जासी इक पल्कमैं, ज्यू बाउल घट्टा।
राहगीर संध्या समै, सोवै इकहट्टा॥ ५
दिन ऊगौ निज कारिजैं, जायै दहवट्टा।
त्यू ही कुटुब सबै मिल्यौ, मन जाणि उलट्टा॥
एहिज तोकू काढिसी, करि वे सपलट्टा।
साथ चलैंगे कप्पमे, दुई च्यार लकुट्टा॥ ६
स्वारथकौ ससार है, विण स्वारथ खट्टा।

रोग ही सोग वियोगका, सबला संकट्टा ।
दान दया दिलमैं धरौ, दुख जाइ दहट्टा ।
धरम करौ कहै धरमसी, सुख होइ सुलट्टा ॥ ७

इसी ढगकी 'मोक्षपैड़ी' नामकी रचना बनारसीदासकी भी है, जो बनारसी-विलासमें सग्रहीत है। वर्धमान-वचनिकामे भी सुखानन्द, भणसाली मीठू, नेमिदास आदिकी अध्यातम सैलीमे एक धरमदासका नाम आता है।

नरोत्तमदास और थानमल

ये दोनों बनारसीदासके घनिष्ठ मित्रोमे थे। 'नाममाला' की रचना उन्होंने इन दोनोंकी प्रेरणासे की थी[1]। राग बरवा (बनारसीविलास) भी दोनोंके निमित्तसे रचा था[2]। नरोत्तम वेणीदास खोबराके पुत्र थे[3]। इनकी प्रशसामे उन्होंने एक सुन्दर कविता लिखी थी जिसे वे भाटकी तरह रात दिन पढते थे[4]। 'शान्तिनाथ जिनस्तुति' (बनारसीविलास) में भी उन्होंने दो जगह नरोत्तमका नाम दिया है[5]।

चन्द्रभान और उदयकरण

ये भी उनके ऐसे मित्र थे जिनके साथ वे धीगामस्ती करते और फिर अध्यात्म-ज्ञानकी वार्ते। अपनी ज्ञानपचीसी (बनारसीविलास) उन्होंने उदयकरणके लिए लिखी है। इनके विषयमें और अधिक कुछ न मालूम हो सका।

१—मित्र नरोत्तम थान, परम विचच्छन धर्मनिधि।
तासु वचन परवान, कियौ निबध विचार मनि ॥ २८० ॥

२—उधवा गाइ सुनाएहु, चेतन चेत। कहत बनारसि, थान नरोत्तम हेत ॥

३—अर्धकथानकका ४८६ वॉ पद्य।

४—रीझि नरोत्तमदासकौ, कीनौ एक कवित्त।
पढै रैनदिन भाट सौ, घर बजार ज्ति कित्त ॥ ४८५ ॥

५—साति जिनेस नरोत्तमकौ प्रभु। मिलिया तुझ कत नरोत्तमकौ प्रभु ॥

पीताम्बर

बनारसीविलासमें 'ग्यान बावनी' नामकी एक कविता सग्रह की गई है, जिसमें ५२ इकतीसा सवैया हैं। इसके प्रत्येक सवैयामें 'वनारसीदास' नाम आया है और इसलिए उसे अन्तमें 'वनारसीनामाकित ग्यानबावनी' लिखा है। इसके सिवाय प्रत्येक सवैयाका आदि अक्षर वर्णानुक्रमसे रक्खा है। प्रारभके पॉच पद्योंके आदि अक्षर 'ओ न मः सि ध' और आगेके 'अ आ इ ई' आदि हैं। कविता बहुत गूढ है और उसमें अध्यात्म शैलीसे बनारसीके गुणोंका कीर्त्तन किया गया है। इसके कर्त्ताका नाम पीताम्बर है और यह कुँआर सुदी १० स० १६८६ को निर्मित हुई है। आगरेमे कपूरचन्द साहुके मदिरमें सभा जुड़ी हुई थी जिसमें कँवरपाल आदि भी थे। उसी समय बनारसीदासजीके वचनोंकी चर्चा चली और तब सबके 'हुकम' से पीताम्बरने ग्यानबावनी तैयार की।

'ग्यानबावनी' के सिवाय कविकी और कोई रचना नहीं मिली और न उनके विषयमें और कुछ ज्ञात हुआ। 'आगरे नगर ताहि भेंटे सुख पायौ है'. पदसे ऐसा जान पड़ता है कि वे कहीं बाहरसे आये थे और आगरेमें बनारसीदाससे उनकी भेंट हुई थी। उस समय बनारसीदासकी बहुत ख्याति हो गई थी और सारी खल्क उनका बखान करती थी।

सकबधी साचौ सिरीमाल जिनदास सुन्यौ,
ताके बस मूलदास बिरद बढायौ है।
ताके बस छितिमैं प्रगट भयौ खरगसेन,
बनारसीदास ताके अवतार आयौ है।
बीहोलिया गोत गरवत्तन उदोत भयौ,
आगरे नगर ताहि भेंटे सुख पायौ है।
बानारसी बानारसी खल्क बखान करै
ताकौ बस नाम ठाम गाम गुन गायौ है। ४५
खुसी ह्वैकै मदिर कपूरचन्द साहु बैठे,
बैठे कौरपाल सभा जुरी मनभावनी।

बनारसीदासजूके बचनकी बात चली,
याकी कथा ऐसी ग्याताग्यानमनलावनी ॥
गुनवंत पुरुषके गुन कीरतन कीजै,
पीतांबर प्रीति करि सज्जन सुहावनी।
वही अधिकार आयौ ऊँघते बिछौना पायौ,
हुकमप्रसादतैं भई है ग्यानबावनी ॥ ५०
सोलहसौ छियासिए संवत कुआरमास,
पच्छ उजियारौ चद्र चढिवेकौ चाव है।
विजै दसौं दिन आयौ सुद्ध परकास पायौ,
उत्तरा असाढ उडुगन यहै दाव है।
बानारसीदास गुनयोग है सुकल बाना,
पौरष प्रधान गिरि करन कहाव है।
एक तौ अरथ सुभ मुहूरत बरनाव,
दूसरे अरथ यामैं दूजौ बरनाव है ॥ ५१

जगजीवन

यद्यपि स्वयं पं० बनारसीदासजीने अपनी रचनाओंमे कहीं इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु ये भी उनके अनुयायी थे। वि० सं० १७०१ में इन्होंने बनारसीदासजीकी समस्त रचनाओंको एकत्र किया और उसे 'बनारसीविलास' नाम दिया। ये आगरेके रहनेवाले गर्गगोत्री अग्रवाल थे। इनके पिताका नाम संघवी अभयराज और माताका मोहन दे था। अवश्य ही ये बनारसीदासके साथियों और अनुयायियोंमे थे।

"समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ,
ग्यानिनकी मंडलीमैं जिसकौ विकास है।"

पं० हीरानंदजीने अपने पंचास्तिकाय पद्यानुवादमें उनके पिता संघवी अभयराज और माता मोहनदेका उल्लेख करनेके पश्चात् कहा है कि जगजीवन जाफर खॉ नामक किसी उमरावके दीवान थे—

ताकौ पूत भयौ जगनामी, जगजीवन जिनमारगगामी।
जाफरखॉके काज सँवारै, भया दिवान उजागर सारै ॥

पं० हीरानन्दजीने उक्त जगजीवनजीके कहनेसे ही वि० सं० १७११ में पचास्तिकायकी रचना की थी।

पांडे हेमराज

कुँवरपालजीका परिचय देते हुए ऊपर लिखा जा चुका है कि उनकी प्रेरणासे हेमराजजीने 'सितपट चौरासी बोल' और प्रवचनसारकी बालबोधटीका लिखी थी, जिसका रचनाकाल १७०९ है। इसके बाद उन्होंने परमात्मप्रकाशकी भाषाटीका सवत् १७१६ में, गोम्मटसार कर्मकाण्डकी भा० टी० सवत १७१७ में, पचास्तिकायकी १७२१ में और नयचक्रकी टीका सवत् १७२६ मे लिखी है। मानतुगके भक्तामर स्तोत्रका एक सुन्दर पद्यानुवाद भी इनका किया हुआ है। राजस्थानके जैनग्रन्थभडारोंकी सूचीपरसे हम यह नामावली दे रहे हैं, सभव है, इनके सिवाय और भी उनकी रचनाएँ हों[1]। इनसे मालूम होता है कि अपने समयके ये भी बड़े विद्वान् थे, और कुँवरपाल आदि अध्यात्मियोंसे इनका विशेष सम्पर्क था। 'चौरासी बोल' से मालूम होता है कि इनकी कविता भी सुन्दर होती थी —

सुनयपोष हतदोष, मोषमुख सिवपददायक,
गुनमनिकोष सुघोष, रोषहर तोषविधायक।
एक अनत सरूप सतबदित अभिनदित,
निज सुभाव पर भाव भावि भासेइ अमदित।
अविदितचरित्र विलसित अमित, सर्व मिलित अविलिप्त तन,
अविचलित कलित निजरस ललित, जय जिन दलित (सु) कलिल घन ॥ १

१—प० कस्तूरचन्दजी कासलीवाल लिखते हैं कि पं० हेमराजकी १२ रचनाये प्राप्त हो चुकी हैं। ऊपर लिखी छह रचनाओंके सिवाय नयचक्र भाषा, प्रवचनसार पद्यानुवाद, हितोपदेश बावनी, दोहाशतक, जीवसमास और हैं।

२—प० परमानन्दजी शास्त्रीने देहलीसे 'चौरासी बोल' नामकी एक और पुस्तकका आद्यन्त अश उतार कर भेजा है जिसके कवि जगरूप हैं और जिसे उन्होंने जयसिंहपुरा (नई दिल्ली) में सवत् १८११ मे बनाकर समाप्त किया था। इसमें भी श्वेताम्बर सम्प्रदायकी मतभेदसम्बन्धीकी ८४ बातोंका खण्डन किया गया है।

नाथ हिम भूधरतैं निकसि गनेस चित्त, भूपरि बिथारी सिवसागर (लौं) धाई है।
परमतवाद मरजाद कूल उनमूलि, अनुकूल मारग सुभाय ढरि आई है॥
बुध हस सरै पापमलको विधस करै, सरवस सुमतिविकासि वग्दाई है।
सपत अभग भग उठैं हैं तरग जामैं, ऐसी वानी गग सरवग अग गाई है॥

ऊपर लिखा जा चुका है कि रूपचन्द इनके गुरु थे।

प० कस्तूरचन्दजीने अभी हाल ही पाण्डे हेमराजके 'उपदेश दोहा-शतक' का परिचय दियो है जिसमे १०१ सुभाषित दोहे हैं और जिसकी रचना कार्तिक सुदी ५ स० १७२५ को समाप्त हुई है। दोहा शतकमे यह बात विशेष मालूम हुई कि उनका जन्म सागानेरमे हुआ था और यह दोहा शतक काम गढ (कामा, भरतपुर) मे कीर्तिसिंह नरेशके समयमे बनाया गया। शतकके कुछ दोहे देखिए—

ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अंध अवेव।
तेरे ही घटमै बसै, सदा निरजन देव॥ २५॥
मिलै लोग बाजा बजै, पान गुलाल फुलेल।
जनम मरन अरु व्याहमैं, है समान सौ खेल॥ ३६॥

पाण्डवपुराण (भारत-भाषा स० १७५४) के कर्त्ता कवि बुलाखीदासकी माता जैनुल दे' या 'जैनी' बड़ी विदुषी थीं और वे प० हेमराजकी पुत्री थीं। बुलाखीदासके अनुसार हेमराज गर्गगोत्री अग्रवाल थे[2]।

वर्द्धमान नवलखा

मुलतानके रहनेवाले पाहिराज साहुके पुत्र वर्द्धमान या वद्धूरचित 'वर्द्धमान-वचनिका' की प्रति श्री अगरचन्दजी नाहटाकी कृपासे प्राप्त हुई। ये ओसवाल थे और नवलखा इनका गोत्र था। माघ सुदी पचमी स० १७४६ को वर्द्धमान-वचनिकाकी रचना हुई और चैत्र वदी १ सवत् १७४७ को विशालोपाध्याय गणिके शिष्य ज्ञानवर्धन मुनिने मुल्तानमें ही इसकी प्रतिलिपि की।

इसके पत्र २० में नीचे लिखे दोहे हैं—

१—अनेकान्त वर्ष १४ अक १० में देखो 'हिन्दीके नये साहित्यकी खोज'।

२—हेमराज पडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरगगोत गुन आगरौ, सब पूजैं जिम पाइ॥

धरमाचारिज धरमगुरु, श्रीबणारसीदास ।
जासु प्रसादे मैं लह्यौ, आतम निजपदबास ॥ १
वंदू हू श्री सिद्धगण, परमदेव उतकिष्ट ।
अरिहंत आदि ले च्यार गुरु, भविकमाहि ए शिष्ट ॥ २
परंपरा ए ग्यानकी, कुंदकुंद मुनिराज ।
अमृतचंद्र राजमल्लजी, सबहूके सिरताज ॥ ३
ग्रंथ दिगंबरके भले, भीष (?) सेतांबर चाल ।
अनेकांत समझै भला, सो ग्याताकी चाल ॥ ४
स्याद्वाद जिनके बचन, जो जानै सो जान ।
निश्चै व्यवहारी आतमा, अनेकांत परमान ॥ ५

आगे गद्य इस प्रकार है—

" अथ चतुर्विधसंघस्थापना लिख्यते ।

साध्वी १, श्रावक २, श्राविका ३, अंबरसहित जाणवा । जघन्ये साध लज्या जीत न सकै तिणवास्ते स्वेतांबर होवै । साधवी पण निस्संकिता अगरै वास्ते स्वेतांबर होवै । उतकृष्टा मुनीस्वर ६ गुणठाणे आदि ले केवली भगवंत सीम दिगंबर परम दिगंबर होवै । परम दिगंबर छे तिको मोक्ष साधनरो अंग छे । भावकर्म १, द्रव्य-कर्म २, नोकर्म ३ री त्यागभावना भावै । भेष भावै जिसो हुवै । परम दिगंबर मोक्ष साधै । दिगंबर मुनीस्वर ओलखवारो लिंग जाणवो । इतरी चौथे आरेरी बात लिखी छे । जिआं मुनीस्वरारा संघयण सबला हुता ताहिवै पांचमा आरारी वार्ता लिख्यते । "

पत्र ३० में ये दो दोहे हैं—

जिनधरमी कुलसेहरो श्रीमाला सिणगार ।
बाणारसी बहोल्या, भविक जीव उद्धार ॥ १
बाणारसी प्रसादतैं, पायो ग्यान विग्यान ।
जग सब मिथ्या जाण करि, पायौ निज स्थान ॥ २

पत्र ७६ के अन्तमें—

बाणारसी सुपसाय ले, लाधो भेद विग्यान ।
परगुण आस्या छंडिके, लीनै सिवको थान ॥

दयासागर मुनि चूप बताई । बद्धूके मन साची आई ।
जिनददेवके साचे बैन, दयासागर ऊतारै जैन ॥ २
दयासागर साचो जती, समझै निज नयसग ।
अध्यातम वाचै सदा, तजौ करमको रग ॥ ३
पाहिराज साहिको सुतन, नवलख गोत्र उदार ।
आतमग्यानी दास है, वर्धमान सुखकार ॥ ८
धरमदास आतमधरम, साचौ जगमैं दीठ ।
और धरम भरमी गिणे, आतम अमीसम सीठ ॥ १०
मिट्ठू मीठे जिनवचन, और कड्डू सहु मान ।
उपादेय निज आतमा, और हेय तू जान ॥ ११
सुखानद निजपद कह्यो, अविनासी सुखकार ।
अनुभव कीजै पदतणौ, पुदगल सगली छार ॥ १२

मुलतान शहर अध्यात्मी या बनारसीदासजीके अनुयायियोंका मुख्य स्थान रहा है। वहाँके ओसवाल श्रीमाल इसी मतके अनुयायी रहे हैं। वर्धमान वचनिकासे इस बातकी पुष्टि होती है। इसमे धरमदास, भणसाली मिट्ठू, सुखानन्द आदिका उल्लेख है। श्वेताम्बर साधु दयासागरको भी अध्यात्मी बनाया है। इस वचनिकाके लिपिकर्त्ता प० ज्ञानवर्धन मुनि भी श्वेताम्बर थे। श्री अगरचन्दजी नाहटाके अनुसार खरतर गच्छके जिनसमुद्रसूरिने सं० १७११ में गणधरगोत्रीय नेमिदास श्रावकके आग्रहसे आतम-करणीसवाद ग्रथ रचा है। खरतरगच्छके सुमतिरगने स० १७२२ मे मुलतानके श्रावक चाहड़मल्ल, नवलखा वर्धमान आदिके आग्रहसे प्रबोधचिन्तामणि चौपाई और योगशास्त्र चौपाईकी रचना की है। पिछले ग्रन्थमें चाहड़, कर्मचन्द, जेठमल, ऋषभदास, पृथ्वीराज, शिवराजका उल्लेख किया है। ये सब अध्यातमी थे—

जिनवाणी जगतारक जान, चाहड़ ऋषभदास वर्धमान ।
समझदार श्रावक मुलतानी, करइ सदा मिल अकथ कहानी ॥

दयाकुशलके शिष्य धर्म मन्दिरने १७४० म दयादीपिका चौपाई, १७४१ म प्रबोधचिन्तामणि, मोहविवेकरास, १७४२ में परमात्मप्रकाश चौपाई (योगीन्दुदेव)

१ यह ग्रन्थ जसलमेरके डूगरसी भडारमे है।

बनाये। इनमें मुल्तानके वर्धमान, मीठू, सुखानन्द, नेमिदास, धर्मदास, शान्तिदासका उल्लेख है—" अध्यातम सैली मन लाइ, सुखानन्द सुखदाइजी।"

ए श्रावक आदरकरी जोड़ावी चौपई सारी रे।
अध्यातम पडित सुधी ते, थापे यहाँ अधिकारी रे॥

मुनि देवचन्दने मुल्तानके भणसाली मिट्ठूमल्लके आग्रहसे ज्ञानार्णव (शुभचन्द्र) के अनुसार ध्यानदीपिका चौपाईकी रचना स० १७६६ में की। उन्होंने यहाँके श्रावकोंको अध्यातम-श्रद्धाधारी और मिट्ठूमल्लको आतमसूरजध्याता कहा है।[1]

वर्धमानने यद्यपि अपना ग्रन्थ १७४६ में बनाया है, अर्थात् बनारसीदासजीकी मृत्युके ४५ वर्ष बाद, परन्तु उनके 'बनारसी सुपमाय ले,' 'बानारसी प्रसादतें,' 'धरमाचारज धरम गुरु श्रीबनारसीदास' आदि वाक्योंसे ऐसा मालूम होता है कि उनका बनारसीदाससे शायद साक्षात्कार भी हुआ हो। और धर्मगुरु धर्माचार्य तो वे माने ही जाने लगे थे। १७२२ में सुमतिरगने प्रबोधचिन्तामणिमें नवलखा वर्धमानका उल्लेख किया है। तब उससे पहले भी उनका रहना सम्भव है।

हीरानन्द मुकीम

ये ओसवाल वशके थे और अरडक सोनी इनका गोत्र था। इनके पितामहका रनाम साह पूना और पिताका नाम कान्हड़ था। अर्धकथानकके अनुसार इन्होंने चैत्र सुदी २ सवत् १६६१ को प्रयागसे सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए सघ निकाला था और बनारसीदासके पिता खरगसेन इनकी चिट्ठी आनेपर सघमें जाकर शामिल हो गये थे। यात्रासे लौटते समय लोगोंके अनुरोध पर हीरानन्दने जौनपुरमें चार दिनके लिए मुकाम भी किया था। सघसे लौटनेवाले सम्मेद शिखरके पानीके प्रभावसे बहुतसे यात्री मर गये। खरगसेन भी पटना आकर बीमार हो गये और उन्होंने बहुत दुख पाया[2]।

इस यात्राका विवरण खरतरगच्छके तेजसारके शिष्य वीरविजय मुनिने अपनी

१—देखिए, 'मुल्तानके श्रावकोंका अध्यात्म-प्रेम' नामक लेख। जैन सिद्धान्तभास्कर भाग १३, किरण १

२—अर्धकथानक २२३–२४३ पद्य।

सम्मेद-शिखर चैत्यपरिपाटीमें भी किया है और श्री अगरचन्दजी नाहटाने उसे हाल ही प्रकाशित किया है।

इसके अनुसार खरतर गच्छका यात्रासघ माघ सुदी १३ स० १६६० को आगरेसे चला था और शाहजादपुर होता हुआ प्रयाग पहुँचा था। साह हीरानन्द सलीमशाहको प्रसन्नकर उनकी आज्ञासे प्रयागसे बनारस आकर सघमें शामिल हुए थे, जब कि अर्धकथानकके अनुसार चैत्र सुदी २ को हीरानन्दने प्रयागसे सघ निकाला था[2]। इस चैत्यपरिपाटीसे भी मालूम होता है कि हीरानन्द शाह सलीमके कृपापात्र थे और बहुत बड़े धनी थे। उनके साथ अनेक हाथी, घोड़े, पैदल और तुपकदार थे। उनकी ओरसे प्रतिदिन सघका भोज होता था और सबको सन्तुष्ट किया जाता था।

सलीमके गद्दीनशीन होनेपर इन्होंने संवत् १६६७ में उसे अपने घर आमन्त्रित करके बहुत बड़ा नजराना दिया था जिसका आलकारिक वर्णन 'जगन' नामक कविने किया है[3]।—

> सवत् सोलह सतसठे, साका अति कीया।
> मेहमानी पातिसाहदी, करके जस लीया॥
> चुनि चुनि चोखी चुनी, परम पुराने पना,
> कुन्दनकों देने करि लाए घन तावके।
> लाल लाल लाल लागे कुनब (?) बदखशा[4]
> विविध बरन बने बहुत बनावके॥

१—अनेकान्त, वर्ष १४, अक १०।

२ —सघ निकालनेके समयमें यह अन्तर क्यों पडता है, कुछ समझमें नहीं आया।

३—यह कविता श्री मणिलाल बकोरभाई व्यासने 'श्रीमालीओनो ज्ञातिभेद,' नामक गुजराती पुस्तकमें दी है, जो बहुत ही अशुद्ध है। यहाँ हमने उसके कुछ समझमें आने योग्य अश ही शुद्ध करके उद्धृत किये हैं।

४—देश, जहाँके लाल (रत्न) बहुत प्रसिद्ध है।

रूपके अनूप आछे अंब्रल्क आभरन,
देखे न सुने न कोऊ ऐसे राणा रावके।
बावन मतग माते नदजू उचित (?) कीने,
जरीसेती जरि दीने अकुस जड़ावके॥

× × ×

दानके विधानको बखान हौं कहाँ लौं करौ,
वीरनिमें हीरा देत हीरानद जौहरी॥

× × ×

पाइए न जेते जवाहर जगमाझ ढूढे,
जेतो ढेर जौहरी जवाहरको लायौ है।
कसूँबी कुमाचे मखमल जरबाँफ साफ,
झरोखालौं गहलग मगमें बिछायौ है।
जपत 'जगन' विधि आन न बरनि जात,
जहाँगीर आए नद आनद सवायौ है।
करसी (?) छिटकि कहूँ कहूँ उमराउनकी
पेसँकसी पेखते पसीना तन आयौ है॥

आगरेके श्वेताम्बर जैनमदिरके स० १६८८ के प्रतिमालेख (न० १४५४) के 'राजद्वारशोभनीक सोनी श्री हीरानन्द श्री जहाँगीरस्य गृहे' पदसे भी इस बातका सकेत मिलता है कि हीरानन्दने जहाँगीरको अपने घरपर आमन्त्रित किया था। एक और प्रतिमालेख (न० १४५०) इस प्रकार है—"॥ ॐ सिद्धि.॥ सवत् १६६८ ज्येष्ठ सुदि १५ तिथौ गुरुवासरे अनुराधानक्षत्रे ओसवालज्ञातीय अरडकसोनीगोत्रे साह पूनासताने सा० कान्हड भा० मामनीवहू पुत्र सा० हीरानन्देन बिम्ब कारापित प्रतिष्ठित श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचंधनसूरिसताने - श्रीलब्धिवर्द्धनशिष्येन।" एक और प्रतिमालेख (न० १४५७) इस प्रकार है—"स० १६६८ ज्येष्ठ सुदि १५ गुरौ ओसवालज्ञातीयशृगार अरडकसोनीगोत्रे सा० हीरानन्दपुत्र सा० निहालचन्देन श्रीपार्श्वनाथकारिताः

१—चितकबरा। २ बढ़िया मलमल। ३–४ जरीके कपड़े। ६ भेंट उपहार।

सर्परूपाकार श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरिपट्टे श्रीजिनचन्दसूरिणा श्रीआगरा-नगरे।" साह निहालचन्द हीरानन्दके पुत्र थे'।

जगतसेठके पूर्वज हीरानन्दके पौत्र और माणिकचन्दके पुत्र फतेहचन्दका बखान करनेवाले कुछ पद्य मुनि कान्तिसागरने अपने एक लेखमें प्रकाशित किये हैं जिनके रचयिता निहाल नामके एक यति थे, जो बरसों एक साथ रहे थे और उन्होंने पौष वदी १३ स० १७९८ को मकसूदाबादमें ये लिखे थे। इनके अनुसार राजा माणिकचन्दने मुर्शिदाबाद (बंगाल) में अपनी कोठी स्थापित की और फर्रुखसियर बादशाहने उन्हें सेठका पद दिया। उनके इन्द्रके समान पुत्र फतेह-चन्द दिल्ली गये और तब उन्हें दिल्लीपतिने जगतसेठका खिताब दियौ।

१—अर्ध-कथानकके पिछले संस्करणमें हमने हीरानन्द मुकीमको सुप्रसिद्ध जगतसेठका वंशज लिखा था, जो भूल थी। जगतसेठकी पदवी तो सेठ माणिक-चन्दके पुत्र फतेहचन्दको दिल्लीके बादशाहने दी थी और वे हीरानन्दके बाद हुए हैं। इस तरह ये हीरानन्द जगतसेठके पूर्वज हीरानन्द नहीं, किन्तु एक दूसरे ही धनी सेठ थे।

२—देखो, विशालभारत, मार्च १९४७

३ देस बंगालो उत्तम देस, आए माणिकचन्द नरेस।
नाम नगर मकसूदाबाद, करि कोठी कीनौ आबाद ॥ ९
राजा प्रजा और उमराव, फौजदार सूबा नव्वाब।
सहुको माने हुकुम प्रमान, दिल्लीपत दै अतिसन्मान ॥ १०
पातस्याह श्री फर्रुकसाह, सेठ पदस्थ दियौ उच्छाह।
माणिकचद सेठनै नाम, फिरी दुहाई ठामो ठाम ॥ ११
देस बंगालाकेरो धणी, दिन दिन संतति संपति घणी।
जाकै पुत्र सुरिंद समान, प्रगटे फतेहचद सुग्यान ॥ १२
दिली जाइ दिल्लीपत भेट, नाम किताब दियौ जगसेठ।
जगतसेठ जगती अवतार ॥ १३

आनन्दघन

आनन्दघन, घनानन्द, आनन्द नामके अनेक कवि हो गये हैं, उनमेंसे एक अध्यातमी कवि बनारसीदासके समयमें हुए हैं। स्व० मोतीचन्दजी कापड़ियाने अनुमान किया है कि उनका जन्मकाल सं० १६६० और स्वर्गवास १७३० के लगभग होना चाहिए। क्यों कि उपाध्याय यशोविजयका देहोत्सर्ग वि० स० १७४३ मे डभोई (गुजरात) मे हुआ था और उनका आनन्दघनसे साक्षात्कार हुआ था। परन्तु इस साक्षात्कारका अभी तक कोई स्पष्ट और विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिला है। उपाध्यायजीका लिखा हुआ एक अष्टक है जिसमें कई जगह 'आनन्दघन' नाम प्रयुक्त हुआ है और उसी परसे उक्त साक्षात्कारकी कल्पना की गई है। उक्त अष्टकका पहला पद यह है—

> मारग चलत चलत गात आनदघन प्यारे।
> ताको सरूप भूप तिहु लोकतैं न्यारो, वरखत मुखपर नूर।
> सुमति सखीके सग नित नित दौरत, कबहु न होतहि दूर।
> 'जस विजय' कहै सुनो हो आनदघन, हम तुम मिले हजूर ॥ १ ॥

इसमें आनन्दघन शब्द स्पष्ट ही चिदानन्दघन निजात्माको लक्ष्य करके है, जो सुमति या सम्यक्ज्ञानके साथ निरन्तर रहता है, कभी दूर नहीं होता।

दूसरे पदमें 'सुमति सखी और नवल आनदघन मिल रहे गग तरग' कहा है।

तीसरे पदमें कहा है—

> आनद कोउ न पावै, जो पावै सोई आनदघन ध्यावै।
> आनद कौन रूप कौन आनदघन, आनद गुण कौन लखावै।
> सहज सतोष आनद गुग प्रगटत, सब दुविधा मिट जावै।
> 'जस' कहै सोई आनदघन पावत, अतर जोत जगावै।

१—'श्रीआनन्दघनजीना पदो' की गुजराती प्रस्तावना।—महावीर जैन विद्यालय प्रकाशन।

२—डभोईमें यशोविजयजीकी चरणपादुकायें स० १७४३ मे स्थापित की गई हैं।

इसमें स्पष्ट कहा है कि जो आनन्दघन आत्माका ध्यान करता है वही आनन्द पाता है और सहज सतोषमे आनन्द गुण प्रकट होता है। उसके प्रकट होते ही आनन्दघन आत्माकी प्राप्ति होती है और अन्तर्ज्योति जग जाती है।

पॉचवें पदमे कहा है, "आनद कोउ हमें दिखलावै। कहॉ ढूँढत तू मूरख पथी, आनद हाट न विकावै" अर्थात् यह आनन्द या आनन्दघन वाजारमें नहीं मिल्ता है, जो तू उसे ढूँढता फिरता है।

व्रजके भक्त कवियोने आनन्दघन या घनआन द शव्दका व्यवहार अपने इष्टदेव श्रीकृष्णके लिए किया है। आनन्दघनने भी आनन्दघन आत्माके सिवाय कहीं कहीं अपने इष्ट परमात्माके लिए किया है और चि ानन्द आत्माके लिए तो प्रायः ही किया है —

"आनन्दघन प्रभु दास तिहारौ, जनम जनमके सेन ॥" पद १७
"आनदघन प्रभुके घरद्वारै, रहन करूँ गुणधामा ॥" पद २६
"आनदघन चेतनमय मूरति, सेवक जन वलि जाही ॥" २९
"आनदघन प्रभु वाहड़ी झालै, वाजी सघली पालै ॥" ४८

सो पूर्वोक्त 'आनन्द' या 'आनन्दघनसे मिले' जैसे शव्दोंसे किसी आनन्दघन नामक महात्मासे मिलनेका अनुमान करना कष्ट-कल्पना ही मालूम होती है। यदि यशोविजयजी उनसे मिले होते तो इन शव्दोंके साथ कुछ और स्पष्ट सकेत दे सकते थे। यशोविजयजीके लिखे हुए वीसों ग्रन्थ हैं उनमें भी तो वे कहीं न कहीं उल्लेख कर सकते थे।

आनन्दघनके पदोंसे और उनके सम्बन्धमे प्रचलित जनश्रुतियोंसे मालूम होता है कि वे अध्यातमी सन्त थे और यशोविजयजीकी अध्यात्मियोंके प्रति सद्भावना नहीं थी। उन्होंने 'अध्यात्ममतपरीक्षा' और 'अध्यात्ममतखण्डन' नामके दो ग्रन्थ अध्यात्मियोंके विरोधमें ही लिखे हैं।

(आनन्दघनकी वाणी सन्त कवियों जैसी लाग लपेटसे रहित है। (यद्यपि वे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें दीक्षित साधु थे, परन्तु कहा जाता है कि वे लोकससर्ग छोड़कर निर्जन स्थानोंमें पड़े रहते थे और परम्परागत साध्वाचारकी कोई परवा न करते थे। साधु और श्रावकों द्वारा वे उपेक्षित थे) इससे भी इस वातपर विश्वास

नहीं होता कि यशोविजय उपाध्याय जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त श्वेताम्बर साधु उनकी प्रशसा करें या उनसे मिलें।

श्रीअगरचन्द नाहटाके पहले गुटकेमें आनन्दघनजीके ६६ पद लिखे हुए हैं[1] और यह गुटका बनारसीदासजीके साथी कुँवरपाल चोरडियाने स० १६८४-८५ में अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इससे मालूम होता है कि उनकी रचना १६८४ से काफी पहले हो चुकी थी और उनकी प्रसिद्धि हो जानेपर ही अध्यातमी कुँवरपालने उनकी प्रतिलिपि की होगी। इस लिए समय पर विचार करनेसे भी यशोविजयजीके साथ आनन्दघनके साक्षात्कार होनेकी बातमें सन्देह होता है।

यशोविजयजीके जन्म-कालका तो ठीक पता नहीं। परन्तु वह स० १६८० के लगभग अनुमान किया जाता है और १६८८ में उन्हें दीक्षा दी गई थी। कान्तिविजय गणिकी 'सुजलवेलि भास'के अनुसार स० १६९९ मे अहमदाबादमें उन्होंने अष्टावधान किये थे और तभी उनकी योग्यता देखकर विधाध्ययनके लिए किसी धनीके द्वारा बनारस भेजनेका विचार किया गया था। अर्थात् उनके जन्म-काल और दीक्षाकालके पहले ही आनन्दघनके पद रचे जा चुके थे।

श्रीनाहटाजी और कुछ दूसरे लेखकोंने बतलाया है कि आनन्दघनका मूल नाम लाभानन्द था और वे खरतर गच्छके साधु थे। जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है खरतरगच्छके अनेक साधु अध्यातमी हुए हैं।

(कुँवरपालने अपने गुटकोंमें अध्यातमी कवियोंकी—बनारसीदास, रूपचन्द, ज्ञानानन्द, कवीर, सूरदास आदिकी रचनायें सग्रह की हैं और उनकी इसी रुचिका परिचय आनन्दघनके पदोंसे मिलता है। सो आनन्दघन बनारसीदासजीसे कुछ पहलेके अध्यातमी ही जान पड़ते हैं।)

१—इस गुटकेमें आनन्दघनके पदोंके बाद द्रव्यसग्रह, नयचक्र आदि लिखे हुए हैं। नाहटाजी बतलाते हैं कि उन पदोंकी लिपि और आगेकी लिपिमें कुछ भिन्नता है। फिर भी वे पद इस गुटकेके प्रारम्भमें ही लिखे हुए हैं। इससे पीछेके लिखे हुए नहीं जान पड़ते।

४—श्रीमाल जाति

श्रीमाल जातिकी उत्पत्ति श्रीमाल नामक स्थानसे बतलाई जाती है। अहमदाबादसे अजमेर जानेवाली रेलवे लाइनके पालनपुर और आबू रोड स्टेशनसे लगभग ५० मील गुजरात और मारवाड़की सरहदपर प्राचीन 'श्रीमाल'के खण्डहर पड़े हुए हैं और अब उक्त स्थान 'भिन्नमाल' कहलाता है। श्रीमाल-पुराणमें लिखा है कि सतयुगमें विष्णुपत्नी लक्ष्मीदेवीने इसकी स्थापना की थी। सतयुगमें इसका नाम पुष्पमाल, त्रेतामें रत्नमाल, द्वापरमें श्रीमाल और कलियुगमें भिन्नमाल रहा। विमलप्रबन्ध और विमलचरितके अनुसार द्वापरयुगके अन्तमें श्रीमाल नगरमें श्रीमाल जातिकी स्थापना हुई और श्रीदेवी इस जातिकी कुल देवी मानी गई। एक श्वेताम्बर जैनकथाके अनुसार श्रीमल्ल राजाके नामसे उसके नगरका नाम श्रीमाल पड़ा था। इसी तरह एक और कथाके अनुसार गौतम स्वामीने उस राजाको जैन बनाकर उसके नामसे श्रीमाल कुल स्थापित किया। लक्ष्मी श्रीमल्ल राजाकी पुत्री थी और वह आबूके परमार राजाको ब्याही गई थी। परन्तु ये सब पौराणिक कहानियाँ हैं, इनमें कुछ अधिक तथ्य नहीं मालूम होता।

बनारसीदासजी इनमेंसे किसी भी कहानीकी कोई चर्चा नहीं करते और वे कहते हैं कि रोहतकके निकटके बिहोली गाँवके राजवंशी राजपूत गुरुके उपदेशसे जैन हो गये, जो णमोकार मन्त्रकी माला पहिनकर श्रीमाल कहलाये और बिहोलीके राजाने उनका गोत्र बिहोलिया ठहराया। इसमें इतना तो ठीक मालूम होता है कि बिहोली गाँवके कारण इनका गोत बिहोलिया हुआ। जैनोंके अधिकांश गोत्रोंके नाम स्थानोंके कारण ही रक्खे गये हैं, परन्तु समग्र श्रीमाल जातिके उत्पत्तिस्थानके विषयमें वे कुछ नहीं कहते। अधिक संभव यही है कि भिनमाल या श्रीमालसे श्रीमाल जाति निकली हो। हुएनसंगके समयमें यह नगर गुर्जर देशकी राजधानी था।

श्रीमाल जातिकी जो गोत्रसूची मिलती है, उसमें १२५ के करीब गोत्रोंके नाम हैं, जिनमेंसे अर्धकथानकमें कूकड़ी, खोबरा, चिनालिया, ढोर,

बदलिया, बिहोलिया, ताँत्री, मोठिया, और सिंघड़ गोत्रके श्रीमालोंका उल्लेख किया गया है।

श्रीमाल धनी और सम्पन्न जाति है। गुजरात और बम्बई प्रान्तमें इसकी आबादी अधिक है। राजपूतानेमें श्रीमाल वैश्योंके अतिरिक्त श्रीमाल ब्राह्मण और श्रीमाल सुनार भी हैं। वैश्योंमें जैन और वैष्णव श्रीमाल दोनों हैं। जैनोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी ही अधिक हैं। खानदेशके धरणगांव और पंजाबके मुल्तान आदि स्थानोंमें श्रीमालोंके कुछ घर दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी भी रहे हैं।

गुजरात और बम्बई प्रान्तके श्रीमालोंमें किसी भी गोत्रका अस्तित्व नहीं है। इस विषयमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि " गुजरातमें गोत नहीं, और मारवाड़में छोत (छूत) नहीं। " यहाँ ओसवाल पोरवाड़ आदि जातियोंमें भी गोत्र नहीं है। अपने अपने धन्धोंसे ही वे अपना परिचय देते हैं, जैसे घिया (घीवाले) दोसी (दूष्य या कपड़ेके व्यापारी) नाणावटी (नाणा या सिक्केके व्यापारी सराफ), जवेरी (जौहरी) आदि। परन्तु बनारसीदासजीने आगरा, जौनपुर, खैराबाद आदिके श्रीमालोंका उल्लेख गोत्रसहित किया है। जान पड़ता है ये लोग वहाँ पहलेसे बसे हुए होंगे और मारवाड़की ओरसे उस ओर गये होंगे जहाँ कि नामके साथ गोत्र अवश्य रहता है।

जहाँ तक हम जानते हैं वैश्योंकी वर्तमान जातियाँ दसवीं शताब्दिसे पहलेकी नहीं हैं। श्रीमाल जातिका भी कोई उल्लेख इससे पहलेका नहीं मिलता। सतयुग द्वापर या त्रेतामें जातियोंकी उत्पत्तिसम्बन्धी कथाओंमें कोई ऐतिहासिकता नहीं है।

बनारसीदासजीके बस्ता या वस्तुपाल, जेठू या जेठमल्ल मूल्दास, पर्वत, कुँअरजी, अरथमल आदि पूर्व पुरुषोंके नाम और छजमल, धनमल, चापसी, जसा, धरमसी आदि रिश्तेदारोंके नामोंसे भी श्रीमाल वंशकी उत्पत्ति पंजाबमें नहीं, भिन्नमालमें ही ठीक बैठती है। बादशाहों, सूबेदारों, नवाबोंके कारबारमें सहायक होनेसे यह जाति उत्तर भारत, बिहार, बंगाल तक फैल गई थी।

५—जौनपुरके बादशाह

बनारसीदासजीने अपने पुरखोंसे सुनसुनाकर जौनपुरके नौ बादशाहोंके नाम लिखे हैं[1]। महापंडित राहुल सांकृत्यायनने लिखा है[2] कि मुहम्मद तुगलक-का ही दूसरा नाम जौनाशाह था और उसीके नामसे यह शहर बसाया गया। हो सकता है कि गोमतीके किनारे पहले भी कोई नगर रहा हो जिसका नाम मालूम नहीं। मुन्शी देवीप्रसादजीने फारसी तवारीखोंके आधारसे लिखा है[3] कि मुहम्मद तुगलकके कोई बेटा नहीं था, इसलिए उसके काका सालार रज्जबका बेटा फीरोज शाह बारबक बादशाह हुआ। इसने सं० १४२९ में बंगालसे लौटते हुए गोमतीके तीरपर एक अच्छी समचौरस जमीन देखकर यह शहर बसाया और उसका नाम अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलकके असली नाम मलक जौनाके नामसे जौनपुर रखा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिक जौनाको यह कहते हुए सुना था कि शहरका नाम मेरे नामपर रखना। दूसरे बादशाहका नाम बनारसीदासने बबक्कर शाह लिखा है, वह फिरोजशाह बारबुक है। तीसरा जो सुरहर सुल्तान लिखा है वह ख्वाजाजहाँ है जिसका नाम मलिक सरवर था। सरवर ही सुरहर हो गया है। चौथा जो दोस्त मुहम्मद लिखा है वह मुबारिक शाह है जिसका नाम करनफल था। शायद जौनपुरवाले उसे दोस्त मुहम्मद कहते थे। पाँचवाँ जिसको शाह निजाम लिखा है उसका पता मुबारक शाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता। छट्ठा जो शाह बिराहिम लिखा है वह इब्राहीमके बेटे महमूद और पोते मुहम्मद शाहके पीछे हुआ था। बीचके दो बादशाहोंके नाम नहीं दिये। आठवाँ जो गाजी लिखा है वह सैयद बहलोल लेदी है। शाह हुसैनके पीछे यही जौनपुरका मालिक हुआ। नवाँ बख्या सुलतान बहलोलका बेटा बारबुक हो सकता है।

---

१ —अर्धकथानक पद्य ३२-३७।

२ —देखो, मई १९५७ की सरस्वतीमें 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य लेख।'

३ —देखो, बनारसीविलास (प्रथम संस्करण सन् १९०५ पृ० २८, २८)

महापण्डित राहुल साकृत्यायनने मई १९५७ की सरस्वतीमें 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' शीर्षक एक लेख लिखा है। उसमें जौनपुरके सम्बन्धमें कुछ विशेष जानने योग्य बातें लिखी हैं, जो यहाँ दी जाती हैं—

"जौनपुरकी बादशाहतमे हिन्दू-मुसलमान दोनोंका बराबरीका दर्जा था। उसने वहाँकी संस्कृतिको नही भुलाया जिसमें वह साँस ले रही थी। भारतीय संगीतको उसने प्रश्रय दिया। अवधी भाषा और साहित्यका समर्थन किया जिसका सुबूत यह है कि अवधीके महाकवि मझन कुतुबन और जायसी जौनपुर दरबारके ही थे जिन्होंने मुसलमान होते हुए भी देशकी भाषा और शैलीको अपनाया।

जौनपुरका व्यापार

जौनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो सही है। क्यों कि जौनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था, और जब वहाँ बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली बना हुआ था, और चार कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जौनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जौनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परंतु अब तो वह जौनपुर पाँच ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जौनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुगराफिए (भूगोल) जौनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि अकबर बादशाहने गरीबोंकी आँखोंका इलाज करनेके लिए एक हकीमको भेजा था, जो गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था। तो भी हजार पन्द्रह सौ रुपए रोजकी उसकी आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि आज तो पाँचसौका ही सुरमा बिका है, तब उसने एक बड़ी आह भरी और कहा—हाय! जौनपुर वीरान (ऊजड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

६—चीन कुलीच खाँ

यह इन्दूजानका रहनेवाला जानी कुरबानी जातिका तुर्क था। बादशाह अकबरने इसे स० १६२९ में सूरतकी किलेदारी, स० १६३५ में गुजरातकी सूबेदारी और फिर १६३७ में वजारत दी। १६४० में वह गुजरात भेजा गया और १६४६ में राजा तोडरमल्लके मरने पर उसे दीवान बना दिया गया, जो १६५ तक रहा। इसी बीच १६५८ में जौनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। स० १६५३ में शाहजादा दानियाल इलाहाबादके सूबेमें भेजा गया, तो कुलीच खाँको उसका अतालीक (शिक्षक) बनाकर साथ रख दिया। उसकी बेटी शाहजादेको व्याही थी।

स० १६५६ में आगरेकी और १६५८ मे लाहोर तथा काबुलकी सूबेदारी उसे दी गई। १६६२ में बादशाह जहाँगीरने उसे गुजरातमें बदल दिया और १६६४ में लाहोर भेज दिया। इसके बाद १६६९ में वह काबुल और अफगानिस्तानके बन्दोबस्त पर मुकर्रर होकर गया और वहाँ स० १६७८ में मर गया।

एक तो स० १६५५ में जौनपुर कुलीच खाँकी जागीरमें ही था और दूसरे स० १६५३ में उसकी तैनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी जिसके नीचे जौनपुर था। जहाँगीरके समयके मोतमित खाँके लेखोंका जो सार मिला है उससे मालूम होता है कि जौनपुरका सूबेदार नबाब कुलीच खाँ प्रजापीड़क था। उसकी शिकायत आने पर बादशाहने उसे वापिस बुलाया और यदि वह रास्तेमें ही न मर जाता तो उसे कड़ा दण्ड मिलता। अकबर और जहाँगीरने कभी किसी अत्याचारीकी रियायत नहीं की।

७—लालाबेग और नूरम

तुजक जहाँगीरीकी भूमिकामें जो हाल जहाँगीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे अर्धकथानकमें लिखे हुए जौनपुरके विग्रहका पता लग जाता है।

संवत् १६५५ में अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेको गये और अजमेरका सूबा शाह सलीमको जागीरमें देकर रानाको सर करनेका हुक्म दे गये। शाह कुलीचखाँ महरम और राजा मानसिंहकी नौकरी इनके पास बोली गई। बंगालेका सूबा जो राजाके पास था, उसे राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको सौंपकर शाही खिदमतमें रहने लगे।

शाह सलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड़ गये थे, और सिपाहियोंको पहाड़ोंमें भेजकर रानाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे।

खुशामदी और स्वार्थी लोग इनके कान भरा करते थे कि बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएक हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी उसे बगैर लिये वापस होनेके नहीं। इसलिए हजरत जो यहाँसे लौटकर आगरेके परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी जिसकी खबरें आ रही हैं और जो बगैर गये राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजा मानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उन्हींने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस लिए उन्होंने भी हाँमें हाँ मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दे दी।

शाह सलीम इन बातोंसे रानाकी मुहीम अधूरी छोड़कर इलाहाबादको लौट गये। जब आगरेमें पहुँचे तो वहाँका किलेदार कुलीचखाँ पेशवाईको आया। उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकड़ लेनेसे आगरेका किला जो खजानेसे भरा हुआ है, सहजहीमें हाथ आता है। मगर इन्होंने कबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबादका रास्ता लिया। इनकी दादी हौदेमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिए किलेसे उतरी ही थी कि ये नावमें बैठकर जल्दीसे चल दिये और वे नाराज होकर लौट आईं।

सावन सुदी ३ संवत् १६५७ को शाह सलीम इलाहाबादके किलेमें पहुँचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर उन्होंने अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। बिहारका सूबा कुतुबुद्दीनखाँको दिया। जौनपुरकी सरकार लालाबेगको, और कालपीकी सरकार नसीम बहादुरको दी। धनसूर दीवानने तीन लाख रुपएका

खजाना विहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया-था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाह सलीमने जो लालावेगको जौनपुर दिया था, उसे नूरम सुल्तान लेने नहीं देता होगा, जिसपर शाह सलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरमवेगके हाजिर होनेपर लालावेगको वहाँ रख आया होगा।

८—गाँठका रोग या मरी (प्लेग)

वि० स० १६७३ में आगरेमें गाँठका रोग फैलनेका अर्धकथानक (५७२-७६) में जिक्र किया गया है, उसके सम्बन्धमें नीचे लिखे प्रमाण और मिले हैं—

१ — जहाँगीरनामेमें बादशाह जहाँगीरने अपने चौदहवें वर्षके विवरणमें लिखा है, "वैशाख वदी १ मगलवार स० १६७५ की रातको बादशाहने अहमदाबादकी ओर बाग फेरी। गर्मीकी तेजी और हवाके बिगड़ जानेसे लोगोंको बहुत कष्ट होने लगा था, इसलिए राजधानीको जानेका विचार छोड़कर अहमदाबादमें रहना स्थिर किया। क्योंकि गुजरातकी बरसातकी बहुत प्रशसा सुनी थी। अहमदाबादकी भी बहुत बड़ाई होती थी। उसी समय यह भी खबर आई कि आगरेमें फिर मरी फैल गई है और बहुतसे आदमी मर रहे हैं। इससे आगरे न जानेका विचार और भी स्थिर हो गया।

ज्योतिषियोंने माघ सुदी २ स० १६७५ को राजधानीमें प्रवेश करनेका मुहूर्त निकाला था। परन्तु इन दिनों शुभचिन्तकोंने अनेक बार प्रार्थना की कि ताऊनका रोग आगरेमें फैला हुआ है। एक दिनमें न्यूनाधिक १०० मनुष्य काँख तथा जाँधके जोड़ या गलफड़ेमें गिलटी उठकर मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है। जाड़ेमें यह रोग प्रबल हो जाता है और गर्मीमे जाता रहता है। अजब बात यह है कि इन तीन वर्षोंमें आगरेके सब गाँवों और कसबोंमें तो फैल चुका है परतु फतहपुरमें बिलकुल नहीं पहुँचा। अमनाबादसे फतहपुर ढाई कोस है, जहाँके मनुष्य मरीके डरसे घरबार छोड़कर दूसरे गाँवोंमें चले गये हैं। इस

लिए विचारपूर्वक यह बात ठहराई गई कि इस मुहूर्तपर फिर प्रवेश करूँ और जब रोग धीमा पड़ जावे तब दूसरा मुहूर्त निकलवाकर आगरे जाऊँ।

मृत आसफखाँकी बेटीने, जो खान आजमके बेटे अब्दुल्लाखाँके घरमे है, बादशाहसे यह विचित्र चरित्र ताऊनके विषयमे कहा और उसके सत्य होनेपर बहुत जोर दिया। इससे बादशाहने वह घटना तुजुकमें लिख ली।

"उसने कहा था कि एक दिन घरके आँगनमें एक चूहा दिखाई दिया। वह मतवालोंकी भाँति गिरता पड़ता इधर-उधर दौड रहा था। उसे कुछ सुझाई न देता था। मैंने एक लौण्डीसे इशारा किया। उसने उसकी पूँछ पकड़कर बिल्लीके आगे डाल दिया। पहले तो बिल्लीने बडे मोदसे उछलकर उसको मुँहमें पकड़ा किन्तु पीछे घिन करके तुरन्त छोड़ दिया। बिल्लीके चेहरेपर धीरे-धीरे मादगीके चिह्न दिखाई देने लगे। दूसरे दिन वह मरण-प्राय हो गई। तब मेरे मनमें आया कि थोड़ा-सा तिरियाक-फारूक (विष उतारनेवाली एक औषध) इसको देना चाहिए। जब उसका मुँह खोला गया तो देखा कि उसकी जीभ और तालू काला पड़ गया था। तीन दिन बुरा हाल रहा। चौथे दिन उसे कुछ सुध आई। फिर लौण्डीको ताऊनकी गाँठ निकली। उसकी जलन और पीड़ासे वह सुध भूल गई। रग बदलकर पीला और काला हो गया। प्रचण्ड ज्वर चढा। दूसरे दिन वह मर गई। इसी प्रकार सात-आठ मनुष्य उस घरमें मरे और रोगग्रस्त हुए। तब मैं उस स्थानसे निकलकर बागमे चली गई। वहाँ फिर किसीके गाँठ नहीं निकली, पर जो पहले बीमार थे वे नहीं बचे। आठ-नौ दिनमें सत्रह मनुष्य मर गये। उसने यह भी कहा कि जिनके गाँठें निकली हुई थी, वे यदि किसीसे पानी पीने या नहानेको माँगते थे तो उसको भी यह रोग लग जाता था। अन्तको ऐसा हुआ कि मारे डरके कोई उनके पास नहीं जाता था।"

२—बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर 'सर जेम्स केम्बले' ने 'अहमदाबाद गेजेटियर' में कुछ दिन पहले इस विषयसम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं। उन्होंने लिखा है कि "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० स० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारभ ई० स० १६११ में पजाबसे निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहाँके तत्कालीन बादशाह

जहाँगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिए आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोड़े ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। साराश यह कि अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र आठ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहाँ जहाँ रोगका उपद्रव होता था, चूहोंकी सख्यामें वृद्धि होती थी।"

३—उस समय हिन्दुस्तानमें जो यूरोपियन रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फँसना पड़ा था। वह काले और गोरोंके साथ समदर्शीकी नाई तब भी एक-सा वर्ताव करता था। इस विषयमें मि० टेरी नामक ग्रथकारने लिखा है, "नौ दिनके अरसेमें सात अँग्रेजोंकी मृत्यु हो गई। प्लेगमें फँसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी चौबीस घटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो बारह घटेमें ही रास्ता पकड लिया।" इतिहाससे पता लगता है कि सन् १६८४ में औरगजेब बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने कहर मचाया था।

४—बनारसीदासजीके नाटक समयसार ग्रथमें भी प्लेगका उल्लेख मिलता है। उसमें बधद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिए कहा है—

"धरमकी बूझी नाहिं उरझे भरममाहिं,
नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं। ४२"

उस समय प्लेगको मरी कहते थे। यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु चूहोंका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण है, हैजेका नहीं।

९—मृगावती और मधुमालती

जब बनारसीदासजी आगरेमे अपनी सब पूँजी खो चुके थे और बिल्कुल खाली हाथ थे, तब समय काटनेके लिए वे मधुमालती और मृगावती नामक दो

पोथियोंको पढा करते थे और उन्हें सुननेके लिए वहाँ दस बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे। ये दोनो ही प्रेम-काव्य हैं और दोनोंके ही कर्त्ता सूफी हैं।

मृगावती—इसके कर्त्ता कुतबन चिश्ती वशके शेख बुरहानके शिष्य थे और जौनपुरके बादशाह हुसेन शाह (शेरशाहके पिता) के आश्रित थे। पद्मावतके कर्त्ता मलिक मुहम्मद जायसी इनके गुरुभाई थे। मृगावती चौपाई-दोहाबद्ध है और हिजरी सन् ९०९ (वि० स० १५५८) में लिखी गई थी। इसमें चन्द्रनगरके राजा गणपतिदेवके राजकुमार और कचनपुरके राजा रूपमुरारिकी कन्या मृगावतीकी प्रेम-कथाका वर्णन है। इस कहानीके द्वारा कविने प्रेम-मार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप दिखलाया है। बीच बीचमे सूफियोंकी शैलीपर बड़े सुन्दर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं[1]। इसकी एक सम्पूर्ण प्रति अभी हाल ही फतेहपुर जिलेके एकलड़ा गॉवसे डा० रामकुमार वर्माको मिली है।

हाल ही मालूम हुआ है कि काशी नागरीप्रचारिणी सभाके कलाभवनमे मझनकी मधुमालतीकी दो प्रतियाँ सग्रह की गई हैं जिनमें एक उर्दू लिपिमे है और दूसरी नागरीमें। सभा इसको शीघ्र ही प्रकाशित कर रही है।

मधुमालती—इसके कर्त्ता मझन नामके कवि हैं परन्तु उनके सम्बन्धमे अभी तक और कुछ भी मालूम नहीं हुआ। स्व० प० रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' में लिखा है कि "मझनकी रची मधुमालतीकी एक खण्डित प्रति मिलती है जिससे इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयताका पता लगता है। मृगावतीके समान मधुमालतीमें भी पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के उपरान्त एक दोहेका क्रम रक्खा गया है। पर मृगावतीकी अपेक्षा इसकी कल्पना विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत तथा हृदयग्राही। आध्यात्मिक प्रेमभावकी व्यजनाके लिए प्रकृतिके भी अधिक सुन्दर दृश्योंका समावेश मझनने किया है[2]।" जायसीने अपने पद्मावतमे अपने पूर्ववर्ती चार प्रेमकाव्योंका उल्लेख किया है जिनमें मधुमालती भी है—

१-२—देखो प० रामचन्द्र शुक्लकृत हि० सा० का इतिहास पृ० १०६-७ (१९९९ का सस्करण)

मुग्धावती, मृगावती, मधुमाल्ती और प्रेमावती। पद्मावतका रचनाकाल वि० स० १५९५ है। उसमान कविकी चित्रावलीमें भी जो वि० स० १६७० की रचना है— मधुमाल्तीका उल्लेख है[1]।

चतुर्भुजदास निगमकी बनाई हुई 'मधुमालती' नामकी एक पुस्तक और भी है जिसकी एक अशुद्ध प्रति अभी कुछ समय पहले मुझे बम्बईके अनन्तनाथजीके मन्दिरमे देखनेको मिली[2]। इसकी रचना ७९६ दोहा चौपाइयोंमें हुई है। यह भी एक प्रेमकथा है परन्तु इसमें राजनीतिकी चरचा अधिक है। इसकी प्रशसामें कविने लिखा है।—

> वनसपतीमें अन्न फल, रस मैं . . . सत।
> कथामाहिं मधुमाल्ती, छै रितमाहिं वसत ॥ ८१ ॥
> लतामाहि पनग लता,. . . . घनसार।
> कथामाहिं मधुमाल्ती, आभूषणमै हार ॥ ८२ ॥

निगमकी इस मधुमाल्तीकी प्रतिका लिपिकाल स० १७९८ है।

१०—छत्तीस पौन और कुरीं

अर्धकथानक (पद्य २९) में जौनपुरमे बसनेवाली जिन ३६ जातियोंके नाम दिये हैं और जिन्हें छत्तीस पउनियाँ कहा है, वे शूद्र गिनी जानेवाली पेशेवर जातियाँ हैं। पदमावतमे जायसीने भी छत्तीस कुरी बतलाई हैं, पर वे केवल शूद्रोंकी ही जातियाँ नहीं हैं, उनमे ब्राह्मण, अग्रवाल, बैस, चदेले, चौहान आदि ऊँची जातियाँ हैं और कोरी, सुनार, कलवार, कायस्थ, पटुवा, बरई आदि शूद्र जातियाँ भी—

> भै भहान पदुमावति चली। छत्तीस कुरी भै गोहने भली ॥ १
> भै कोरी सग पहिरि पटोरा। बाँभनि ठाँउ सहस अँग मोरा ॥ २
> अगरवारिनि गज गवन करेई। बैसनि पाव हसगति देई ॥ ३
> चदेलिनि ठवँकन्ह पगु ढारा। चली चौहानी होइ झनकारा ॥ ४

१—डा० वासुदेवशरणने मधुमाल्तीका समय ई० स० १५४५ बतलाया है।
२—इसका समय सोलहवीं सदी है।

चली सोनारि सोहाग सुहाती । औ कलवारि पेम मदमाती ॥ ५
बानिनि भल सैंदुर दै माँगा । कैथिनि चली समाइ न आँगा ॥ ६
पटुइनि पहिरि सुरँग तन चोला । औ बरइनि मुख सुरस तँबोला ॥ ७
चली पवनि सब गोहने, फूल डालि ले हाथ ।
बिस्वनाथकी पूजा, पदुमावतिके साथ ॥ २०।३

पदमावतमें ही छत्तीसो जातियोंके प्रत्येक घरमें पद्मिनी स्त्रियाँ बतलाई हैं —

घर घर पुदुमिनि छतिसौ जाती ।
सदा बसन्त दिवस औ राती ॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी ।
तेहि तेहि बरन सुगध सो नारी ॥

मध्यकालमें राजपुत्रोंके भी ३६ कुलोंकी सख्या प्रसिद्ध हो गई थी । इसकी सूची ज्योतिरीश्वर ठक्कुरने (१४ वीं शतीका प्रथम भाग) अपने वर्णरत्नाकर पृ० ३१ मे दी है–डोड, पमार, बिन्द, छोकोर, छेवार, निकुभ, राओल चाओट, चागल, चन्देल, चौहान, चालुकि, रठउल, करचुरि, करम्ब, बुधेल, बीरब्रह्म, वदाउत, वएस, वछोम, वर्धन, गुडिय, गुहिजउत, तुरुकि, सहिआउत, शिषर, सूर, खातिमान, सहरओट, भाड, भद्र, भज्जमटि, कूढ, खरसान, क्षत्रीशओ कुली राजपुत्र चलुअइ ।

कुरी शब्द कुलका ही वाचक जान पड़ता है, उसमे नीच ऊँचका भेद नहीं है । इसलिए कुरीमें ऊँच नीच दोनों तरहकी जातियाँ गिनाई गई हैं । राजपुत्रों या राजपूतोंके कुल भी एक तरहसे कुरी हैं ।

११–जगजीवन और भगवतीदास

इधर भगवतीदास और जगजीवनके सम्बन्धमें कुछ नई बातें मालूम हुई हैं । प० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीने प० हीरानन्दकृत समवसरणविधानका आद्यन्त अश लिखकर भेजा है, जिसकी रचना सावन सुदी ७ बुधवार स० १७०१में हुई थी और जो जयपुरके लूणकरणजी पाड्याके मन्दिरके गुटका न० १४४ म है । उसके निम्न पद्य उपयोगी हैं—

अब मुनि नगरराज आगरा, सकल सोभ अनुपम सागरा ।
साहजहाँ भूपति है जहाँ, राज करै नयमारग तहाँ ॥ ७८ ॥
ताकौ जाफरखा उमराउ, पचहजारी प्रगट कराउ ।
ताकौ अगरवाल दीवान, गरगगोत सब विधि परधान ॥ ७९ ॥
सघही अभैराज जानिए, सुखी अधिक सब करि मानिए ।
वनितागण नाना परकार, तिनमैं लघु मोहनदे सार ॥ ८० ॥
ताकौ पूत पूत-सिरमौर, **जगजीवन** जीवनकी ठौर ।
सुदर सुभगरूप अभिराम, परम पुनीत धरम-धन-धाम ॥ ८१ ॥
काल-लबधि कारन रस पाइ, जग्यौ जथारथ अनुभौ आइ ।
अहनिसि ग्यानमडली चैन, परत, और सब दीसैं फैन ॥ ८२ ॥
ग्यानमडली कहिए कौन, जामैं ग्यानी जन परनौंन ।
हेमराज पडित परवीन, **रामचद** ग्यायक गुनलीन ॥ ८३ ॥
सघही **मथुरादास** सुजान, प्रगट **भवालदास** सुजवान (?) ।
स्वपरप्रकास **भगौतीदास**, इत्यादिक मिलि करैं विलास ॥ ८४ ॥
स्यादवाद जिन आगम सुनैं, परम पचपद अहनिसि धुनैं ।
भेदग्यान वरनत इक रोज, उपज्यौ जिनमहिमारस चोज ॥ ८५ ॥
तब ही पडित **हीरानद**, विकट मोहरस-मगन सुछद ।
देखि कह्यौ अपनौ ऊमहौ, कथा है जिन विभूति जो कहौ ॥ ८६ ॥
तिनसौं कही साधु जे साधु, चहिए इहू भव्य आराधु ।
अरु जे निकट भव्य आतमा, ते साधत नित परमातमा ॥ ८७ ॥
जिनविभूतिका जो अनुभौन, करैं मुख्य जद्यपि है गौन ।
निहचै मारगकी इह गैल, मन निरमल ह्वै साधै सैल ॥ ८८ ॥
पर इतनी मति हममैं कहा, विधि वरनवै जहाकी तहा ।
अरु जो तुम सहायसौं कहै, तो अचरज कोऊ नहिं लहै ॥ ८९ ॥
इतनी सुनि जगजीवन जबै, आदिपुरान मगाया तबै ।
इसै देखि तुम कहौ निसक, हम जानैं ह्वैहै निकलक ॥ ९०
इतना कारन लहि करि **हीर**, मनमैं उद्दिम धरै गहीर ।
समोसरन कृत रचनाभेद, जथापुरान समस्त निवेद ॥ ९१
एक अधिक सत्रहसौ समैं, सावन सुदि सातमि बुध रमैं ।
ता दिन सब सपूरन भया, समवसरन कहवत परिनया ॥ ९२

इससे दो बातोपर प्रकाश पड़ता है—एक तो यह कि सवत् १७०१ मे आगरेमे ज्ञाताओंकी एक मडली या अध्यात्मियोंकी सली थी, जिसमें रुघवी जगजीवन, प० हेमराज, रामचन्द, सघी मथुरादास, भवालदास, और भगवतीदास थे। भगवतीदासको 'स्वपरप्रकाश' विशेषण दिया है। ये भगवतीदास वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख बनारसीदासजीने नाटक समयसारमे निरन्तर परमार्थ चर्चा करनेवाले पचपुरुषोंमें किया है। हीरानन्दजीने अपने दूसरे छन्दोवद्ध ग्रन्थ पचास्तिकाय (१७११) मे भी घनमल और मुरारिके साथ इन्हीका ग्यातारूपसे उल्लेख किया है।

स० १६५५ के फतेहपुरनिवासी बासूसाहुके पुत्र भगवतीदास दूसरे ही हैं और इनसे पहलेके हैं।

दूसरी बात यह कि जाफर खॉ बादशाह शाहजहॉका पॉच हजारी उमराव था जिसके कि जगजीवन दीवान थे और जगजीवनके पिता अभयराज सर्वाधिक सुखी सम्पन्न थे। उनके अनेक पत्नियॉ थीं जिनमेंसे सबसे छोटी मोहनदेसे जगजीवनका जन्म हुआ था।

पूर्वोक्त गुटके (न० १४४) मे ही भगवतीदासके दो पद मिले हैं—

सोइ गवाई रातडी, दिन लालच खोया।
क्या ले आया ले चल्या, क्या घरमहि तेरा॥
परधन पछी ज्यौं मिल्या, निसि बिरछ बसेरा।
सरवर तजि हसा चल्या, फिरि कियउ न फेरा॥ १
कनक कामिनील्यौं रच्या, सोइ जनमु गवाया।
पिया सुखरसि बसि परउ, आपण डहकाया॥
बालू पेरत रैन गई, फिरि तेलु न पाया॥ २
माया सगमु दुख सहै, फिरि गहत न लाजै।
ज्यौं सुवटा नलिनी फधइ, तिस छाड़ि न भाजै॥
पर नारी चोरी बुरी, अपजस जगि बाजै॥ ३
जीवदया भ्रम पालिए, मुख झूठ न कहिए।
कीड़ी कुजर सम गिनौ, ज्यौं सिवपुर लहिए॥
दास भगोती यौं कहै, व्रत सजमु गहिए॥ ४

दूसरा पद 'राजुल बीनती' है जिसके अन्तमें कहा है —

राजमती सुरपुर गई प्रभु, नेमि कियौ शिववास ।
मोतीहट जोगिनपुरे प्रभु, भणत भगौतीदास ॥ ७

इससे मालूम होता है कि यह योगिनीपुर या दिल्लीके मोतीहाटमें रहते थे और कोई तीसरे ही भगवतीदास थे, अध्यातमी नहीं ।

१२--रूपचन्दकृत पदसंग्रहमें आनन्दघन

अभी अभी मुझे अपने संग्रहमें स्व० गुरुजी (पन्नालालजी बाकलीवाल) के हाथका लिखा हुआ 'रूपचन्दकृत पदसंग्रह' मिला, जो उन्होंने जयपुरसे (सन् १९१०) भेजा था। इसमें राग आसावरी, वसन्त, टोडी, विभास, बिलावल, विहागडो गूजरी, केदारो, कल्यान, मारग, नट, टोडी जौनपुरी, श्रीराग, कानरो, आसा और मारग, इन रागोंके २२ गीत हैं और इनके बाद जकडीसंग्रह है। यह जकडीसंग्रह उसी समय 'परमार्थ-जकडीसंग्रह' नामसे छपा दिया गया था।

इनमेंके १७ गीतोंके अन्तिम चरणोंमें रूपचन्दका नाम है, पर शेष पाँचमें काजी महम्मद, रामानन्द, राज, पदमकीरति, और आनन्दघनके नाम दिये हैं। इससे मालूम होता है कि ये पाँचों कवि उनके पूर्ववर्ती या समकालीन हैं और सभी अध्यातमी हैं। उनका संग्रह स्वयं रूपचन्दजीने अपने पदोंके साथ कर लिया है।

इनमेंसे राज या राजसमुद्र और आनन्दघनके पद नाहटाजीके भेजे हुए गुटकोंमें भी रूपचन्दजीके पदोंके साथ लिखे हुए मिले हैं। रामानन्द वैष्णव सन्त मालूम होते हैं। पदमकीर्ति कोई भट्टारक और काजी मुहम्मद कोई सूफी हैं।

आनन्दघनका पद यह है—

रे घरियारी बाउरे, मत घरी बजावै।
नर सिर बाँधै पाघरी, तू क्या घरी बजावै ॥ रे घ०
केवल काल-कला कले, पै अकल न पावै।
अकल कला घटमैं धरी, मोहि सो घरी भावै ॥ रे घ०

आतम अनुभव रसभरी, तामैं और न भावै ।
आनदघन सो जानिए, परमानद गावै ॥ रे घ०

स० १६९३ में बनारसीदासने नाटक समयसारमे अपने पाँच साथियोंमेंसे रूपचन्दजीको एक बतलाया है, अर्थात् उस समय वे जीवित थे, परन्तु प० हीरानन्दने अपने समवसरणविधानमे आगरेके ज्ञाताओंके जो नाम दिये हैं उनमें भगवतीदास, हेमराज, जगजीवनके नाम तो हैं, परन्तु रूपचन्दका नाम नही है और यह विधान सवत् १७०१ में रचा गया है । इससे सभव है कि रूपचन्दजी उस समय नही रहे हो ।

(रूपचन्दजीने आनन्दघनका एक पद सग्रह किया है, इससे अनुमान किया जा सकता है कि वे उनके पूर्ववर्ती हैं और कॅवरपाल अपने पहले गुटकेमें स० १६८४ के लगभग आनन्दघनके ६५ पदोंका सग्रह कर सकते हैं ।)

यशोविजयजी और आनन्दघनका साक्षात्कार होनेकी बात इससे भी सन्देहास्पद हो जाती है ।

(राज या राजसमुद्र भी रूपचन्द्रके पूर्ववर्ती हैं । इनकी उपदेशबत्तीसी दूसरे गुटकेमे सग्रहीत है ।)

१३—भ० नरेन्द्रकीर्तिका समय

भूमिकाके पृष्ठ ४९-५३ में आमेरके भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका जिक्र है जिनके समयमें तेरापथकी उत्पत्ति हुई । वखतरामजीने सवत् १७७३ और चन्द्रकविने सवत् १६७५ उत्पत्तिकाल बतलाया है । पर दोनोंने ही अमरा भौंसाके पुत्र जोधराज गोदीकाको सभासे निकाल देनेकी बात लिखी है और जोधराज गोदीकाने अपने दो ग्रन्थ —सम्यक्त्वकौमुदी और प्रवचनसार—स० १७२४ और १७२६ में लिखे हैं, साथ ही तेरापन्थका भी उल्लेख किया है, इसलिए भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिका समय भी लगभग यही होना चाहिए ।

अभी वीरवाणी वर्ष ७ अक १४-१५ मे प्रकाशित हुए श्री अनूपचन्दजी न्यायतीर्थके लेख (जयपुरके जैनमन्दिरोंके मूर्ति एव यन्त्रलेख) पर मेरी दृष्टि पड़ी और उससे भ० नरेन्द्रकीर्तिका समय निश्चित हो गया ।

न० ९ के सम्यक्चारित्र यत्रपर लिखा है—" सवत् १७०९ फागुन वदी ७ मूल० भट्टारक नरेन्द्रकीर्तिम्नदा अग्रवालगोयलगोत्रे स० तेजमाउदयकरणाभ्या गिरिनारे प्रतिष्ठापित।"

न० १२ के ह्रींकार यत्रपर लिखा है—

" सवत् १७१६ वर्षे चैत्रवदी ४ सोमे श्री मूलसघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक १०८ श्रीनरेन्द्रकीर्तिस्तदाम्नाये अग्रवालान्वये गर्गगोत्रे नन्दरामपुत्रसघाधिपतिजगसिंहेन अम्बावत्या .

इनके अनुसार स० १७०९ और १७१६ में नरेन्द्रकीर्ति भट्टारकका अस्तित्व स्पष्ट होता है और 'अम्बावत्या' से यह भी कि वे आमेरकी गद्दीके भट्टारक थे। आमेरका ही नाम अम्बावती है।

महाराजा जयसिंहके मुख्य मन्त्री मोहनदास भौंसाने जयपुरको पुरानी राजधानी अम्बावती या आमेरमें सवत् १७१४ में एक विशाल जैनमन्दिर निर्माण कराया था और १७१६ मे उसपर सुवर्णकलश चढवाया था। इसके दो शिलालेख मिले हैं, उनमें उन्हें नरेन्द्रकीर्ति भट्टारककी आम्नायका लिखा है और यह भी कि 'भट्टारकश्रीनरेन्द्रकीर्युपदेशात्' वनवाया।

(पं० वखतरामजीने लिखा है कि अमरा भौंसाको राजाका एक मन्त्री मिल गया, उसने एक नया मन्दिर भी वनवा दिया, और तेरापन्थको वढाया, सो शायद यही मन्त्री मोहनदास भौंसा होंगे।)

१—ये शिलालेख अब जयपुर-म्यूजियममें हैं और मन्दिर आमेरमें टूटी-फूटी हालतमें पड़ा है। शिलालेख प० भँवरलालजी न्यायतीर्थने वीरवाणी, वर्ष १ अक ३ में प्रकाशित कर दिये हैं।

१४—विज्ञप्तिपत्रमें आगरेके श्रावक

कार्तिक सुदी २ सोमवार स० १६६७ को तपागच्छके आचार्य विजयसेनको आगराके श्वेताम्बर जैन सघकी ओरसे एक विज्ञप्तिपत्र भेजा गया थी, उसमे वहाँके ८८ श्रावको और सघपतियोंके नाम दिये हुए हैं, जिनमेंसे कुछ नाम अर्द्धकथानकमें आये हैं—

१-**वर्द्धमानकुंअरजी**—अ० क० के ५७९ वें पद्यमें लिखा है, "वरधमान-कुअरजी दलाल, चल्यौ सघ इक तिन्हके ताल।" विज्ञप्तिपत्र (पक्ति ३०) मे इनका नाम है और इन्हें सघपति बतलाया है। स० १६७५ मे बनारसी-दासजीने इन्हीके सघके साथ अहिछत्ता और हथनापुरकी यात्रा की थी।

२-**बदीदास**—इनके पिताका नाम दूलह साह और बडे भाईका नाम उत्तमचन्द जौहरी था। ये बनारसीदासके बहनोई थे और मोतीकटलेमे रहते थे। अ० क० ३११ मे स० १६६७ के लगभग इनकी चर्चा की गई है। विज्ञप्ति पत्र (प० ३०) में 'साह बदीदास' नाम दिया है।

३ **ताराचन्द साहु**—परबत तावीके दो पुत्र थे, ताराचन्द और कल्याण मल्ल। कल्याणमल्लकी लड़की बनारसीदासको व्याही थी। उसे लिवानेके लिए ताराचन्द आये थे और स० १६६८ मे इन्होंने बनारसीदासको अपने घर लाकर रक्खा था। अ० क० १०९, ३४४, ३४६, ३४९, ३५१ में इनका जिक्र है। वि० प० की प० ३२ में इन्हें साह ताराचन्द लिखा है।

४ **सबलसिंघ** मोठिया—ये आगरेके वैभवशाली धनी थे। अ० क० ४७४-७५, ५६७, ५७७ में इनका, १६७२-७३ के लगभग जिक्र आया है। विज्ञप्तिपत्र (प० ३५) में सघपति सबलका नाम है।

१—'एन्स्येंट विज्ञप्तिपत्राज' मे डा० हीरानन्द शास्त्रीने इसे बडोदा-राज्यकी ओरसे प्रकाशित किया है।

१५—युक्तिप्रबोधके उद्धरण

टीका— श्रीशान्तिसूरिवादिदेवसूरिप्रभृतयस्तद्वितर्कविघटनकरणानि भूरिप्रकरणानि विदधिरे इति न तत्र पुनः प्रयास. साधीयान्, तथाप्यधुना द्वेधापि उग्रसेनपुरे वाणारसीदासश्राद्धमतानुसारेण प्रवर्तमानैराध्यात्मिका वयमिति वदद्भिर्वाणारसीयापरनामभिर्मतान्तरीयैर्विकल्पकल्पनाजालेन विधीयमान कतिपयभव्यजनमोहन वीक्ष्य तथा भविष्यत्श्रमणसघसन्ज्ञानिना एतेऽपि पुरातना जिनागमानुगता एव, सम्यक् चैषा मत, न चेत्कथ 'छव्वाससएहि नवोत्तरेहि सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो वोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा।' इत्युत्तराध्ययननिर्युक्तौ श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ च इत्यादिवत् कुत्रापि श्रीश्रमणसघधुरीणैरेतन्मतोत्पत्तिक्षेत्रकालप्ररूपणाभेदादि च नाभिहितम् इत्येव लक्षणा भ्रान्ति समुद्भाविनीं विज्ञाय तन्निरासार्थमेतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधेयमेव, न च दिगम्बरमतानुसारित्वादस्य तन्मताक्षेपसमाधानाभ्यामस्याप्याक्षेपसमाधाने इति किमेतदुत्पत्त्याद्यभिधानेनेति वाच्य, कथचिदभेदेऽपि उत्पत्तिकालप्ररूपणादिकृतभेदात्, ततश्चैतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधित्सुर्ग्रन्थकर्ता .गाथामाह—

पणमिय वीरजिणिंदं दुम्मयमयमयविमद्दणमयदं।
वुच्छ सुयणहियत्थं वाणारसियस्स मयमेय ॥ १ ॥

टीका—.. ततश्च एतेषा वाणारसीयाना तु श्वेताम्बरमतापेक्षया सर्वसिद्धान्तप्रतिपादितस्त्रीमोक्षकेवलिकवलाहारदिकमश्रद्दधता दिगम्बरनयापेक्षयाऽपि पुराणाद्युक्तपिच्छिकाकमण्डलुप्रमुखाणामनङ्गीकरणेन कथ सम्यक्त्व श्रद्धेय? यत्रब्रह्मचारिपिच्छिकाकमण्डलुप्रभृतिपरिभाषकत्वेन आर्षवाक्य विना पौरुषेयवाक्यस्यैव केवल प्रमाणकारकत्वेन सर्वविसवादिनिह्नवरूपत्वेन च दिगम्बरनयस्यापि अस्मत्प्राचीनाचार्यैः प्रथमगुणस्थानित्व निरणायि, तर्हि तदनुगतश्रद्धावता वाणारसीयाना तत्त्वे किं वक्तव्यमिति।

* * *

सिरि आगराइनयरे सड्ढो खरयरगणस्स संजाओ।
सिरिमालकुले वणिओ वाणारसिदासणामेण ॥ २ ॥

सो पुव्व धम्मरुई कुणइ य पोसहतवोवहाणाई।
आवस्सयाइपढणं जाणइ मुणिसावयायारं ॥ ३ ॥

दसणमोहस्सुदया कालपहावेण साइयारत्तं ।
मुणिसद्वचए मुणिउ जाओ सो संकिओ तम्मि ॥ ४ ॥

जाया वयट्ठियस्सवि कयापि तस्सन्नपाणपरिभोगे ।
छुहतिण्हाइसएण मणसंकप्पाओ वितिगिच्छा ॥ ५ ॥

पुट्ठं तेण गुरूणं भयव जंपेह दुव्विकप्पस्स ।
णिच्छयओ किमवि फल केवलकिरिआइ अत्थि ण वा ॥ ६ ॥

अह तेहिं भणियमेय णत्थि फल भद्द किमवि विमणस्स ।
तेणावधारिय तो किं ववहारेण विफलेण ॥ ७ ॥

इत्थतरे य पुरिसा अवरे वि य पंच तस्स समिलिया ।
तेसिं संसग्गेण जाया कखावि णियधम्मे ॥ ८ ॥

टीका—प्रागुक्तयुक्त्या व्यवहारवैफल्य श्रद्दधानस्य तस्य कदाचित् कालान्तरे अपरेऽपि पंचपुरुषा रूपचन्द्रपण्डितः १, चतुर्भुजः २, भगवतीदासः ३, कुमारपालः ४, धर्मदासश्चेति ५, नामानो मिलिताः । ... . स वाणारसीदासः पूर्वं प्रोषध-सामायिकप्रतिक्रमणादिश्राद्धक्रियासु तथा जिनपूजनप्रभावनासाधर्मिकवात्सल्य-साधुजनवन्दनमाननअशनादिदानप्रभृतिश्राद्धव्यवहारेषु सादरोऽभूत्, पश्चाच्छकया विचिकित्सया च कलुषितात्मा सन् दैवात्पचाना पूर्वोक्ताना ससर्गवशात् सर्वं व्यवहार तत्याज । . वाणारसीदासोऽपि नानाशास्त्राणि वाचयन प्रमाणनयनिक्षेपा-धिगममार्गाप्राप्त्या अनेकनयसन्दर्भान्निरीक्ष्य रूपचन्द्रादिदिगम्बरमतीयवासनया श्वेताम्बरमत परस्परविरुद्धत्वान्न सम्यक् विचारसह, दिगम्बरमतमेव सम्यक्, इत्यादिकाक्षा प्राप्तवान्, . .

तदेव (दृष्टिभिरनेकागमयुक्त्या प्रबोध्यमानोऽपि न स्थिरीभूतो वाणारसीदास' प्रत्युत दशाश्चर्यादिश्वेताम्बरागमोक्त स्वमनीषया दूषयन् अनेकजनान् व्युद्ग्राह्य स्वमतमेव पुपोष ।

अज्झत्थसत्थसवणा तस्सासवरणपवि पडिवत्ती ।
पिच्छियकमडलुजुए गुरूण तत्थावि से संका ॥ ९ ॥

टीका—प्रायशोऽध्यात्मशास्त्रे ज्ञानस्यैव प्राधान्याद्दानशीलादितप.क्रियाना गौणत्वेन प्रतिपादनादध्यात्मशास्त्राणामेव श्रवण प्रत्यह, तस्मात् तस्य वाणारसी-

दासस्य आगाम्बरा दिगम्बरास्तेषा नये शास्त्रे प्रतिपत्तिः निश्चयोऽभूत, तदेव प्रमाणमिति स्वीचकार। अपि शब्दादध्यात्मशास्त्रादिदिगम्बरतन्त्रेऽपि व्रत-समित्यादिप्रतिपादकग्रन्थे न प्रामाण्यमिति तन्मते निश्चय इत्यर्थः। यद्वा अध्यात्मशास्त्रश्रवणादाशाम्बरनये विप्रतिपत्ति अनिश्चयो, व्यवहारविरोधाद्, दिगम्बरा हि प्राचीनाः स्वगुरून् मुनीन् श्रद्धते, अस्य तु तदश्रद्धानात्, एवमन्योऽपि तन्मते विशेषः, तमेवाह—गुरूणा पिच्छिका कमण्डलु चैतद्द्वय परिग्रहत्वान्नोचित, दिगम्बराणा बहुषु ग्रन्थेषूक्तमपि न प्रमाणमिति तस्य बाणारसीदासस्य शकाऽभवत्, तेन श्वेताशाम्बरनयद्वयापेक्षयाऽपि बाणारसीयमते न सम्यक्त्वमिति सिद्ध।...

वयसमिइबभचेरप्पमुह ववहारमेव ठावेइ।
तेण पुराण किंचिवि पमाणमपमाणमवि तस्स॥ १०॥

टीका—सर्वेषा शास्त्राणा निश्चयनयोन्मुखत्वेऽपि निश्चयसाधनाय व्यवहार एव प्रागुक्तयुक्त्या समर्थः, ततस्तमेव मुख्यवृत्त्या व्यवस्थापयति। तेन हेतुना पुराण-शास्त्र किंचिदेव प्रमाणं आदिपुराणादिक, न सर्वं पुराणमात्र, किन्तु अप्रमाणमेव, किंचित्प्रमाणोक्तेरेवाप्रामाण्य शेषस्यागत चेत् किं पुनरुक्तेनेति न धार्य, आदि-पुराणादिके प्रमाणेऽपि यत्स्वमतव्याघातक तदप्रमाणमिति यथाछन्दत्वज्ञापनात्। यद्वा पुराण प्राचीन दिगम्बराचरण प्रमाणमप्रमाणमिति व्याख्येयम्, उभयवचनात्, न मम दिक्पटमतेन कार्यं, किन्तु अह तत्त्वार्थी, तथा च यज्जिनवचनानुसारि तदेव प्रमाण नान्यदिति ख्यापित। यद्वा पुराण जीर्णं तत्त्वार्थादिसूत्रमित्यपि ज्ञेय, अत्र यद्यपि पुराणादि दिगम्बरमतोत्थापने त एव प्रतिविधातारस्तथापि क्वलाहा-रादिव्यवस्थापने साक्षिकस्थानीयत्वात्पुराणप्रामाण्य साध्यते। .

अह नियमयवुद्धिकप्प पयासियं तेण समयसारस्स।
चित्तकवित्तणिवेसं नाडयरूव मइविसेसा॥ ११॥
बाणारसीविलास तओ पर विविहगाहदोहाइ।
अवुहाण बोहणत्थ करेइ सथवणभास च॥ १२॥
सम्मत्तम्मि हु लद्धे बधो णत्थित्ति अविरओ भुज्जा।
वयमग्गस्स अफासी न कुणइ दाण तव बभं॥ १३॥

णाणी सया विमुत्तो अज्झप्परयस्स निज्जरा विउला ।
कूवरपालप्पमुहा इय मुणिउ तम्मए लग्गा ॥ १४ ॥
वणवासिणो य णग्गा अट्ठावीसइगुणेहिं संविग्गा ।
मुणिणो सुद्धा गुरुणो सपइ तेसिं न संजोगो ॥ १५ ॥
तम्हा दिगंवराणं एए भट्टारगावि णो पुज्जा ।
तिलतुसमेत्तो जेसिं परिग्गहो णेव ते गुरुणो ॥ १६ ॥
एव कत्थवि हीण कत्थवि अहिय मयाणुराएण ।
सोऽभिनिवेसा ठावइ भेय च दिगंवरेहिंतो ॥ १७ ॥

टीका —सम्प्रति इत्यमहीमण्डले मुनयो न सन्ति, मुनित्वेन व्यपदिश्यमाना भट्टारकादयो न गुरव , पिच्छिकादिरुपधिर्न रक्षणीय., पुराणादिक न प्रमाण, इत्यादिक प्राक्तनदिगम्बरनयात् न्यून, अध्यात्मनयस्यैवानुसरण, नागमिकः-पन्था प्रमाणयितव्यः, साधूना वनवास एव इत्याद्यधिक, स्वमतस्य अभिप्राय-स्यानुरागो दृढीकरणरुचिस्तेन अभिनिवेशात् हठात् व्यवस्थापयति, न वय दिगम्बरा नापि श्वेताम्बराः किन्तु तत्त्वार्थिन इति धिया दिगम्बरेभ्योऽपि भेद व्यवस्थापयति, तत्कालापेक्षया वर्तमाना, चकारात् सिताम्बरेभ्यस्तु महानेवास्य मतस्य भेद इति गाथार्थः ।

सिरिविक्कमनरनाहा गएहिं सोलससएहिं वासेहिं ।
असि उत्तरेहिं जाय वाणारसियस्स मयमेय ॥ १८ ॥
अह तम्मि हु कालगए कूवरपालेण तम्मय धरिय ।
जाओ तो वहुमण्णो गुरुव्व तेसिं स सव्वेसिं ॥ १९ ॥

टीका— ..तस्मिन वाणारसीदासे परलोक गते निरपत्यत्वात्तस्य मत कुअर-पालनाम्ना वणिजा धृत, प्रागेव तन्मताश्रिताना स्थिरीकरणेन नवीनाना तथाश्रद्धानोत्पादनेन समाहित, तन्मत निष्ठास्थानमभवदित्यर्थ । ततस्तेषा वाणारसीयाना सर्वेषा गुरुरिव बहुमान्याः, परस्परचर्चाया यत्तेनोक्त तत्प्रमाणीबभूव, गुरुरितिकथनान्नान्यः सितपटो दिक्पटो वा तद्गुरुर्बभूविवान्, उपकरणधारित्वात्तयो-रिति भाव. . ।

जिणपडिमाण भूसणमालारुहणाइ अगपरियरण ।
वाणारसिओ वारइ दिगंवरस्सागमाणाए ॥ २० ॥

उनईस, उनीस=उन्नीस । ५२१, ५३२
उवझाइ = उपाध्याय, अध्ययन कराने वाला जैन साधु । १७३
उबरे = बचे । २३९
उरे परे=इधर उधर, आगे पीछे। २३८
ऊचलाचाल = भूचाल, उथल पुथल । १५८, ४३१,
ऊबट पथ = अटपटा, ऊँचा-नीचा, ऊबड़-खाबड़ रास्ता । ६४

ओ

ओखद-पुरी = औषधकी पुड़िया । १८९

क

कदोई = हलवाई (स० कान्दविक) २९
कच्छा = कच्छ, धोतीकी कॉछ, अटी । २८८
कर्जा = कमी, टेढ़ापन, नुक्स । (मेरठके आस-पास बोला जाता है ।) २६३
कवीसुरी = कवीश्वरी, कविता । ६३६
करोरी = करोड़ी, रोकड़िया, कर-ग्राहक । ३२२
कल्लासाहु = कल्याणमलका पुकारनेका नाम । ३७१
कलाल = (स० कल्यपाल) कलवार, शराब बनाने-वेचनेवाला । २९
कलावत = कलावन्त, गायक । ५५८
कसिवार = काशीदेश, कसिवार परगना जिसका आजकल बनारस राजा है। २
कहान = कथन, कथानक । ४६०
कहार = पनिहारा (स०उदकहार) २९
कागदी = कागजी, कागज बनाने-वेचनेवाला । २९
काछी = तरकारी भाजी बोने-बेचने-वाला । (नदी किनारेके जल-प्राय देशको कच्छ कहते हैं । ऐसे स्थानोंमें शाक सब्जी पैदा करनेवाला ।) २९
कान धरि = कान लगाकर ७
कारकुन = (फारसी) कारिन्दा, क्लार्क । ५६
कीन्हौ काल = काल किया, मर गए । २०
कुदीगर = कुन्दी करनेवाला । धुले या रंगे कपड़ोंकी तह करके उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करनेके लिए लकड़ीकी मोगरीसे पीटनेकी क्रिया, कुंदी । २९
कुतबा = खुतबा पढना, सर्वसाधारणको सूचना देनेके लिए सिंहासनासीन होनेकी घोषणा करना । २७
कुरीज = क्रौंच, सारस, कुररी (कुररीव दीना) १९४
कुलाल = कुम्हार, मिट्टीके बर्तन बनाने वाल । २९
कूप = कुप्पा, घी-तेल रखनेका चमड़ेका बना बर्तन । २८४

केवली = केवलज्ञानी, सर्वज्ञ। ४९२
कोठीवाल = देन-लेन करनेवाला महाजन ४६८
कोरे = कोरडे, कोडे, चाबुक। ११३
कोररे = कोरे, खालिस। ३२५
कौल, कोल = अलीगढ़का पुराना नाम। तहसीलका नाम अब भी कोल है। ३९६
कौल = कसम, सौगद। ५०१

ख

खतिआइ = खतौनी करना, खातेवार लिखना। ३५६
खाल्सै = खालसा (अरबी)। किसी जमीन या घरपर राजाके द्वारा अधिकार किया जाना। २२
खेस = ओढनेका मोटा कपड़ा। २५४
खोसरामती = दुष्टबुद्धिवाला। (फारसीमें 'खुदसरा' शब्द है जिसका अर्थ है स्वतंत्र, मनमाना करनेवाला, स्वेच्छाचारी।) ६०८

ग

गर्भित बात = गर्भमें रखी हुई, भरी हुई, छुपी हुई। ७
गवन = गमन, जाना। ६६
गस्त = गश्त (फारसी), भ्रमण, चक्कर, घूमना। ३५५
गाँठिका रोग = प्लेग, ताऊन, मरी। ५७२
गाड़ि = देहाती मुहाविरा है कि 'पूँजी गाँडमें घुस गई।' ३६५
गिरौ = गिरवी, रेहन, मार्गेज। ३१७
गुनह = गुनाह, अपराध। १६५
गैरसाल = गैर टकसालका, बनावटी या जाली रुपया। ५०६, ५१०
गोपुर = नगरद्वार या फाटक। २९६
गोल = गोल (फारसी) झुण्ड, मंडली। ५०१
गोवै = गोमती नदी, गोवई, गोवै नदी। २५
गृह-भेस = गृही या गृहस्थका भेष, अदीक्षित शिष्य। १७४

घ

घडनाई = बाँसके ढाँचेमें घड़े बाँधकर बनाई हुई नाव। ४७१
घनदल = बादलोंका समूह। १९
घमडि = घुमड़कर। २८९
घोंघी = एक शंखजातीय कीड़ा, शंबूक। ३६५

च

चंग = सुन्दर, शोभायुक्त। हिन्दी चंगा, मराठी चाँगला। ३०
चक्क = चक्र, देश, भूमंडल। ६१६
चाल = आचार, चरित्र। ५८६
चटसाल = चट्टशाला, छात्रशाला, पाठशाला। ४६

चिंतौन = चिन्तवन, विचार। ६६१
चितेरा = चित्रकार। २९
चिनालिया – श्रीमाल जातिका एक गोत। ३९
चिरी = चिड़िया, चिरैया। १९४
चूनी = चुन्नी, एक तरहका रत्न। १७२, ३५५
चौविहार = खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय, इन चार तरहके आहारोंका त्याग। ६०

छ

छापरबंध = मकानोंके छप्पर छाने-सुधारनेवाला। २९
छरछोबी = पाखाना, बुन्देलखडमे छाबछोरी कहते हैं। २११
छरे = छड़े, एकाकी, अकेले, खाली। ३०९

ज

जच्छ= यक्ष। प्रत्येक तीर्थंकरके सेवक कुछ यक्ष होते हैं, उनमेंसे पार्श्वनाथका यक्ष। एक जातिका व्यन्तर देव। ९०
जड़िया=नग जडनेका काम करनेवाला। ४६८
जलाल=तेज, प्रकाश, प्रभाव। अकबरका विशेषण, जलाल-उद्-दीन, धर्मका प्रकाश। २५७
जहमति= (अरबी) जहमत, विपत्ति, बीमारी। २०५
जात=स० यात्रा, देवदर्शनके लिए जाना, देवस्थानपर होनेवाला मेला। २२८–२३०
जाव-जीव=यावज्जीव, जीवनभरके लिए। २७५
जिन जनमपुरि-नाम-मुद्रिका=पार्श्वनाथ जिनकी जन्मनगरी बनारसीके नामकी मुद्रिका जिसने धारण की, अर्थात् जिसका नाम बनारसी है। ३
जेम=जैसे। एम-ऐसे, केम=कैसे। ये शब्द गुजरातीमें इसी अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। ३७–४२

ट

टक-टोहे=देखे, तलाशी ली। ५०९
टेरै=पुकारै। १२०
टोइ=टोहि, खोजकर, टटोलकर। ३१७

ठ

ठठेरा = ताँबे, पीतल, काँसेके बरतन बनानेवाला, तमेरा, कँसेरा। स० तष्टकार। २९
ठाउ=स्थान, स० स्थाम। २१
ठाहर = जगह, ठहरनेका स्थान। ३०३

ढ

ढोर = श्रीमालोंका एक गोत। पद्य ५९२ में इसी गोत्रके अरथमल्लका उल्लेख है। ७०
ढोवनी = ढोनेवाली। १५५

त

तम्बोल = ताम्बूल, पान। २२९
तखत = तख्त, राजधानी। २७
तमाइ = अरबी तमअसे बना शब्द, लोभ, परवा। १३५
तये = तपे, तचे, झुलस गए। १९
तवाला = तमारा, तवारा, गश, वेहोशी। २४९
तहकीक = जाँच-पडताल। निश्चित। ३००, ३५७, ५२१
तहसीलहि दाम = दाम या पैसा वसूल करता था। ५६
ताइत = त वीज, ताईत (मराठी) ३६९
ताति = तन्त्री, वीणा। ५५९
ताईं = तक, पर्यन्त। ५
तुरित = त्वरित, जल्दी, तत्काल ही। ७४
तुलाई = तूल या रुईसे भरी हुई, धुनी हुई। २९२
तोइ = तोय, पानी। २९४

थ

थया = हुआ, गुजराती 'थयुँ' का खड़ा रूप। ३३१
थिति = स्थिति, आयु, जन्म। ६१, ६२
थूलरूप = स्थूलरूपमें, मोटे तौरपर। ६

द

दरदवद = दर्दमन्द, हमदर्द, दुखी, दयालु, कोमलहृदय। १७१
दरवेस = दरवेश, भिखारी, फकीर। १९९
दानि, दानिसाहि = शाहजादा दानियाल। १३३, १४५
दिलवाली = दिल्लीवाल। ३५२
दुकूल = कपड़ा। २८४
दुविहार = खाद्य और स्वाद्यके त्यागकी प्रतिज्ञा। ४३७
दुल – दुर, मोती, नाकमें पहननेका लटकन। २१९
देहुरा = देहरा, देवगृह, मन्दिर। ६३१
दोहिता= दौहित्र, लड़कीका लड़का। ४४
द्यौहरे = देहरे, देवगृहे, मन्दिरमें। २३४

ध

धार, धारि = धाड़, धाटी, धाडे मारना, हमला, डकैती। १५७, २५५, ५१६
धोक = प्रणाम, पालागी नमस्कार। ४१८

न

नुक्ती = वेमनकी वारीक बुदियाँ या मोतीचूर, एक मिठाई। १३६
नखासा = यों तो ढोरों या घोड़ोंके बाजारको कहते हैं, पर यहाँ बाजारका ही मतलब जान पड़ता है। ३१४, ५७१
नठे = भागे हुए, निकले हुए। २३९
नन्हसाल = नानाका घर, ममेरा। ४५
नन्द = पुत्र। ४७५

नफर = नफर (अरबी), नौकर, दास। ४९८

नाम-माला = महाकवि धनजयका सस्कृत कोश। १६९

नाल = तोप। १५४

नाल = साथमे, सगमें, साथ साथ, पूर्वी पजाबमे विशेष प्रचलित। १०९, १३१, ४१३, ५७९

नाह = नाथ, स्वामी। २४७

निचीत = निश्चिन्त, बेफिक्र। ५२९

निदान = कारणका पता लगाना, जॉच। ५३३

निरख = निर्णय, जॉच। ५२३

नूरदी = नूरुद्दीन, जहॉगीर नूर-उद्-दीन=धर्मकी शोभा। २५९

नेवज = नैवेद्य, देवताको चढानेका द्रव्य। ६००

नौकारसहि या नौकारसी = प्रातः दो घड़ी दिन चढे तक भोजन न करनेकी प्रतिज्ञा लेना। ४३५

नौकरवाली = नमोकारमन्त्र-जापकी माला। इसे ही दोहा १० में मन्त्रकी माला कहा है। नौकरवाली एक जाप = एक बार नमोकार मन्त्रकी माला जपना। ४३५

नौतन गेह करनकौ नेम = नया घर बनाने या बसानेका नियम ले लिया, कि आगे न बनाऊँगा। ५१

न्यारो = जुदा, अलग, निराला। ७०

प

पचनवकार = पचनमस्कार, जैनोंका प्रसिद्ध मन्त्र जिसमें अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु-समुदायको नमस्कार किया जाता है, णमो अरहताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण। ६०

पखावज = एक बाजा, मृदग। स० पक्षवाद्य। ५५९

पटबुनिया = पट या वस्त्र बुननेवाला। कोरी, बुनकर। २९

१-नौकरवाली शब्द एक प्राचीन दोहेमें भी आया है—"नवकरवालीं मणिअडा तिहिं अग्गला चियारि। दाणसाल जगड्डतणी कित्ती कलिहि मझारि।" (-पुरातनप्रबधसग्रह।) नवकरवाली मणिअड़ा=नमोकार मन्त्र जपनेकी मणियोंकी माला। अग्गला=अर्गला, ब्योंड़ा। चिआरि = खोलकर (चिआरना=खोलना)। अर्थात्—कलियुगमें जगड्डशाहकी दानशालाकी कीर्ति प्रसिद्ध है। वे अपनी मणियोंकी माला दानमें देकर उसकी अर्गला खोलते हैं, अर्थात् हाथकी मणिमालाके दानसे दानशालाका आरम्भ होता है।

पटभौन = पट या वस्त्रका मकान, तम्बू, रावटी, पटमंडप। ५१
पटुवा = पटवा, रेशम या सूतमें गहने गूँथनेवाला, पटहार। पट्टवाय। २९
पठई = पठाई, भेजी। ३३२
पड़िकौना = प्रतिक्रमण, किए हुए पापोंका अनुताप करके उससे निवृत्त होना और नई भूल न हो इसके लिए सावधान रहना। जैन साधु और गृहस्थोंकी एक आवश्यक क्रिया, जो सुबह शाम की जाती है। ५१
पतिआइ=प्रतीति या विश्वास करें। ३५६
पथ=पथ्य, भोजन। २०७-३२६
पन=पण, प्रतिज्ञा। २२९-२३०-२३३
पन=पण, शर्त। ६८४
पन-पन्ना रत्न। ४४५
परचून=फुटकर, परचूरन (गुजराती)। २८३
परबाह=प्रवाह। २५
परवान=प्रमाण, परिमाण। १६
पले=पल्लेमें। ३२१
पहपहे=पौफटे, बिलकुल सवेरे। ४२३
पाइ = पैर, पाँव। २१४
पाइक = पायक, पैदल सिपाही, नौकर। ६२
पाउजा = प्रव्रजसे बना है। गौना। (पद्य १९१ में लिखा है कि सासससुरने अपनी लड़की गौने नहीं भेजी, इससे पाउजाका अर्थ गौन ही जान पड़ता है जिसके लिए वे गये थे। १८२
पाग = पगड़ी। ६०१
पाछिलौ = पिछला, पहलेका। ३८
पानिजुगल=पाणियुगल, दोनों हाथ। १
पारसी = फारसी। १३, ५२१
पास = पार्श्वनाथ। २३१
पास जनमकौ गाँव = पार्श्वनाथका जन्म ग्राम (स्थान) वाराणसी या बनारसी। ९१
पास-सुपास = पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर। १
पिउसाल = पितृशाला, पिताका घर। ४४०
पितर = प्रेतत्वसे छूटे हुए पूर्वज। १३७
पीतिआ, पीतिया = पितृव्य, पिताका भाई, पितराई (गुजराती) ६७,१०९
पुजारा = पुजारी, पुजेरा, पूजा करनेवाला। ८७
पुव्व पुरखा = पूर्व पुरुष। ३७
पुरकने = पुर या नगरके पास, ओर। कने बुन्देलखण्डमें इसी अर्थमें प्रचलित है। ३१
पेसकसी = पेशकश, भेंट, सौगात। १७२
पेम = प्रेम। ५१
पैजार = पैजार (फारसी) जूता। ६०१

पोट = पोटली, गठरी । ६२

पोत = बच्चा, पुत्र । ३९४

पोत = दफा, बार । ५९१

पोतदार = पोत अर्थात् माल्गुजारी, लगान । पोतदार (फारसी) लगानका रुपया जमा करनेवाला खजाची । ५०

पोसह = प्रोपध । अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वतिथियोंमें करने योग्य जैन गृहस्थका एक व्रत । आहार आदिके त्यागपूर्वक किया हुआ अनुष्ठान । ५१

पौसाल = प्रोपधशाला, उपाश्रय, उपासरा, जैनसाधु जिसमें ठहरते हैं । १७५, १९६, २०२

पौन, पौनिया, पउनिया = व्याह शादीके अवसरोंपर नेगके रूपमे कुछ पानेवालीं विविध पेशोंवाली शूद्र जातियॉ । २९

प्रदेस = परदेश, अन्यत्र, दूसरी जगह । २१५

फ

फरजद = पुत्र, लडका । ३४४

फरि = फड़पर, माल वेचनेकी जगह पर । ३९१

फारकती=फारखती, चुकती, वेबाकी । ५१

फावा = फाहा, धुनी हुई रुई, फिरते फिरते धुन गए । २९४

फैन = पानीके फैनके समान निस्सार वातें । ३७२

फोक = व्यर्थ, निस्सार । ८०

ब

बन्द = कविताका पद (फारसी) ३८६

बकसाइ = फारसी बख्शसे बना है । माफ कराके । १६५

बकसीस = फारसी बख्शिश, भेंट, उपहार, इनाम । ३००

वणजै = वणिज व्यापार करता है । ३९

बनज = वाणिज्य, व्यापार । ७४

वागे = ॲगरखा जैसा पुराना लम्बा पहिनावा । ३२४

बाढई = बढ़ई, सुतार, लकडीका काम करनेवाला । २९

बारी = पत्तल-दोने बनानेवाला । २९

बाल = वाला, पत्नी । ४४०

विंग = व्यंग । ६०५

बित्तकी सीम = धनकी सीमा या हद, बडा भारी धनी । २२४

बितरी=वितीर्ण कर दी, बॉट दी । २०४

बिंधेरा = मोती आदि बींधनेवाला, छेद करनेवाला । २९

बिसास = विश्वास, भरोसा । ५१

बिसाहे = खरीदे । २५४

बीझबन = बीहड़, जन-शून्य वन । ४१४

बीतिक = वीतक, घटना, वीती हुई बात । ११०

बुगचा = बुकचा (फारसी), कपड़ोंकी गठरी । ३२४

बूझत = पूछते हुए। ४०
बैंगन पचखान = बैंगन खानेका प्रत्याख्यान या त्याग। २७५
बौन = वमन, उल्टी, कै। ५९८

भ

भडकला = भाँडों जैसी बाते करनेकी कला। ६८४
भई बात = वह बात जो हो चुकी, भूतकालकी कथा। ६
भाखसी = भाकसी, अन्ध कोठरी। ४६९
माखौं = भाषण करूँ, कहूँ। ७
भाट = राजाओं आदिकी स्तुति करने वाला, बन्दीजन, स्तुतिपाठक, चापलूस। ४८५
भानहिं = भग कर दें, तोड़ दें। ६१२
भारभुनिया = भड़भूँजा, भाड़में चने आदि भूँजनेवाला। २९
भोग अतराई = भोगान्तराय नामका कर्म जिससे प्राणी प्राप्त भोगोंको भी नहीं भोग सकता। ११८
भौंहरी = भोंहरेका स्त्रीलिंगरूप। भुइंहरा, भूमिगृह (तहखाना) १४८
भौंदाइ = भोंदू या मूर्ख बना दिया। २१९

म

मडई = मडियाँ, थोक बिक्रीके बाजार। ३१
मकरचाँदनी = मक्र (फारसी) धोखेकी या बनावटी, चाँदनी जैसी दीखनेवाली। ४१२
मतौ मता = मत, सलाह, राय ११४, ५३८
मया = माया, ममता, प्रेम। २९९
मरी = महामारी। ५७२
मसक्कति = मशक्कत, मेहनत, कष्ट। ३६४
महघा = महार्घ, मँहगा। १०४
महासख = महामूर्ख। २३७
माति = मत्त होकर। २०१
माट = मिट्टीका घड़ा, मटका, माटला (गुजराती) १२३
माहुर = माथुर, माहौर, वैश्योंकी एक जाति। ११९-१३१
मिही कोथली = महीन या छोटी थैली, बसनी। ५१२
मीर = अमीरका लघुरूप। शाही सरदार। ४३-१६४
मोदी = राजा या नवाबोंकी ओरसे जिन्हें भोजनादिकी तमाम आवश्यक सामग्री जुटानेका काम दिया जाता था वे मोदी कहलाते थे। १४
मुधा = व्यर्थ, झूठी। २१८
मौवास = मवास, शरणकी जगह, दुर्ग, गढ। १६१-४७१
म्यान = मियान (फारसी), कमर, मध्यभाग, बीचमें। ३१९
मौठिया = श्रीमालोंका एक गोत। ४७५

र

रगवाल = रगसाज़, रगरेज़। २९

रखपाल = रक्षपाल, रक्षक, ठाकुर, राजा। १०
रद्दी = रद्दी (अरबी), निकम्मी, बेकार। २६७
रफीक = रफ़ीक (अरबी), साथी, सहायक, मित्र। ३१०
रवनीक = रमणीय, सुन्दर। २६
राज = ईंट-पत्थर आदिसे घर बनानेवाला, थवइ (सं० स्थपति। २९
राती = रक्त, लाल। १३०
रास = रास्त, दुरुस्त, ठीक। ५३४
रासि = राशि, धन। ४०७
रूधी=रुद्ध कर दीं, बन्द कर दी। १५३
रेजपरेजी = छोटी-मोटी फुटकर चीजें। २२४
रेनि = रजनी, रात। ७१
रोक = रोकड़ा, नकद रोख (मराठी)। १४५

ल

लखेरा = लाखकी चूड़ियाँ वगैरह बनानेवाला। २९
लगन = लग्नपत्रिका १०३
लघु-कोक = छोटा काम-शास्त्र, कोक्काक पंडितकृत १६९
लटाकुटा = डडे कुडे, बोरिया बँधना। लटा = तुच्छ। कुटा = छोटा टुकड़ा ३३४
लहुरा = लघु छोटा। ५२७
लार = पीछे पीछे, साथ। ५३५
लाहनि = लाहण, लाण, भाजी, आदि चीजें जो बिरादरीमें बाँटी जाती हैं। ४८८, ५९०
लेखा = हिसाब, गणित। ९८

व

वसुधा-पुरहूत = पृथ्वीका इन्द्र, बादशाह अकबर। १३३
वार = द्वार, फाटक। ४९१

स

सखोली = छोटा गख। २१९
सगतरास = संगतराश (फारसी), पत्थर काटकर उसकी चीजें बनानेवाला। २९
संघ चलायौ = तीर्थयात्राके लिए बहुतसे सधर्मियोंको लेकर चलना। ५८
सकृत = एक समय, एक साथ। ४४६
सकार = सकाल, सवेरे, जल्दी, सकारे (बुन्देली) २९९
सजोष = योषा या स्त्रीके सहित, सस्त्रीक। ६४६
सनातरबिधि = स्नात्रविधि, स्नान या अभिषेककी क्रिया। १७६
सपतखने = सप्त या सात खडके मकान। ३०
सरदहन = श्रद्धान, विश्वास। ६३७
सरियत = शर्त। ५२४
सरियति = शरीअत, इस्लामी कानूनको कहते हैं। शायद यहाँ कानून-

—*—